1998 से निरंतर प्रकाशित

RNI. No. MPHIN/2017/73838

ISSN 2581-446X

वर्ष-8, अंक-3, दिसम्बर -जनवरी 2025, ₹50/-

28 वर्षों की सांस्कृतिक यात्रा में
पहला व्यंग्य विशेषांक का 132 वाँ अंक...

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

हरिशंकर परसाई
जन्म शताब्दी वर्ष विशेषांक

अतिथि संपादक : उमेश कुमार गुप्ता

संपादक : भँवरलाल श्रीवास

हरिशंकर परसाई का व्यंग्य साहित्य संसार

– संकलन: उमेश कुमार गुप्ता

RNI NO. MPHIN/2017/73838

कला समय पत्रिका वेबसाइट पर उपलब्ध

www.kalasamaymagazine.com

ISSN 2581-446X

(पंजीयन पूर्व प्रकाशित अंक, वर्ष सम्मिलित)

1998 से निरंतर प्रकाशित

देश की सर्वश्रेष्ठ एक मात्र सांस्कृतिक पत्रिका

(वर्ष : 20+08=28) पूर्णांक-132,

वर्ष-8, अंक-3, दिसम्बर-जनवरी 2025, मूल्य : ₹50/-

माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल म.प्र. द्वारा 'रामेश्वर गुरु सम्मान' से पुरस्कृत
श्री भारतेन्दु समिति कोटा (राज.) द्वारा 'साहित्यश्री' सम्मान एवं
साहित्य मण्डल श्री नाथद्वारा (राज.) द्वारा 'सम्पादक रत्न' सम्मान से सम्मानित
म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन भोपाल (म.प्र.) द्वारा उर्मिला तिवारी स्मृति 'सप्तपर्णी सम्मान' से पुरस्कृत
इन्टरनेशनल ध्रुवपद-धाम ट्रस्ट, जयपुर (राज.) द्वारा 'लाइफ टाइम अचीवमेंट' सम्मान

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

❊ पत्रिका नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान ❊

रेखाचित्र: अवधेश बाजपेयी

संरक्षक
विजयदत्त श्रीधर
(पद्मश्री से विभूषित)
डॉ. महेन्द्र भानावत
श्यामसुंदर दुबे
कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय
महेश श्रीवास्तव
❊
कानूनी सलाहकार
उमेश कुमार गुप्ता
(प्रिंसिपल जिला न्यायाधीश रिटा.)
❊
परामर्श
लक्ष्मीनारायण पयोधि
डॉ. नारायण व्यास
प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'
प्रो. सुधा अग्रवाल
❊
सांस्कृतिक प्रतिनिधि
चेतना श्रीवास
❊
वेबसाइट प्रबंधन
मयंक अग्रवाल

संपादक
भँवरलाल श्रीवास
❊
सलाहकार संपादक
डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा
❊
सह संपादक
डॉ. मधु भट्ट तैलंग
❊
उप संपादक
राहुल श्रीवास
सुन्दरलाल प्रजापति
❊
नरिन्दर कौर
प्रबंध संपादक
❊
संपादक मंडल
डॉ. बिनय षडंगी राजाराम
साहित्य
❊
अरुण तिवारी
समसामयिक
❊
हरीश श्रीवास
कला, संस्कृति

सदस्यता सहयोग राशि:
(साधारण डाक, रजिस्टर्ड डाक शुल्क 300/- प्रति वर्ष अतिरिक्त)

वार्षिक	:	300 (व्यक्तिगत)	350 (संस्थागत)
द्वैवार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)
चार वर्ष	:	1000 (व्यक्तिगत)	1200 (संस्थागत)
आजीवन	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12000 (संस्थागत)

(15 वर्ष के लिए)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 300/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

कार्यालय सम्पर्क :
संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग
जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
फोन : 0755-2562294, मो.- 94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
bhanwarlalshrivas@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :
'कला समय' का बैंक खाता विवरण

पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

कला समय पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों, अतिथि संपादकों के अपने हैं, यह जरूरी नहीं कि संपादक, प्रकाशक, मुद्रक उनसे सहमत हो। पत्रिका से सम्बंधित समस्त विवाद, भोपाल न्यायालय के अधीन ही रहेंगे। सम्पादन, संचालन, प्रबंधन एवं प्रकाशन- अवैतनिक, अव्यवसायिक

विशेष नोट : © सर्वाधिकार सुरक्षित 'कला समय' प्रबंधन यह स्पष्ट करना आवश्यक समझता है कि 'कला समय' में प्रवेशांक फरवरी-मार्च 1998 से लेकर अब तक प्रकाशित होने वाली समस्त सामग्री या सामग्री के अंश के पुनर्प्रकाशन तथा पुनरुत्पादन के सर्वाधिकार कॉपीराइट अधिनियम के अंतर्गत 'कला समय' के पास सुरक्षित हैं। अत: कोई भी व्यक्ति या संस्था 'कला समय' की इस सामग्री या इस सामग्री के अंश का उपयोग प्रबंधन की पूर्वानुमति के बिना न करें।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - **भँवरलाल श्रीवास**

हरिशंकर परसाई जन्म शताब्दी वर्ष विशेषांक के प्रमुख विद्वान व्यंग्य हस्ताक्षर...

ज्ञान चतुर्वेदी
(पद्मश्री से विभूषित)

प्रेम जनमेजय

डॉ. सुभाष अत्रे

धर्मपाल महेंद्र जैन

मलय जैन

डॉ. श्यामसुंदर दुबे

योगेश कुमार गुप्ता

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

डॉ. मोहन गुप्त

चेतन औदिच्य

कुमार सुरेश

दिनेश चौधरी

डॉ. लता अग्रवाल 'तुलजा'

अलीम बजमी

श्रवण कुमार उर्मलिया

इस विशेषांक के आवरण और रेखा चित्र के चित्रकार

अवधेश बाजपेयी
वरिष्ठ कलाकार, चित्रकार

हरिशंकर परसाई जन्म शताब्दी वर्ष विशेषांक: अतिथि संपादक

उमेश कुमार गुप्ता
(प्रिंसिपल जिला न्यायाधीश रिटा.)
वरिष्ठ साहित्यकार, व्यंग्यकार, कवि
मो. 9479909299, 9425420399

इस बार

- **अतिथि संपादक की कलम से**
  हरिशंकर परसाई के व्यंग्य बाण आज भी उतने ही खरे हैं 05
- **संपादकीय**
  हिन्दी साहित्य में व्यंग्य को व्यापक स्वीकृति एवं साहित्यिक दर्जा ... 07
- **व्यंग्य आलेख**
  परसाई अप्रासंगिक नहीं हो सकते / ज्ञान चतुर्वेदी (पद्मश्री से विभूषित) 10
  हरिशंकर परसाई, शरद जोशी और श्रीलाल.../ प्रेम जनमेजय 14
  विदेश में परसाई से दो टूक / धर्मपाल महेंद्र जैन 20
  हरिशंकर परसाई की सामाजिक चेतना / कुमार सुरेश 22
  खबर लेते और खबरदार करते परसाई / मलय जैन 25
  बदले हुए पतों वाले लिफाफों की पहुँच / दिनेश चौधरी 28
  श्री हरिशंकर परसाई के जीवन के सौ साल / उमेश कुमार गुप्ता 30
- **विविध**
  परसाई की 100 व्यथा / उमेश कुमार गुप्ता 34
- **संस्मरण आलेख**
  ''उदीयमान का सत्कार : हरिशंकर परसाई का.../ डॉ. श्यामसुंदर दुबे 39
  हरिशंकर परसाई – व्यक्तिगत यादें / डॉ. सुभाष अत्रे 42
- **व्यंग्य निबंध**
  आलोचनाशास्त्र की कसौटी पर कसा .../ डॉ. लता अग्रवाल 'तुलजा' 44
- **आत्म कथन**/हरिशंकर परसाई
  गर्दिश के दिन 47
  हरिशंकर परसाई द्वारा हस्तलिखित पांडूलिपि सौजन्य रामराव ... 50
- **व्यंग्य आलेख**
  अफसर के रिटायरमेंट का दर्द / उमेश कुमार गुप्ता 56
  आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध व्यंग्यकार / योगेश कुमार गुप्ता 58
  साहित्य के एक नए सौंदर्यशास्त्र की ज़रूरत का .../ डा. धनंजय वर्मा 61
  व्यंग्य विधा के हिमालय–पुरुष हरिशंकर..../ श्रवण कुमार उर्मलिया 65
- **व्यक्तित्व**
  इस विशेषांक के आवरण और रेखाचित्र के.../ अवधेश बाजपेयी 68
- **संस्मरण आलेख**
  भाई रतन कुमार : व्यक्ति नहीं, संस्था / हरिशंकर परसाई 70
- **विविध**
  हरिशंकर परसाई की यादगार रचनाएँ/ संकलन: उमेश कुमार गुप्ता 71
  हरिशंकर परसाई की मृत्यु के बाद की... / संकलन: उमेश कुमार गुप्ता 74
  हरिशंकर परसाई का स्तम्भ लेखन/ संकलन: उमेश कुमार गुप्ता 76
- **परसाई के स्तंभ**
  परसाई जी की नजर में व्यंग्य / उमेश कुमार गुप्ता 77
- **समय की धरोहर....**
  लिपि : लेखन और कालांश की स्मृति / डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' 82
- **अद्वैत विमर्श**
  भारतीय ज्ञान परम्परा के प्रखर सूर्य .../ डॉ. मोहन गुप्त 87
- **कला-अक्ष**
  रूपों के संबंधों की खोज करती : डॉ काले की कृतियां / चेतन औदिच्य 93
- **शख्सियत**
  महेश श्रीवास्तव के जन्म दिवस के अवसर पर.../ अलीम बजमी 95
- **आयोजन, समवेत, पत्रिका के बहाने 98-102**

शब्द संयोजन एवं आकल्पन - गणेश ग्राफिक्स, भोपाल, 9981984888
मुख्य आवरण – अवधेश बाजपेयी
छायाचित्र -मनीष सराठे, सुनील सेन, गूगल से साभार, समाचार पत्र
सहयोग- धन सिंह, लता श्रीवास | **रेखाचित्र :** अवधेश बाजपेयी
आवरण सज्जा – मनोज माकोड़े, गणेश ग्राफिक्स

अतिथि संपादक की कलम से...

हरिशंकर परसाई के व्यंग्य बाण आज भी उतने ही खरे हैं

हरिशंकर परसाई केवल एक लेखक नहीं थे, वे विचारों की मशाल थे। उन्होंने व्यंग्य के माध्यम से समाज में बदलाव लाने की कोशिश की। उनकी शैली और दृष्टिकोण ने हिंदी साहित्य को नई दिशा दी। उनकी जन्म शताब्दी व्यंग्य साहित्य के लिए प्रेरणा का युग है, जो यह बताते हैं कि परसाई जी की लेखनी कालजयी है।

हम श्री हरिशंकर परसाई जी का जन्म शताब्दी वर्ष मना रहे हैं और लोगों के विशेष अनुरोध पर पहली बार व्यंग्य पर 'कला समय' कला, साहित्यिक पत्रिका यह विशेषांक निकाल रही है।

सम्पादक भँवरलाल जी श्रीवास के द्वारा बहुत साहस करके मुझ जैसे असाहित्यकार को अतिथि संपादक का भार सौंपा है। मैं व्यंग्य के द्रोणाचार्य हरिशंकर परसाई का एकलव्य हूँ। कुछ लिखा है। अफसर के रिटायरमेंट का दर्द पढ़ने मिलेगा। व्यंग्य के श्री गणेश हरिशंकर परसाई जी ने 36 साल अपने विश्वासों को मजबूती से पकड़कर, बिना समझौते के, जो सही समझा, वह लिखा है। जो कुछ मानव-विरोधी है, उस पर निर्मम प्रहार किया है।

अपनी तीक्ष्ण लेकिन सत्य लेखन के नतीजे भोगे लेकिन कोई भी गर्दिश उन्हें सतत, लगातार, निरन्तर लिखने से नहीं रोक पाई। पिटे व्यवस्था का शिकार हुए ,विकलांगता तक उनकी स्फूर्ति, शक्ति ,विश्वास को कम न कर पाई। वे पहले लेखक हैं जिन्होंने जीवनकाल में छह खंड में रचनावली निकाली जिसके सम्बन्ध में उनका कहना था कि वे पुराने मित्रों में स्वामी जी कहलाते हैं ।

ऋषि परम्परा है कि संन्यासी अपना श्राद्ध स्वयं करके मरता है। तो रचनावली उनका अपना श्राद्धकर्म है, जो वे कर रहे हैं। उन्हें आसन्नमृत्यु का डर नहीं था। लेकिन जीते जी वह अपने साहित्य को संयोजित करना चाहते थे। उनका उद्देश्य था कि निबंध, कहानी,उपन्यास, लघुकथा, स्तम्भ लेखन सब वर्गीकृत हो जाये।

परसाई की लोकप्रियता का कारण अधिकतम लोग व्यवस्था पर आक्षेप करने के कारण मानते हैं। जबकि वास्तव मे लोक प्रिय होने का कारण स्तम्भ लेखन के माध्यम से आम लोगों से जुड़ना था । हैरान परेशान व्यथित किससे अपनी बात कहे, एक व्यक्ति की समस्या उसकी व्यक्तिगत न होकर कई लोगों की सामूहिक होती है। उसे उजागर किया गया। समाधान बताये गये। लोगों को परसाई अपने घर का आदमी लगा और वे कबीर, प्रेमचंद के मार्ग पर चलते हुए लोकप्रियता के शिखर पर पहुँच गए। बच्चे, जवान, बूढ़े सभी उनके प्रशंसक बन गए। लोग पूछते थे लड़की कैसे पटेगी, बिजली, पानी , सड़क सभी समस्याओं का समाधान माँगा जाता था।

श्री परसाई ने स्तम्भ लेखन की शुरुआत 1947 में जबलपुर से प्रकाशित 'प्रहरी' नामक साप्ताहिक पत्र के माध्यम से की थी। इस स्तम्भ का शीर्षक 'नर्मदा के तट से' था, और परसाई जी उसमें 'अघोर भैरव' के नाम से लिखते थे। यह स्तम्भ 1960 तक जारी रहा। इस पत्र के प्रधान सम्पादक स्व. भवानीप्रसाद तिवारी थे। इसके अलावा परिवर्तन में 'अरस्तू की चिट्ठी', सारिका में 'कबीरा खड़ा बाजार में', कल्पना में 'और अन्त में', करण्ट में 'माटी कहे कुम्हार से' जैसे स्तम्भ अत्यधिक लोकप्रिय रहे हैं। जिन्होंने जनप्रियता की सीमा तोड़ दी। परसाई जी को (जनता के लेखक) की संज्ञा पाठकों के द्वारा दी गई हैं। उन्होंने लोक विश्वास, लोकप्रियता को ज़िन्दा रखा।

कम दाम में अपने पाठकों की माँग पर पेपर बैक संस्करण उपलब्ध कराया। परसाई ने अपने नाम को चरितार्थ किया और पारसा (धर्मात्मा) होने की अवस्था या भाव; धार्मिकता; साधुता; सदाचार को व्यंग्य के माध्यम से निभाया।

15 वीं शताब्दी में एक कबीर का जन्म हुआ था और 20 वी सदी में उनका पुनर्जन्म परसाई के रूप में हुआ। जो अपने कंधे पर बंदूक़ रखकर चलाते मिला, उसने किसी अगर मगर का सहारा नहीं लिया। अक्सर लोग व्यंग्य तो करते हैं लेकिन अपनी चमड़ी बचाकर जबकि परसाई जी ने सूली पर चढ़कर व्यंग्य लिखा। आपातकाल में भी कलम की धार कुंद नहीं हुई थी। आलोचक कहते हैं उन्हें ज्ञानपीठ योग्य नहीं समझा गया। वे पुरस्कार के लिए लिखते तो दुखी होते। गाँधी जी को भी आजतक शान्ति के नोबेल पुरस्कार के योग्य नहीं माना गया। जबकि सारा विश्व गाँधी दर्शन को मान चुका है। शान्ति के लिए गाँधी वाद से कोई अच्छा रास्ता नहीं हैं। गाँधीवाद से परसाई जी भी प्रभावित थे। गाँधी जी की शाल, बन्दर, प्रतिमा,लाठी आदि उनके प्रिय विषय रहे हैं।

उनके निबन्ध पाठ्य पुस्तकों में शामिल किये गये थे। उनके लिखे व्यंग्य पर कई नाटक खेले गये और वे व्यंग्य विद्या के अमर लेखक माने जाते हैं। वे लोक विश्वास के रूप में उभरे और व्यंग्य को लोक विश्वास की चरमसीमा तक पहुँचायाँ। हरिशंकर परसाई केवल एक लेखक नहीं थे, वे विचारों की मशाल थे। उन्होंने व्यंग्य के माध्यम से समाज में बदलाव लाने की कोशिश की। उनकी शैली और दृष्टिकोण ने हिंदी साहित्य को नई दिशा दी। उनकी जन्म शताब्दी व्यंग्य साहित्य के लिए प्रेरणा का युग है, जो यह बताते हैं कि परसाई जी की लेखनी कालजयी है।

2024 में उनकी जन्म शताब्दी के अवसर पर उन्हें श्रद्धांजलि देते हुए उनके योगदान को नए सिरे से समझने और उनके व्यंग्य की धार को महसूस करने का अवसर है। उनकी रचनाएँ आज के समय में भी प्रासंगिक हैं, क्योंकि वे समाज के उन मुद्दों पर बात करती हैं, जो आज भी जीवित हैं।

व्यंग्यकारों से मुझे एक ही शिकायत है कि वे मर्ज़ तो बता देते हैं लेकिन दवा नहीं देते। समस्या का कुछ तो समाधान बताना चाहिए। जब बीमारी है तो इलाज भी होगा। केवल गाली देने,गलती दिखाने से काम नहीं चलेगा । जब हम छेद देख सकते है तो उन्हें भर भी सकते है। मैं इस विशेषांक के शुधिलेखकों में सर्वश्री डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी (पद्मश्री से सम्मानित), प्रेम जनमेजय, डॉ. सुभाष अत्रे (आई.पी.एस. से.नि.), मलय जैन सहायक महानिरीक्षक मध्यप्रदेश पुलिस भोपाल, डॉ. श्याम सुंदर दुबे, श्रवण कुमार उर्मलिया, धर्मपाल महेन्द्र जैन, कुमार सुरेश, योगेश कुमार गुप्ता प्रधान न्यायाधीश (से.नि.), डॉ. लता अग्रवाल, डॉ. श्रीकृष्ण जुगुनू, डॉ. मोहन गुप्त सहित विशेषांक में सम्मिलित स्तंभ लेखकों का विशेष आभार जिनके रचनात्मक सहयोग के कारण यह विशेषांक विशेष और संग्रहणीय बन पड़ा है।

उमेश कुमार गुप्ता
प्रिंसिपल जिला न्यायाधिश (से.नि.)
मो. 9479909299
Email- gupta.umesh0@gmail.com

संपादकीय

अनुरोध : इस हरिशंकर परसाई जन्म शताब्दी विशेषांक का उद्देश्य व्यंग्य विधा की विख्यात शख्सियत से साक्षात्कार कराना है। किसी की मानहानि करना नहीं।

आभार : उन सभी प्रकाशकों, लेखकों, सामग्री संग्रहकर्ताओं तथा संदर्भ सामग्रीदाताओं का जिनके महत्वपूर्ण रचनात्मक सहयोग से प्रस्तुत अंक 'कला समय' का संग्रहणीय विशेषांक बन सका।

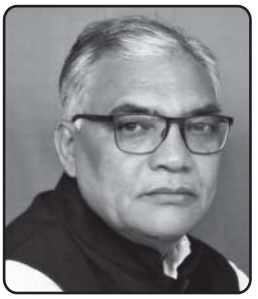

हिन्दी साहित्य में व्यंग्य को व्यापक स्वीकृति एवं साहित्यिक दर्जा दिलाने वाले : हरिशंकर परसाई

''एक दिन फिर फूटेंगे नये-नये पत्ते
उस बोधिवृक्ष से
एक दिन तानेंगे अपना धनुष एक लव्य आज के
गुरु दक्षिणा में बिना दिये अपना अँगूठा
एक दिन फिर भटके मेघों से बरसेगा पानी
कोई मेघ मल्हार सुनते-सुनते
नये अद्वैत की रौशनी में
दलित लिखेंगे अपना भवितव्य
आखिर एक दिन हम कमजोरों को मिल जायेगी यह पृथ्वी''

- ओ.एन.वी. कुरुप

विश्वविख्यात, सुप्रसिद्ध, यशस्वी व्यंग्यकार, स्तम्भकार, कथाकार, उपन्यासकार, संपादक हिन्दी साहित्य में व्यंग्य को व्यापक स्वीकृति एवं साहित्यिक दर्जा दिलाने वाले हरिशंकर परसाई हमारे 'ग्रेट मास्टर्स' में से एक हैं। जिनकी लिखी हर लाइन में शब्दों के बाण रूपी सम्पूर्ण व्यंग्य बोलता है। गद्य लेखन के द्वारा उन्होंने जो रचनात्मक लड़ाई लड़ी वह उन्हें दुनिया के उन चुनिंदा रचनाकारों में प्रतिष्ठित करती है, जिन्होंने एक विषम तथा बंधे हुए समाज को आमूल बदलने के लक्ष्य को कभी नहीं छोड़ा। कथाकार और उपन्यास के रूप में तथा नाटक लेखन में ऊंचाईयां छूने वाले परसाई की भाषा वही है जिसमें वे बोलते थे। उनकी भाषा कबीर-शैली की बेबाकी से तथा प्रेमचंद की सर्वकालिकता से जुड़ी हुई है। उन्होंने लोक शिक्षण का अतुलनीय काम अपनी कलम से किया। हरिशंकर परसाई सचमुच में कलम के असली सिपाही थे। उनके लिखे का नाट्य-रूपांतरण खूब हुआ है और अब भी हो रहा है। परसाई रचनावली (राजकमल प्रकाशन) द्वारा पहला संस्करण जनवरी 1985 तथा आठवां संस्करण 2023 में छह खण्डों में प्रकाशित हुआ है। जिसमें हरिशंकर परसाई का अधिकांश सृजन इन छह खण्डों के माध्यम से पाठकों तक पहुंच चुका है। उनकी कथा-दृष्टि समकालीन भारतीय समाज और मनुष्य जीवन की विसंगतियों और अंतर्विरोधों तक पहुंचती है और हिन्दी के साहित्यिक इतिहास में एक सकारात्मक भूमिका निभाती है। व्यंग्य शब्द को हिन्दी साहित्य में प्रतिष्ठित करने एवं उसे एक विधा विशेष का दर्जा दिलाने वाले जो लेखक अग्रिम पंक्ति में हैं, उनमें हमारे मध्यप्रदेश की धरा पर जन्में श्री हरिशंकर परसाई जी एवं श्री शरद जोशी जी उन्हीं में से दो महान हस्ताक्षर व्यंग्य विधा के हैं। जिस पर हम सबको और भारत के हृदय प्रदेश मध्यप्रदेश को गर्व है। उन्होंने अपने लेखन को अपनी आजीविका बनाने का जोखिम उठाया। ऐसा कौन लेखक होगा जो अपने जीते जी अपने जन्मशती के आयोजन को लेकर मुखर तरीके से इस तरह की टिप्पणी करेगा वह सिर्फ हरिशंकर परसाई जी हो सकते हैं। 'मैंने अपनी जन्मशती के आयोजन को लेकर मोटे तौर पर एक खाका तैयार कर लिया है। केंद्रीय आयोजन यही होगा। बाकी लोग भी चाहे तो अपनी-अपनी हैसियत विचार धारा, शत्रु अथवा मित्र-भाव से आयोजन कर सकते हैं। ऐसी संस्था जो मुझे समस्त भारतीय भाषाओं में सदी का महानतम लेखक घोषित करे उसे इस शुल्क से छूट मिल सकती है। यह छूट मुझे महान साबित करने के अनुपात में होगी। जिस संस्था के हाथ इस मामले में तंग हो, वे चाहे तो शत्रु-लेखकों की निंदा कर सकते हैं। इससे मेरी आत्मा प्रसन्न होगी। संस्थाएं चाहे तो मैं उन्हें ऐसे लेखकों की सूची सौंप सकता हूं। - हरिशंकर परसाई ! वे अपनी भूमिका में लिखते हैं कि निबंध लिखते हुए मुझे सार्थकता और संतोष का अनुभव हुआ है। तो दूसरी ओर परसाई यह भी लिखते हैं कि एक खास तरह का पाठक 'आलोचक' कहलाता है। उसके बारे में कुछ नहीं कहा

जा सकता। परसाई ने एक जगह यह भी लिखा है कि मैंने मनुष्य रूप से कहानियां लिखी हैं; जो इसमें भी मदभेद है कि वे नये शास्त्रीय मान से कहानियां हैं भी या नहीं। बहुत बारीक समझ के कुछ लोगों ने कहा भी है कि वे चीजें मन पर असर तो डालती हैं, याद भी रहती हैं, गूंजती भी हैं – मगर उनके कहानी होने में शक होता है। होता होगा।'' अपने पैर में जो जूता फिट न बैठे; उसे कोई जूता ही नहीं मानते। वे भूल जाते हैं कि कुछ जूते सिर के नाप के भी बनाये जाते हैं।'' कान्ति कुमार जैन जी परसाई जी की एक पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं कि स्विफ्त का विचार है – कि ऐसी दरारों पर लोगों का ध्यान केन्द्रित करने के लिए व्यंग्य की आवश्यकता पड़ी होगी। जो समाज में अपनी प्रचलित प्रतिष्ठा का दुरुपयोग करते हैं या तो जनता की नेकनीयता और भोलेपन का शोषण करते हैं – संक्षेप में जिनके जीवन के 'पब्लिक सेक्टर' और 'प्रायवेट सेक्टर' में असंगति और विरोध है – व्यंग्यकार उनकी खबर लेता है। जब पोप ने कहा था कि जब तक मैं जीवित हूं तब तक कोई भी सम्पन्न अथवा उदात्त बदमाश सम्मानपूर्वक श्मशान भूमि नहीं जा सकता तब वह व्यंग्यकार की उपयोगिता और महत्ता का प्रतिपादन कर रहे थे। जो कानून गीता, गंगाजल अथवा जनता की निगाहों से बच जाते हैं, उन्हें व्यंग्यकार अपने व्यंग्यदण्ड से आहत करता है। जो फसल को नुकसान पहुंचाने वाले कौए को मारकर अपने खेत में उलटा टाँग देता है जिससे दूसरे कौए डरें और फसल का नुकसान न करें। हम यह कह सकते हैं कि हरिशंकर परसाई ने सामान्यजन को प्रगतिशील जीवन-मूल्यों के प्रति सचेत एवं समाज-राजनीति में भिदे हुए पाखण्ड को उद्घाटित करने का जितना कार्य किया है, प्रेमचंद जी के बाद उतना हिंदी में किसी लेखक ने नहीं किया। प्रेमचंद की परम्परा को बढ़ाने वाले जो साहित्यकार स्वतंत्र भारत में रचना कर रहे हैं, उनमें हरिशंकर परसाई सबसे प्रथम पंक्ति में आते हैं। हमारी शताब्दी के दूसरे तीसरे और चौथे दशक के लगभग आधे दशक के प्रतिनिधि जन-लेखक यदि प्रेमचंद हैं, तो छटवें और सातवें दशक के हरिशंकर परसाई। साहित्य के माध्यम से सामान्य जनता को सामाजिक और राजनीतिक समझदारी देने और सड़ी-गली जीवन व्यवस्था को नष्ट कर एक नई समाज-रचना का संकल्प कर हिन्दी में जिन लेखकों ने साहित्य का निर्माण किया है उनमें परसाई सबसे आगे की कतार में हैं। परसाई ने सामाजिक और नीतिक यथार्थ की जितनी समझ और तमीज पैदा की उतनी हमारे युग में और लेखक नहीं कर सकते हैं। वे हमारे जीवन-मूल्यों के विघटन का इतिहास जब भी लिखा जायेगा तो परसाई का साहित्य संदर्भ-सामग्री का काम करेगा। उन्होंने अपने लिए व्यंग्य की विधा चुनी, क्योंकि वे जानते हैं कि समसामयिक विडम्बना के लिए व्यंग्य से बड़ा कारगार हथियार और दूसरा नहीं हो सकता! व्यंग्य की सबसे बड़ी विशेषता उसकी तत्कालिकता और संदर्भों से उसका लगाव है।

"व्यंग्य का एक बड़ा लाभ यह होता है कि पाठक यह जानने में समर्थ होता है कि उसे राजनीतिक और सांस्कृतिक मूल्यों में किसकी पक्षधरता करनी चाहिए। आज के व्यंग्यकार ने सामान्य पाठक को अपने परिवेश के प्रति जागरूक बनाने का जितना काम किया है, उतना किसी अन्य विधा के लेखक ने नहीं। जो पाठक न तो इस तरफ के हैं और न उस तरफ के – उनके लिए व्यंग्य-रचनाओं को पढ़कर अपना पक्ष चुनना आसान हो जाता है। व्यंग्य की यह शक्ति अपने आप में स्वस्थ और जागरूक समाज के निर्माण में बड़ा मूल्यवान योग देती है।"

साहित्यकार व्यंग्य का उपयोग चटखारेबाजी के लिए भले ही कर ले किसी गंभीर लक्ष्य के लिए उसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। ऐसे विचारकों ने साहित्य के लिए जो आदर्श स्वीकृत कर रखे हैं, व्यंग्य उनकी धज्जियां उड़ाता है। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं कि व्यंग्य लेखक ऐसे मार्यादा-वादियों की दृष्टि में हल्का लेखक सड़कछाप लेखक या फनी लेखक होता है। व्यंग्य को साहित्य की 'शेड्यूल्ड कास्ट' विधा मान लिया गया है, पर कबीर को भी मर्यादावादी विचारकों ने कवि मानने से परहेज करना चाहा था। वास्तव में व्यंग्य का मूल एवं प्राथमिक स्वर प्रतिष्ठान-विरोधी होता है। सत्ता में रहने वालों को व्यंग्य कभी प्रीतिकार नहीं होता, वे कभी उसका स्वागत नहीं करते। व्यंग्य या तो व्यक्ति का या उन विचारों और परम्पराओं का जिन पर संस्थाएं सत्ताएं या प्रतिष्ठान आधारित होते हैं। ध्वंस करता है। हरिशंकर परसाई के तीखे धारदार शब्दबाण पीठ पर वार नहीं करते वह तो सीधे-सीने पर चोट देते हुए गहरा और तीखा प्रहार करते हैं। समाज में फैली हुई विषमता राजनीति में व्याप्त ढकोसला, नैतिक मूल्यों का मिथ्याचार – ये सब-के-सब व्यंग्य का कच्चा माल है। इसलिए मध्यकाल में कबीर को धर्म के आडम्बर के विरुद्ध लुकाठी चलानी पड़ी थी और आज के व्यंग्यकार को राजनीति में दुरंगेपन के विरूद्ध कटिबद्ध होना पड़ता है। मुक्तिबोध के शब्दों में कहें तो – 'जो है उससे बेहतर चाहिये, पूरी-दुनिया साफ करने के लिए मेहतर चाहिये।' तो वे व्यंग्यकार के महान जीवनोद्देश्य की ही चर्चा कर रहे थे। इसलिए आज हरिशंकर परसाई या शरद जोशी या श्रीलाल शुक्ल बार-बार राजनीति के प्रतिष्ठान और उसके निहित तत्त्वों पर वार करने के लिए बाध्य होते हैं। व्यंग्यकार के रूप में लेखक अपना उत्तरदायित्व मानता है, कि वह उन सब पर चोट करें जिन्हें वह गलत या बुरा मानता है। यहां यह जिज्ञासा की जा सकती है कि चोट का लक्ष्य, उसकी परिधि और उसका प्रभाव क्या है ? क्या व्यंग्यकार उन नैतिक भ्रष्टताओं अथवा रूढ़ियों को सुधारने में सफल हो जाता है, जिस पर वह व्यंग्य की लाठियाँ

बरसाता है? व्यंग्यकार भी भ्रष्ट अनैतिक, मिथ्यावादी और पाखण्डी को बदल न पाये तो भी उसे निराशा अथवा दुखी होने की आवश्यकता नहीं है। वह उन लोगों को अपना नैतिक समर्थन देता है जो ईमानदार नैतिक और रूढ़ि विरोधी हैं।

व्यंग्य का एक बड़ा लाभ यह होता है कि पाठक यह जानने में समर्थ होता है कि उसे राजनीतिक और सांस्कृतिक मूल्यों में किसकी पक्षधरता करनी चाहिए। आज के व्यंग्यकार ने सामान्य पाठक को अपने परिवेश के प्रति जागरूक बनाने का जितना काम किया है, उतना किसी अन्य विधा के लेखक ने नहीं। जो पाठक न तो इस तरफ के हैं और न उस तरफ के - उनके लिए व्यंग्य-रचनाओं को पढ़कर अपना पक्ष चुनना आसान हो जाता है। व्यंग्य की यह शक्ति अपने आप में स्वस्थ और जागरूक समाज के निर्माण में बड़ा मूल्यवान योग देती है।

'कला समय' का यह प्रतिष्ठा विशेषांक 'हरिशंकर परसाई जन्म शताब्दी वर्ष के अवसर पर व्यंग्य की इस महान शख्सियत को याद करना उन्हें 'कला समय' की ओर से अपनी आदरांजलि देना उद्देश्य है किसी की मानहानि करना नहीं। हम इस महत्वपूर्ण विशेषांक के अतिथि संपादक प्रिंसिपल जिला न्यायाधीश रिटा. श्री उमेश कुमार गुप्ता जी के हृदय से आभारी हैं जिन्होंने हमारे विनम्र आग्रह को स्वीकार करते हुए इस विशेष हरिशंकर परसाई विशेषांक के लिए अतिथि सम्पादक के रूप में अपनी कृपापूर्वक स्वीकृति प्रदान की हम उनके प्रति अपनी गहरी कृतज्ञता प्रगट करते हुए कृतज्ञ हैं। हम उन सभी व्यंग्य के विद्वान हस्ताक्षरों के भी हृदय से आभारी हैं जिन्होंने हरिशंकर परसाई जी के कृतित्व और व्यक्तित्व पर अपना रचनात्मक सहयोग देकर इस विशेषांक को संग्रहणीय बनाने में अपना भरपूर योगदान दिया हम उन सभी लेखकों के प्रति कृतज्ञ हैं। इस विशेषांक के युवा और होनहार चित्रकार श्री अवधेश बाजपेयी जी के भी हृदय से आभारी हैं कि उन्होंने बहुत ही अल्प समय में इस विशेषांक का मुख्य आवरण बनाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया हम श्री बाजपेयी जी के प्रति कृतज्ञ है। हम विशेष रूप से आभारी है दुष्यंत कुमार पाण्डुलिपि संग्रहालय के श्री रामराव वामनकर जी एवं श्रीमती करूणा राजुरकर जी के जिन्होंने हरिशंकर परसाई की मूल पाण्डुलिपि जो उन्हें वरिष्ठ साहित्यकार कथाकार श्री कमलेश्वर जी के सौजन्य से प्राप्त हुई थी। जो दुष्यंत संग्रहालय की धरोहर है 'कला समय' के इस विशेषांक के निमित उपलब्ध कराई हम उनके प्रति विशेष रूप से आभारी हैं। इस मूल दस्तावेज के कारण यह अंक अमूल्य धरोहर के रूप में एक दस्तावेज विशेषांक हो गया है। हम उनके प्रति कृतज्ञ हैं।

"साहित्यकार व्यंग्य का उपयोग चटखारेबाजी के लिए भले ही कर ले किसी गंभीर लक्ष्य के लिए उसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। ऐसे विचारकों ने साहित्य के लिए जो आदर्श स्वीकृत कर रखे हैं, व्यंग्य उनकी धज्जियां उड़ाता है। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं कि व्यंग्य लेखक ऐसे मार्यादा-वादियों की दृष्टि में हल्का लेखक सड़कछाप लेखक या फनी लेखक होता है।"

अंत में रामधारी सिंह दिनकर जी के इन पंक्तियों के साथ -

आरती लिए तू किसे
ढूँढता है मूरख
मंदिरों, राजप्रसादों में,
तहखानों में?
देवता कहीं सड़कों
पर गिट्टी तोड़ रहे,
देवता मिलेंगे खेतों में खलिहानों में।

हमेशा की तरह हमें अपनी प्रतिक्रियाओं और सुझावों से अवगत कराने की कृपा करें। नूतन वर्ष 2025 की हार्दिक शुभकामनाएं।

।। शुभमस्तु ।।

- भँवरलाल श्रीवास

व्यंग्य आलेख

परसाई अप्रासंगिक नहीं हो सकते

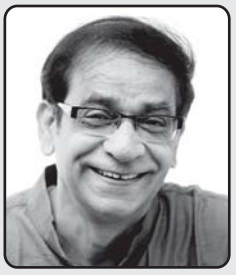

ज्ञान चतुर्वेदी
(पद्मश्री से विभूषित)

कहने वाले कहते हैं कि परसाई प्रासंगिक नहीं रहे आज । बहुत पुराने हो चुके । अब वे केवल ऐतिहासिक महत्व की चीज हैं । आज समय एकदम बदल गया है । परसाई की सदी निकल चुकी। आज का व्यंग्य परसाई के समय से आगे का व्यंग्य है। यह इक्कीसवीं सदी है । इस सदी की दुनिया, इसके नागरिक लीडर्स और तानाशाह, इसकी चुनौतियां, दिनों-दिन ग्लोबलाइजेशन के बढ़ते दायरे और ज्वालामुखी के लावे सा फैलता बाजारवाद - यह सब परसाई के जमाने में था ही नहीं तो इस समय को समझने के लिये परसाई का लेखन कैसे मदद कर सकता है ? फिर क्यों तुम इस सदी में भी परसाई के बारे में बात करते रहते हो ?

पूछने वाले पूछने लगे हैं कि बदले समय में हरिशंकर परसाई कितने प्रासंगिक बचे हैं ?

वे कहते हैं कि वर्तमान दुनिया वो नहीं है जो परसाई के जमाने में थी । इस दुनिया को परसाई पढ़कर नहीं जाना जा सकता अब के समय की राजनीति, इकनामिक्स, धर्म, सांप्रदायिक दांव पेंच, सैद्धांतिक लड़ाइयां और विचारों की तस्वीर तबसे एकदम अलग है । आज के जीवन के द्वंद, चुनौतियां, समाजशास्त्र और विसंगतियां इतनी अलग हैं कि इनको परसाई के चश्मे से समझा ही नहीं जा सकता। परसाई की दुनिया आज की दुनिया जैसी जटिल नहीं थी। आज की दुनिया कुछ ज्यादा समझदार , बहुत ज्यादा ज्यादा मूर्ख और अलग तरह से क्रूर हो गई है । इसे परसाई के सहारे कैसे डिफाइन करें?

... सोशल मीडिया परसाई के जमाने में था ही नहीं । सांप्रदायिक ताकतें , आतंकवाद , पूंजीवाद के नये पैंतरों में उलझी और (और इंटरनेट और मोबाइल के जरिये) बेहद करीब लग रही यह दुनिया पहले कभी इतनी अकेली नहीं थी । परसाई की व्यंग्य कथाओं के चरित्र जो संवाद फैंटेसी में बोलते थे वे आज की दुनिया का यथार्थ है; आज के इस फैंटेसीनुमा यथार्थ पर तुम कैसे व्यंग्य लिखोगे ? है न कठिन काम ? हां , यह सच है कि आज व्यंग्य रचना ज्यादा कठिन हो गया है । पर यह भी उतना ही बड़ा सच है कि परसाई को पढ़े समझे बिना व्यंग्य लिखा ही नहीं जा सकता ।

यह सच है कि आज की दुनिया में विचार की मृत्यु की घोषणा हो चुकी है और अखबारों में वैचारिक लेखन की स्पेस खिसकती हुई हाशिये से भी बाहर निकल रही है , ऐसे में परसाई जैसे वैचारिक लेखन का स्थान ही कहां बचा है ? ऐसे में कहा जा सकता है कि फिर परसाई से सीखकर भी हम क्या लिख देंगे ? परसाई के लेखन पर क्यों कोई बात करना ? परसाई का स्थान अब मात्र इतिहास के पीले पन्नों में रह गया है भाई साहब ! आज के व्यंग्यकारों के लिये परसाई प्रासंगिक नहीं रहे । उनको पढ़ समझकर आज के व्यंग्य को कुछ भी हासिल नहीं होने का - कुछ ऐसी बातें होने लगी हैं आजकल ।

एक तरफ ये बातें और दूसरी तरफ हर बात में इनके द्वारा ही परसाई का नाम लेने का खेल भी चल रहा है । वर्तमान परिदृश्य में परसाई की प्रासंगिकता पर प्रश्न उठाने वाले अक्सर वे लोग हैं जो

रेखाचित्र: अवधेश बाजपेयी

जो आदमी स्वार्थ का बिल्कुल विसर्जन कर दे, वह बहुत खतरनाक हो जाता है। वह दूसरे के प्राण तक ले लेना अपना नैतिक अधिकार समझता है।

व्यंग्यकार कहलाते हैं पर व्यंग्य की एक पंक्ति भी ठीक से नहीं लिख पाते। व्यंग्य के नाम पर ये न जाने क्या क्या लिखते हैं और चाहते हैं कि इसी को आज के समय का व्यंग्य मान लिया जाये। इसके लिये ये तमाम तरह के प्रपंच करते हैं और छाती ठोककर दम भरते हैं कि परसाई को पढ़ना आवश्यक नहीं, प्रेक्टीकली परसाई आज अप्रासंगिक हो चुके हैं। इन व्यंग्यकारों को अपनी अपढ़ता का अबूझ गुरूर भी है।

इन्होंने परसाई को कभी जाना नहीं बस उनका नाम रट लिया है कि यह नाम व्यंग्य की हर चर्चा में बड़ा काम आता है; राम से बड़ा राम का नाम जैसा मसला है। गांधीवादी गांधी का नाम लेते हैं, ये परसाई का; उनको गांधी से कोई लेना देना नहीं, इनको परसाई से। इनके लिये परसाई प्रासंगिकता यही बची है कि हर मंच से उनका नाम लेकर अपना नाम आगे बढ़ाओ। परसाई को पढ़ना आवश्यक नहीं। परसाई की पूजा करो, उनका नाम जपो, परसाई का ठप्पा लगाकर नकली व्यंग्य का बाजार खड़ा करो; समकालीन व्यंग्य में परसाई का इससे ज्यादा दखल इनको मंजूर नहीं। परसाई के लेखन इनको कुछ भी नहीं सीखना परंतु ये लोग ही जगह जगह परसाई की मूर्ति स्थापित करवाने वालों में प्रथम पंक्ति में नजर आते हैं।

ये परसाई का एक और तरीके से इस्तेमाल करते हैं। परसाई का नाम लेकर ये किसी को भी पीट सकते हैं। किसी भी बेहतरीन रचना को ये परसाई के नाम का पलीता लगाकर ध्वस्त कर सकते हैं कि ये रचना परसाई जैसी नहीं है, लिखते तो परसाई थे, बाकी सब तो खद्योत सम हैं जो जंह तंह करत प्रकाश टाइप करते फिर रहे हैं! ये तिकड़मी लोग इस वर्ष परसाई की शताब्दी भी सबसे बढ़ चढ़कर मनायेंगे। परसाई इनके लिये समारोहों और उत्सवों के लिये बड़े प्रासंगिक हैं, अदरवाइज टोटली अप्रासंगिक हो चुके हैं।

ये लोग जिरह भी करते हैं कि बताइये न, परसाई प्रासंगिक क्यों हैं? कैसे?

आज उनके जैसा लिखें तो छापेगा कौन?

उनके ज़माने का व्यंग्य अलग था, हमारा वाला आज के समय का व्यंग्य है। परसाई हमारे एक सम्मानित पूर्वज जरूर हैं, बट दैटस इट, बस। बहुत सम्मान देते हैं हम उनको – उनका नाम हम अपने हर वक्तव्य में लेते हैं, हमने ही संस्था में परसाई सम्मान शुरू करवाया, हम परसाई व्याख्यान माला का आयोजन कितने धूमधाम से करते हैं, हम खुद परसाई पीठ पर तीन साल बैठे, कभी हमारे संस्मरण पढ़िये कि कैसे परसाई ने हमसे कहा था कि तुम जैसे युवा ही अब इस विधा का भविष्य हो, कि हमने परसाई .... ; हमसे परसाई के व्यंग्य का गहन अध्ययन करने की आशा करना ग़लत है क्योंकि आज की तारीख में परसाई जैसा व्यंग्य आउट आफ प्लेस चीज हो चुका है।

तो सच क्या है?

सच यह है कि परसाई आज भी उतने ही जरूरी और प्रासंगिक व्यंग्यकार हैं।

परसाई की प्रासंगिकता पर सवाल उठाना वैसा है जैसे कोई तुलसीदास जी की कविता पर सवाल उठाये। तुलसी को समझना,उन पर बात करना, उनकी कविताई में गहरे उतरने के आग्रह आज की कविता के लिये भी उतने ही प्रासंगिक हैं। तुलसी को पढ़े बिना आप कविता की विधा को समझोगे कैसे? कहानी में प्रेमचंद आज भी प्रासंगिक हैं कि नहीं? प्रेमचंद को पढ़े बिना हिंदी कहानी को समझने की बात कोई नहीं करता, कोई कर ही नहीं सकता। निराला, मीरा और कबीर को आप आज भी क्यों कर काव्यशास्त्र में गहरा उतरने की सीढ़ी मानते हैं? ये तो परसाई से भी बहुत पहले के लेखक हैं। यदि ये आज भी प्रासंगिक हैं तो परसाई क्यों नहीं? साहित्य की हर विधा के कुछ बड़े लेखक उस विधा को समझने, बरतने और उसके सौंदर्यशास्त्र में उतरने का द्वार होते हैं। ये लोग उस विधा में सदियों तक प्रासंगिक बने रहते हैं। परसाई ऐसे ही हैं, सतत प्रासंगिक। कल भी थे, आज भी हैं, आगे भी रहेंगे।

वे भारतीय व्यंग्य का सिंह–द्वार हैं (यह बात अलग है कि कुछ मित्र इस दरवाजे को ही पकड़कर बैठ गये हैं और इसकी सांकल बजाने को ही व्यंग्य मानते हैं जो परसाई की प्रासंगिकता का अलग तरह का दुरूपयोग है।)

परसाई को भारतीय समाज की जबर्दस्त समझ थी। वे इस समाज की शोषक ताकतों की गहन पड़ताल करके, पक्षधरता की स्पष्ट सोच के साथ अपने चरित्र रचते रहे। मातादीन से भोलाराम तक उनका कोई भी चरित्र कागजी कैरीकेचर नहीं है। उनका हर छोटा बड़ा चरित्र जीवंत है और उसे आज भी देखा जा सकता है। समय बदल गया है पर

"एक तरफ ये बातें और दूसरी तरफ हर बात में इनके द्वारा ही परसाई का नाम लेने का खेल भी चल रहा है। वर्तमान परिदृश्य में परसाई की प्रासंगिकता पर प्रश्न उठाने वाले अक्सर वे लोग हैं जो व्यंग्यकार कहलाते हैं पर व्यंग्य की एक पंक्ति भी ठीक से नहीं लिख पाते। व्यंग्य के नाम पर ये न जाने क्या क्या लिखते हैं और चाहते हैं कि इसी को आज के समय का व्यंग्य मान लिया जाये। इसके लिये ये तमाम तरह के प्रपंच करते हैं और छाती ठोककर दम भरते हैं कि परसाई को पढ़ना आवश्यक नहीं, प्रेक्टीकली परसाई आज अप्रासंगिक हो चुके हैं। इन व्यंग्यकारों को अपनी अपढ़ता का अबूझ गुरूर भी है।"

न्याय को अंधा कहाँ गया है मै समझता हूँ न्याय अन्धा नही काना है वह एक ही तरफ देख पाता है।

"साहित्य और कला की हर विधा तभी तक विधा के रुप में जिंदा रहती है जब तक उसके नये रचनाकारों में नया करने का साहस और उत्कंठा रहती है। कहानी और कविता इसी कारण आज भी विधा के तौर पर प्रासंगिक बने हुये हैं । इनके बरक्स व्यंग्य में एक अलग ही खेल चल रहा है। अच्छे व्यंग्यकारों को लगातार नजरंदाज करते हुये कुछ लोगों ने परसाई की आड़ लगाकर व्यंग्य विधा को हथिया-सा लिया है। व्यंग्य पर कोई भी बात करो तो ये परसाई को आगे कर देते हैं कि बेटा , पहले इनसे निबटो फिर हम तक पहुंचो। परसाई की बैरीकेडिंग बनाकर उन्होंने व्यंग्य का अपना ही बाड़ा बना लिया है। बड़े इत्मीनान से बैठे हुते वे व्यंग्य की तिजारत कर रहे हैं। आप उनके तथाकथित व्यंग्य पर कुछ कहें तो इसे सीधे परसाई के प्रति निरादर और आक्रमण मान लेंगे।"

समाज वही है। अपनी समस्त विसंगतियों के साथ आज के व्यंग्यकारों के समक्ष वे आज भी हैं, बस रूप बदल गया है। आज के लेखक को यदि इन चरित्रों तक पहुंचना है तो परसाई को पढ़ना होगा। परसाई का चिंतन और पक्षधरता स्पष्ट थी। वे शोषण, शोषक और शोषित की पहचान को लेकर ताजिंदगी एकदम स्पष्ट रहे। वे इस दुनिया में व्याप्त शोषण के रास्तों को गूगल मैप से ज्यादा प्रामाणिक तौर पर जानते थे।

उनका अध्ययन गहन था। बहुत पढ़ा था उन्होंने। उनके लेखन में भारतीय मुनियों, आध्यात्मिक गुरुओं, जातक कथाओं, महाभारत, रामायण, लोककथायें, इतिहास, अर्थशास्त्र, कविता, कहानी, साहित्य, तुलसी और विवेकानंद से लेकर मार्क्सवाद और गांधी तक का गहन अध्ययन झांकता है। उनकी विद्वत्ता उनके व्यंग्य पर बोझ नहीं होता था, यह उनकी रचनाओं में सहज ही घुलामिला रहता था -यही उनकी ताकत था। उनकी रचना में वैचारिकी इतनी सहज रहती थी कि पाठक हैरान रह जाता कि यही तो मैं कहना चाहता था पर मुझे यह उस तरह दिख क्यों नहीं रहा था जिस तरह परसाई ने देख लिया। भारतीय मानस की गहरी समझ और इसमें व्याप्त विसंगतियों की बेबाक पड़ताल की अदभुत प्रतिभा थी परसाई में। उन्होंने अपने लेखन को क्षणभंगुर कहा है पर वह उनकी विनम्रता थी। वे बहुत सा ऐसा लिख गये हैं जो शाश्वत रहने वाला है ; दुनिया के इको-सिस्टम की विसंगतियों की रेशा रेशा समझ उनके लेखन को समयातीत बनाती है।

परसाई आज भी व्यंग्यकारों के लिये उतने ही प्रासंगिक हैं। परसाई को जाने बिना कोई शख्स व्यंग्य के नाम पर भाषा से खेलता हुआ रचनाकार तो बन सकता है, व्यंग्यकार नहीं बन सकता। परसाई को पढ़ना भारतीय समाज के बुनियादी गुणों और दुर्गुणों, ताकत और कमजोरियों, कमियों और विसंगतियों को एक साथ समझने का अवसर देता है। परसाई कभी भी इकहरी कलम से कुछ नहीं रचते। वे समाज की ईमानदार और साहसी पड़ताल करते हैं। वे उन तमाम विसंगतियों को निर्भीक समझ के साथ उघाड़ते हैं जो धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक आड़ में पनपा करती हैं। विसंगतियों की ऐसी ही स्पष्ट समझ की जरूरत आज के व्यंग्यकारों को भी है। तो परसाई को तो समझना ही होगा। उनको पूजा की वस्तु बनाना ठीक नहीं। यदि आज का व्यंग्यकार परसाई को एक धार्मिक पुस्तक में बदल देगा तो यह इक्कीसवीं सदी के व्यंग्य के साथ बड़ी त्रासदी होगी। परंतु आज के हिंदी व्यंग्य में यह त्रासदी सब तरफ घट रही है। हम परसाई के नाम का कीर्तन कर रहे हैं , उनका मंदिर बनाकर भंडारे आयोजित कर रहे हैं परंतु समकाल में व्यंग्यकारों द्वारा परसाई को उस तरह से पढ़ा और समझा ही नहीं जा रहा। तभी तो समकालीन व्यंग्य संसार इतना दरिद्र नजर आता है ।

...एक जगह मैंने ऐसी ही बात कह दी तो परसाई को बिना पढ़े ही बात बात में उनका नाम लेने वाले एक सिद्धहस्त व्यंग्य एक्टिविस्ट मुझसे उलझ गये कि सर, आप समकालीन व्यंग्य के बारे में ऐसी गलतबयानी कैसे कर सकते हैं ? अरे सर, अभी तो हिंदी व्यंग्य का स्वर्णकाल चल रहा है। वे आगे बोलते रहे कि समकालीन व्यंग्य की नपती परसाई के इंचीटेप से न करें क्योंकि समय के साथ साहित्यिक मानदंड बदल गये हैं -समकालीन व्यंग्य की खुद की कसौटियां और इंचीटेप हैं। हम आजकल रचना में गहरा उतरने में यकीन नहीं करते जैसा परसाई करते थे; उथले में भीगकर ही स्नान का पुन्य मिल जाये तो गहरे उतरने की क्या जरूरत! परसाई की तरह लेखन में गहरे उतरने का आपका यह आग्रह क्यों ? छिछले चिंतन में ही वाह वाही, लाइक्स, तालियां और कनछेदीलाल पुरस्कार मिल जाता हो तो व्यंग्य का यही उत्सव चलने दीजिए न ? इस उत्सव में परसाई जैसों की कोई प्रासंगिकता नहीं। सतत उत्सव है आज का व्यंग्य संसार - रोज गोष्ठियां, रोज विमोचन, रोज पुरूस्कार! आज कितना ढेर सा व्यंग्य लिखा जा रहा है, वन लाइनर, कालम्स, तथाकथित उपन्यास भी ; पहले कभी इतना व्यंग्य छपा है?

समकालीन व्यंग्यकारों में एक वर्ग ऐसा भी है जो परसाई को साफ साफ अप्रासंगिक मानता है। वो कहता है कि परसाई टाइप के व्यंग्य का समय गुजर चुका। अब हम वो लिखेंगे जो छपेगा। छपना ही व्यंग्य है। छप जाना ही सबसे बड़ी सौंदर्यशास्त्रीय कसौटी है। आज के व्यंग्य संसार में कमजोर व्यंग्य पर भी आपस में इतना मीठा मीठा बोला जा रहा है कि चींटियां तक कन्फ्यूज हो गई हैं जबकि पाठक पूछ रहा है कि जिस मिठास के चर्चे गोष्ठी गोष्ठी हैं वह लेखन फीका इतना क्यों है ? ये लोग परसाई को अप्रासंगिक मानते हैं ताकि इनका कमजोर व्यंग्य स्थापित हो

मूर्खता के सिवाय कोई भी मान्यता शाश्वत नहीं है। मूर्खता अमर है। यह बार-बार मरकर फिर जीवित हो जाती है।

सके। इनका सपाट लेखन हिंदी व्यंग्य को वापस परसाई से पहले वाले उस समय में घसीट लाया है जब व्यंग्य की कोई पहचान ही नहीं थी।

यह भी सच है कि परसाई का समय हिंदी व्यंग्य का स्वर्ण युग केवल परसाई के कारण नहीं बना था। परसाई के साथ तब शरदजोशी, त्यागीजी, श्रीलाल शुक्ल, के पी सक्सेना, लतीफ घोंघी, शंकर पुणतांबेकर आदि ने इतना अलग और बेहतरीन व्यंग्य रचा कि हिंदी साहित्य में व्यंग्य को एक विधा का आदर और स्वीकार लगभग मिल गया था। आगे समकालीन व्यंग्य ने अपने इन पूर्वजों की धरोहर को उस तरह नहीं सहेजा। हमने व्यंग्य को वहीं छोड़ दिया जहां हमारे महान प्रतिभाशाली पूर्वज उसे पहुंचा गये थे। हमने खुद कुछ भी कमाई करनूल की चिंता नहीं की। हम तो बैठकर परसाई और अपने अन्य पुरखों के नाम की कमाई खाने लगे। हमने लंबी तान ली। बाप-दादा का दिया इतना कुछ है घर में, क्यों अपनी जान खुटाना? समकालीन व्यंग्य को हमने उस तरह से आगे ही नहीं बढ़ाया जैसा अन्य विधाओं ने किया। हम अपने पूर्वजों के नाम को ही दोहराते, तिहराते रहे। हम परसाई की चौथी कार्बन कापी बनकर बड़े खुश रहे। हमें एक आत्मघाती आत्ममोह और वाचालता घेर चुकी है। आज के व्यंग्य में सपाट लेखन का ऐसा घटाटोप मचा है कि परसाई इस अजीबोगरीब चेहरे वाले व्यंग्य को पहचान ही न पाते।

साहित्य की दूसरी विधाओं में ऐसा परम संतोष भाव कभी नहीं रहा। वे लगातार अपनी तरह से बेचैन रहे, और इसी वजह से अपनी विधा को जीवंत रखते रहे। हिंदी कविता समय के साथ लगातार स्वयं को बदलती रही। आज अच्छी कविता भी लिखी जा रही है, बुरी भी, परंतु नया करने की लगातार कोशिश है कवियों के बीच; वे यह मानकर संतुष्ट नहीं बैठ गये कि निराला या मुक्तिबोध ने तो सारी कविताई कर डाली है, अब हमें करने को बचा ही क्या है? कहानी भी न तो प्रेमचंद पर रूकी, न ही रेणु, मोहन राकेश, उदयप्रकाश या स्वयं प्रकाश पर, वो बाकायदा चंदन पांडेय की पीढ़ी में और काव्या कटारे की एकदम नई पीढ़ी के कहानीकारों के बीच जीवंत और स्पंदित है। आज की कहानी एकदम अलग तेवर से लिखी जा रही है पर उसमें प्रेमचंद की कहानी परंपरा और अजर आत्मा बरकरार है।

दुनिया में हर शै लगातार बदलाव के प्रॉसेस में है।

साहित्य और कला की हर विधा तभी तक विधा के रुप में जिंदा रहती है जब तक उसके नये रचनाकारों में नया करने का साहस और उत्कंठा रहती है। कहानी और कविता इसी कारण आज भी विधा के तौर पर प्रासंगिक बने हुये हैं । इनके बरक्स व्यंग्य में एक अलग ही खेल चल रहा है। अच्छे व्यंग्यकारों को लगातार नजरंदाज करते हुये कुछ लोगों ने परसाई की आड़ लगाकर व्यंग्य विधा को हथिया-सा लिया है। व्यंग्य पर कोई भी बात करो तो ये परसाई को आगे कर देते हैं कि बेटा , पहले इनसे निबटो फिर हम तक पहुंचो। परसाई की बैरीकेडिंग बनाकर उन्होंने व्यंग्य का अपना ही बाड़ा बना लिया है। बड़े इत्मीनान से बैठे हुये वे व्यंग्य की तिजारत कर रहे हैं। आप उनके तथाकथित व्यंग्य पर कुछ कहें तो इसे सीधे परसाई के प्रति निरादर और आक्रमण मान लेंगे। वे खुद को परसाई की परंपरा वाला घोषित करके कुछ भी लिख रहे हैं और आपको इसे ही खूबसूरत बताना है!... कौन इतना बढ़िया लिख रहा है भाई ?.... हम लिख रहे हैं। ...इसमें व्यंग्य कहां है ?... है, है तो पर उसे देखने समझने की दृष्टि तुम में नहीं है। ... वे अंधत्व को दृष्टि घोषित कर चुके हैं। परसाई की एजेंसी उनके पास है। उनकी दुकान का नाम परसाई भंडार है जहां वे व्यंग्य के नाम से कुछ भी चीज परसाई की पुड़िया में बांधकर देते रहते हैं। इन एजेंटों ने परसाई को या तो पढ़ा ही नहीं है या बस काम चलाऊ ही उलट पलट कर देखा है, उड़ता उड़ता सा पढ़ रखा है । वे इसी अध्ययन के बूते यहां वहां परसाई की एकाध पंक्ति के सहारे अपनी पंक्ति पटक देते हैं। अगर समकालीन व्यंग्य सपाट बयानी और दोहराव में उलझ गया है तो उसके अपराधी ये ही हैं जो अपने सपाट लेखन को व्यंग्य के तौर पर स्वीकार कराने के लिये व्यंग्य की परिभाषा और सौंदर्य शास्त्र ही बदल देने पर आमादा हैं और इसे परसाई की परंपरा का नाम दे रहे हैं ।

मेरे लिये परसाई आज पहले से कहीं ज्यादा प्रासंगिक हैं ।

आज की दुनिया में परसाई के समय से भी जटिल विसंगतियां हैं। वर्तमान व्यंग्यकारों को इन्हीं विसंगतियों को समझना था हमें परंतु वह किनारे की रेत में चहलकदमी करके ही खुश है। वह गहरे उतरना ही नहीं चाहता। उसे परसाई को पढ़ना ही होगा क्योंकि परसाई जैसी समझ, चिंतन और दृष्टि की आज जितनी आवश्यकता है, उतनी पहले कभी नहीं रही। समकालीन व्यंग्य की जिम्मेदारी है कि वो परसाई की परंपरा को आगे बढ़ाते हुये अपना खुद का ऐसा नया मुहावरा गढ़े जो परसाई की नींव पर एक मजबूत इमारत खड़ी हो। नींव के तौर पर परसाई आज और भी प्रासंगिक हैं। परसाई का सारा लेखन, जीवन के शाश्वत बुनियादी प्रश्नों और मूल्यों के उत्तरों की ईमानदार तलाश रहा है। उनका तात्कालिक और क्षणभंगुर व्यंग्य लेखन आज यदि शाश्वत सिद्ध हुआ है तो वो इसीलिए कि परसाई के पास समाज की शोषक शक्तियों और शोषित जनों के बीच के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक अंतर्संबंधों से बावस्ता शाश्वत प्रश्नों के हल तलाशने की जिजीविषा भरा जो लेखन है, इसी ने उनके लिखे को शाश्वत बना डाला।

परसाई की प्रासंगिकता आज भी असंदिग्ध है ।

लेखक: वरिष्ठ व्यंग्य साहित्यकार हैं।
सम्पर्क: ए-40, अलकापुरी, भोपाल -462024
फोन 9425604103

■

इस कौम की आधी ताकत लड़कियों की शादी करने में जा रही है ।

हरिशंकर परसाई, शरद जोशी और श्रीलाल शुक्लः स्तम्भ लेखन की दिशाएं

प्रेम जनमेजय

आदि मानव के जीवन में हास्य, उसके मानवीय विकास के साथ मूल प्रवृत्ति के रूप में विकसित हुआ। व्यंग्य सभ्य मानव की मूल प्रकृति है। हंसना, रोना , क्रोध, प्रेम आदि अनुभूतियों को वह भाषा के अभाव में ध्वनि एवं शारीरिक मुद्राओं के माध्यम से प्रकट करने लगा। धीरे-धीरे उसकी बौद्धिक चेतना का भी विकास हुआ और वह अपने विकसित जीवन के संदर्भ में चिंतन करने लगा। उसने जब पशुत्व से सभ्य सुंस्कृत एवं विवेकशील प्राणी की यात्रा तय कर ली तो उसकी भाषा और भंगिमाओं में हास्य के साथ व्यंग्य भी जुड़ गया। जो मानव आहत होने पर क्रोधित होता था और भौतिक हथियार का प्रयोग करता था, उसी विवेकशील प्राणी ने अपनों के समक्ष भौतिक हथियार प्रयुक्त न कर पाने की विवशता में व्यंग्य नामक शाब्दिक हथियार के प्रयोग को आरंभ किया। अब वह निश्छल विसंगतियों पर हंसता था तो कष्टदायक विंसगतियों पर व्यंग्य भी करता था। व्यंग्य उसके लिए विवशताजन्य हथियार था। व्यंग्य का प्रयोग मानव की बौद्धिक चेतना का शंखनाद था। धीरे-धीरे वाचिक व्यंग्य साहित्य का अंग बना। व्यंग्य का प्रयोग एक शब्द शक्ति के रूप में किया जाने लगा। नाटको में विदूषक की भूमिका महत्वपूर्ण होने लगी।

इस विवशताजन्य हथियार का प्रयोग हिंदी साहित्य में आंरभ से ही किया जा रहा है। व्यंग्य नामक यह हथियार समय व्यक्ति और परिस्थिति के अनुसार अभिव्यक्त होता हुआ अपने स्वरूप को विकसित करता रहा है। एक समय में मात्र शब्द की एक शक्ति के रूप में अभिव्यक्त, वाक्यों अथवा प्रसंगो के रूप में किसी रचना का हिस्सा बनने तक सीमित व्यंग्य आज एक पूर्ण रचना के रूप में अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व के साथ विद्यमान् है।

हिंदी साहित्य में व्यंग्य का निजी चेहरा स्वतंत्रता आंदोलन के साथ- साथ उभरना आंरभ हुआ। वह पश्चिम के स्टायर का स्वरूप ग्रहण करने लगा। पाश्चात्य साहित्य में व्यंग्य के शास्त्रीय पक्ष को लेकर व्यापक चर्चा आरंभ हुई। व्यंग्य के उद्देश्य, रचना - प्रक्रिया, कथानक, शब्द, विधा, शैली आदि के स्वरूप का निर्धारण प्रस्तुत कर पाश्चात्य आलोचकों ने सिद्ध किया कि व्यंग्य का स्वतंत्र व्यक्तित्व है। पाश्चात्य आलोचना में, व्यंग्य के अन्य सहयात्रियों-- हास्य, फंतासी, वाग्वैदग्ध्य, पैरोडी, कटाक्ष आदि की तुलना के द्वारा आधारभूत अंतर को भी रेखांकित किया गया। व्यंग्य को लेकर विधा का प्रश्न भी पश्चिम में उठाया गया है। अपने आरंभिक काल में व्यंग्य को पर्याप्त संघर्ष करना पड़ा। वस्तुतः व्यंग्य का महत्त्व बीसवीं शताब्दी में ही सही रूप में पहचाना गया। इससे पूर्व व्यंग्य की सामाजिकता, उसकी व्युत्पत्ति पर ही चर्चा ही अधिक चर्चा हुई और ये चर्चाएँ व्यंग्यकारों ने स्वयं कीं। आरंभ में व्यंग्य की चर्चा कामदी के साथ अधिक हुई। व्यंग्य को कामदी के व्यापक अर्थ में मिला दिया गया। परंतु व्यंग्य के सूक्ष्म अध्ययन एवं विश्लेषण द्वारा तत्कालीन आलोचकों ने व्यंग्य के स्वतंत्र स्वरूप की ओर साहित्य का ध्यान आकृष्ट किया। व्यंग्य ध्वनि के रूप में और व्यंग्य के स्वतंत्र रूप में- इस अंतर को स्पष्ट किया गया। "So the Writers on satire in the 1940's and 1950's attempted to distinguish 'satire' as a form from "satiric" a general tone."

हिंदी साहित्य का आधुनिक काल अनेक अर्थो में आधुनिक है और उसने हिंदी व्यंग्य को अत्याधिक आधुनिक भी किया है। पहली बार व्यंग्य गद्य विधा में अभिव्यक्त हुआ। आधुनिक काल में पहली बार व्यंग्य समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं के माध्यम से अपने पाठकों तक पहुँचने लगा। कह सकते हैं कि हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के आंरभ में ही भारतेंदु युग के महत्वपूर्ण लेखकों -- भारतेंदु हरिश्चंद्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र,प्रेमघन, अम्बिकादत्त व्यास आदि ने हिंदी साहित्य में हास्य-व्यंग्य को स्वरूपगत आरंभ प्रदान किया।

भारतेंदु युग में ही व्यंग्य पत्रकारिता की नींव पड़ी और स्तम्भ लेखन को आंरभ मिला।

भारतेंदु ने 15 अगस्त 1867 को काशी से, काव्य केंद्रित 'कवि वचन सुधा' और छह वर्ष बाद में 15 अगस्त 1873 को उपन्यास, कहानी, निबंध, नाटक और कविता आदि की मासिक पत्रिका ' हरिश्चंद्र मैगजीन' की। (भारतेंदु ने सन् 1867 एवं 1873 में 15 अगस्त का ही चुनाव क्यों किया, क्या उन्हें पता था कि सन् 1947 को इसी दिन भारत स्वतंत्र होगा ?) पत्रकारिता की दृष्टि से यह एक स्वर्णिम युग का ऐतिहासिक आरंभ था। इतनी सारी पत्रिकाओं का एक साथ प्रकाशन आशातीत है। इस समय की पत्रिकाएं लगभग सभी विधाओं को फोकस

तारीफ़ करके आदमी से कोई भी बेवकूफ़ी करायी जा सकती है...।

कर रही थीं। यह इन्हीं पत्रिकाओं का परिणाम है कि व्यंग्य जैसी विधा के द्वार खुले। भारतेंदु के निबंधों में व्यंग्य विनोद प्रमुखता से रहता। अपनी इसी प्रवृत्ति के कारण उन्होंने व्यंग्य विनोद से पूर्ण अनेक रचनाएं लिखीं। ' एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न 'तथा' स्वर्ग में विचार सभा' जैसी रचनाओं के माध्यम से उन्होंने न केवल आधुनिक व्यंग्य के स्वरूप का आधार प्रस्तुत किया अपितु व्यंग्य को पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण हिस्सा बनने की शुरुआत भी की। डॉ0 विजयेंद्र स्नातक का मानना है कि भारतेंदु ने विषय को ध्यान में रखते हुए भाषा का परिवर्तन किया। यदि निबंध का विषय 'खुशी' है तो भाषा भी उर्दू-फारसी प्रधान है और यदि विषय शास्त्रीय और गंभीर है तो भाषा भी तत्सम प्रधान और क्लिष्ट होती है। '

भारतेंदु युग के सभी महत्वपूर्ण लेखको, ने व्यंग्य विनोद के लिए पत्रिकाओं के माध्यम का सार्थक प्रयोग किया। भारतेंदु के नेतृत्व में उन्होंने एक ऐसी शैली निर्मित की जो विसंगतियों के चित्रण के लिए सार्थक थी और रचना की पठनीयता में वृद्धि करती थी। आज इसी शैली ने रचना के एक अलग स्वरूप को जन्म दिया है , जिसे हम व्यंग्य रचना कहते हैं। भारतेंदु युग के लेखकों ने व्यंग्य को मात्र मनोरजन का कर्म भी नहीं माना अपितु उसका प्रयोग अंग्रेजी शासन, धार्मिक पाखंड, बाल विवाह , पाश्चात्य अंधानुकरण आदि के कारण उत्पन्न विसंगतियों पर प्रहार करने के लिए किया। इस युग में निबंध से अधिक प्रहसन के रूप में व्यंग्य अधिक अभिव्यक्त हुआ। भारतेन्दु ने सामाजिकता को भी ग्रहण किया और मनोरंजन तत्व को भी। भारतेन्दु के सामाजिक सुधार एवं हास्य तथा व्यंग्यकार का अद्भुत रूप उनके नाटकों में प्राप्त होता है। भारतेन्दु द्वारा लिखित चार प्रहसन प्रमुख हैं- 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'अंधेर नगरी', 'विषस्य विषयौषधम्' तथा 'जाति विवेकनी सभा'। इनमें से प्रथम दो को समाज एवं साहित्य में उनके हास्य और व्यंग्य के स्वस्थ दृष्टिकोण के कारण अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। भारतेन्दु युग में, भारतेन्दु के अतिरिक्त पं- देवकीनंदन त्रिपाठी, डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, पं बालकृष्ण भट्ट, श्री शरण, प्रतापनारायण मिश्र, रवि दत्त, पन्ना लाल, कमलाचरण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी, बाबू रामशरण शर्मा, सतीश चन्द्र, किशोरीलाल गोस्वामी, बाबू माधो प्रसाद, बलदेव प्रसाद मिश्र आदि प्रहसनकारों के रूप में समक्ष आते हैं। भारतेन्दु -युगीन प्राप्त अधिकांश प्रहसन पुस्तकाकार रूप प्राप्त नहीं होते हैं। इनका आकार छोटा था और वह विभिन्न सामाजिक पत्रिकाओं में ही प्रकाशित हुए।

भारतेंदु युग में निबंध लेखन के स्तर पर भाषा और शैली की एक प्रकार की स्वछंदता थी, जिसके कारण हिंदी व्यंग्य विकसित हुआ। द्विवेदी युग में' सरस्वती' के प्रकाशन एवं गद्य कवियों की कसौटी है जैसे वाक्यों ने निबंध को सीमित कर दिया। समस्त सीमाओं के चलते इस युग के बाल मुकुंद गुप्त ने हिंदी व्यंग्य साहित्य में एक नया इतिहास रचा। उन्होंने अपनी रचनाओं को भारतेंदु युग के रचनाकारों के साथ जोड़ा और

"हरिशंकर परसाई के लेखन में व्यंग्य ऋणात्मक नहीं है। अपने समय की राजनीतिक, शैक्षिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सामाजिक विसंगतियों पर परसाई नें जो व्यंग्य किए हैं उनमें एक ईमानदार व्यक्ति द्वारा बिना किसी लाग लपेट के ऐसी विसंगतियों पर प्रहार है, जो मानव विरोधी हैं। एक झोंक में हर किसी पर आक्रमण करते चले जाना परसाई की प्रवृत्ति नहीं है। उनके लेखन में एक गहरी करुणा छिपी है जो पाठक को सही चिंतन की ओर मोड़ती है।"

राजनीतिक तथा सामाजिक विसंगतियों पर गहरे कटाक्ष किए। 1877 में आंरभ 'भारत मित्र' के यह कालांतर में प्रधान संपादक बने और इन्होंने ' शिव शम्भु के चिठ्ठे' नामक स्तंभ आंरभ किया। इन्होंने न केवल अंग्रेज शासन अपितु उनके पिठ्ठुओं पर भी प्रखर प्रहार किए। एक छोटा सा उदाहरण - हे मर्द नामधारियों ! तुममे से ऐसे बहुत हैं, जिनको खुशामद करते उम्र बीत गई। तुम मर्द हो तो भी तुम्हारी रक्षा सरकार करती है और हीजड़े, हीजड़े हैं तब भी उनकी रक्षा सरकार करती है। कौन काम में तुम उनसे बढ़कर हो जिससे तुम मर्द हो और वह हीजड़े कहलावें। तुम खाते हो,पीते हो, शैकीनी करते हो, बाबूपन दिखाते हो और अंत में मर जाते हो, हीजड़े भी यही सब करते हुए मर जाते हैं। मरने पर दोनों बराबर !---" बाल मुकुंद गुप्त ने आत्माराम के नाम से भी व्यंग्य विनोद की रचनाओं का सृजन किया। न केवल राजनीतिक एवं सामाजिक अपित साहित्यिक विसंगतियों पर भी इन्होंने प्रहार कर एक नया विषय दिया।

व्यंग्य लेखन की परंपरा सुदृढ़ होती गई और धीरे-धीरे हास्य - व्यंग्य समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं का आवश्यक हिस्सा बनने लगा।

हिंदी व्यंग्य की पहली पीढ़ी के - हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, रवींद्रनाथ त्यागी, मनोहरश्याम जोशी ने, हिंदी व्यंग्य को स्वरूप तथा सशक्त आधार प्रदान करने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । मैं हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, रवींद्रनाथ त्यागी, मनोहरश्याम जोशी आदि के समय को हिंदी व्यंग्य साहित्य का स्वर्णकाल मानता हूं। यही वह समय है, जब मोहभंग के कारण उपजे अवसाद को तोड़ने के, इस समय के व्यंग्यकारों ने, व्यंग्य का हथियार के रूप में प्रयोग किया। यही वह समय है जब, व्यंग्य लिखा जा रहा है पर कैसा लिखा जा रहा है, इसके निकष की आवश्यकता महसूस की जाने लगी । व्यंग्य के प्रतिमानों के लिए आधार तैयार किया जाने लगा। यही वह समय है जब समझा गया कि व्यंग्य के तीन स्वरूप प्राप्त होते हैं- रचना में व्यंग्य, व्यंग्यात्मक टिप्पणियां एवं व्यंग्य रचना। व्यंग्य एक शैली नहीं है और न ही लेखन पद्धति, अपितु एक साहित्यिक प्रक्रिया है तथा लेखन की व्यवस्था है और इस रूप में वह अन्य विधाओं से मिश्रित हो कर भी

मार्क ट्वेन ने लिखा है -यदि आप भूखे मरते कुत्ते को रोटी खिला दें, तो वह आपको नहीं काटेगा। कुत्ते में और आदमी में यही मूल अंतर है।

अभिव्यक्त होती है। व्यंग्य विभिन्न विधाओं में आवाजाही कर सकता है। अपनी- अपनी तरह से व्यंग्य प्रभु की मूरति का वर्णन करने वाले,व्यंग्य के साकार और निराकार उपासकों ने अपनी- अपनी बात कही।

हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, रवींद्रनाथ त्यागी और मनोहरश्याम जोशी की इस पीढ़ी में केवल परसाई और जोशी ऐसे थे जो स्तंभ लेखन की अपनी-अपनी पटरियों पर समांतर चल रहे थे। मनोहरश्याम जोशी 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' के संपादक थे पर उन्होंने स्तंभ लेखन की राह नहीं पकड़ी।

श्रीलाल शुक्ल ने भ्रष्टाचार समय में नैतिकता जितना स्तंभ लेखन किया। उनकी लेखकीय प्राथमिकता उपन्यास लेखन में अधिक रही। यही नहीं वे स्तम्भ लेखन के विरोधी प्रकट होते हैं। उनका मानना था,''वे कहते हैं- साहित्य अखबारनवीसी नहीं है जब वह समसामयिकता से जुड़ता है तब भी उसकी गरिमा सर्वकालीनता से ही बनती है। आपके प्रश्न में साहित्य को ताज़ातरीन स्थितियों से जोड़ने की बात केवल एक सतही उद्देश्य का ज़िक्र करती है। आप स्वयं जानते हैं कि साहित्य का भूगोल इसके मुकाबले कहीं ज्यादा विशद, कहीं ज्यादा जटिल है। व्यंग्य का एक स्वरूप और है। संभवत: इसी की ओर आपने प्रश्न में संकेत किया है। पाँच-छह पन्ने का व्यंग्य छपता रहता है । इसका उद्देश्य मखौल, मज़ाक या कटाक्ष होता है। तो इस क्षेत्र में ढाई-तीन दर्जन नाम हैं जो बहुत छपते हैं। बहुत प्रसिद्ध हैं। अच्छा भी लिखा है, बहुत भी लिखा है । कुछ ने 20-30 पुस्तकें लिख डाली हैं। अखबारों में स्थायी रूप से व्यंग्य का स्तंभ रहता ही है। मगर मैं देखता हूँ कि लेखक का अपना रवैया क्या है। व्यंग्य तो सामाजिक आलोचना है। आप कुछ कहने से पहले अपना स्टैण्ड तो साफ करेंगे। इस दृष्टि से में बहुत उत्साहजनक स्थिति नहीं पाता। अधिकांश व्यंग्य-लेखन अच्छा है, मगर उसमें 'प्राण' प्राय: गायब है।''

परसाई और जोशी का लक्ष्य अपने समय की विसंगतियों को नियमित प्रत्यक्ष कर ,विरोध के स्वर को प्रज्वलित करना था। दोनों के लक्ष्य और बाणों की धार चाहे एक जैसी प्रहारक थी, पर व्यंग्य बाण कैसे और किसपर चलाना है-- इसकी सोच अनेक संदर्भों में भिन्न थी। स्तंभ लेखन की राह पर चलने वाले दोनों सहयात्रियों ने अपने- अपने पदचिह्न छोड़े हैं।

परसाई और जोशी की लेखकीय भिन्नता को, एक बार शरद जोशी ने ही रेखांकित किया था। एक साक्षात्कार के दौरान, यशवंत व्यास ने उनसे प्रश्न किया था,'' हरिशंकर परसाई के साथ अक्सर आपके लेखन को तौलने की कोशिशें होती हैं। एक वरिष्ठ गीतकार ने एक दफे मुझे कहा था कि परसाई जब लिखते हैं तो उन्हें पता रहता है कि डंडा किस पर चलाना है, किसके कान उमेठने से काम चल जाएगा और कौन सिर्फ चपत के लायक है, जबकि जोशी एक बार डंडा लेकर निकले, तो एक सिरे से सबको उड़ाते चले जायेंगे...''

उत्तर में शरद जोशी ने कहा था,'' मेरा विनम्र ख्याल है कि परसाई जी के लेखन या मेरे लेखन में तुलना करने का यह कोई पैमाना ही नहीं है। किसी भी लेखन का उद्देश्य डंडा चलाना, चपत लगाना, कान उमेठना या धराशायी करना नहीं होता। मेरे लिए भी रचना न तो डंडा ही है, न मैं अपने लेखन के जरिये किसी को दंडित करना चाहता हूं। मेरा इरादा तो यह है कि जिसे मैं ठीक नहीं पाता हूं, उसे अपने लेखन के जरिये शर्म के उस बिंदु तक ले जाऊं कि वह अपना गलत स्वीकार कर ले। मैं उससे नफरत नहीं करता। जिसे हम प्यार करते हैं, उसके गलत हो जाने या भटक जाने की दशा में, हम उसे प्रताड़ित करके धराशायी नहीं करेंगे, अपने से काट नहीं देंगे। हम उसे आत्मस्वीकार के उस बिंदू तक ले जाने की कोशिश करेंगे कि वह गलतियों से मुक्त होने के बाद पूरी निश्छलता में हमारे पास लौट आये। उसमें बदलाव की कामना पैदा हो जाये, यही लेखक की सफलता है।''

परसाई जी ने शरद जोशी के जाने के बाद टिप्पणी की थी,'' 'शरद का विशिष्ट व्यक्तित्व था। लिखने में वह साहसी था। खतरे उठाता था। वह स्थितियों पर तुरंत प्रतिक्रियां करता था। विडंबना को पकड़ता था। छोटे-छोटे चुटीले वाक्य, मौजू मुहावरे, तीखी भाषा उसके गद्य को शक्तिशाली बनाती थी। सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि उसने अपनी स्वीकार की। उसने विपुल संख्या में कहानियां और व्यंग्य लिखे। बहुत समर्थ लेखक था शरद।'

धर्मवीर भारती ने , शरद जोशी के जाने के बाद उनकी वैचारिकता को लेकर लिखा था,'' 'शरद जोशी की वैचारिक चेतना इतनी व्यापक है कि सर्राफे की गलियों से लेकर, दिल्ली के राजमहलो तक तमाम असंगतियों की पहचान उनके व्यंग्यकार को है, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, हर प्रकार की समस्याओं पर गहरी समझ के साथ जब वे हल्के ढंग से व्यंग्य करते तो उसकी मार बड़ी गहरी हुआ करती थी।''

हरिशंकर परसाई प्रगतिशील चेतना के नैसर्गिक रचनाकार हैं। वे भारतीय साहित्य का ऐसा ऐतिहासिक व्यक्तित्व है, जिसने मानव समाज की बेहतरी के लिए न केवल विसंगतिपूर्ण चुनौतियों का निरंतर सामना किया, बल्कि उनके विरुद्ध साहित्यिक हथियार उठाए और दिशायुक्त संघर्ष के संस्कार दिए। प्रारंभ से ही उनका लेखन प्रगतिशील सोच, चिंतन और चेतना से युक्त रहा है। किसी व्यक्ति के अनुकरण और प्रभाव में न तो वे प्रगतिशील विचारधारा से 'संपन्न' हुए और न ही उन्होंने किसी के अनुकरण और प्रभाव में 'तय' करके व्यंग्य लेखन किया। यह उनके सहज -स्वाभाविक नैसर्गिक चिंतनशील व्यक्तित्व एवं उनके

जो पानी छानकर पीते हैं, वो आदमी का खून बिना छाने पी जाते हैं..।

जीवन में घटित संघर्षशील दुर्घटनाओं का प्रतिफल है।

परसाई और शरद जोशी की वैचारिक प्रतिबद्धता को यदि सोदाहरण समझना हो तो 'आपातकाल' में उनके लेखकीय बाणों के लक्ष्य को देखकर समझा जा सकता है। भारत में इंदिरा गांधी ने आपातकाल लगाया उसकी जनमानस में तीव्र प्रतिक्रिया हुई, व्यंग्यकारों के कलम ने भी धारा प्रवाह व्यंग्य किए। हरिशंकर परसाई और शरद जोशी के अनेक व्यंग्य लेख उस समय की विसंगतियों का दस्तावेज हैं।

शरद जोशी की अधिकांश रचनाओं में सत्ता विरोध की झलक दिखाई देती है। दोनों के समय में दो ही दलों ने शासन किया-- कांग्रेस और जनता पार्टी। जब कांग्रेस का शासन था तो शरद जोशी उसका विरोध करते रहे, उसकी विसंगतियों पर प्रहार करते रहे, और जब जनता पार्टी का शासन आया तो वे उसकी विसंगतियों पर आक्रमण करने से हिचकिचाए नहीं।

सन् 1977 में सत्ता परिवर्तन के बाद शरद जोशी ने भी जैसे राहत की साँस ली। उनके व्यंग्य रचनाओं में जनता पार्टी की प्रशंसा उसके प्रति विश्वास दिखाई देता है। परन्तु यह विश्वास धीरे-धीरे टूटने लगता है और शरद जोशी जनता पार्टी के विरोध में दिखाई देते हैं। रविवार पत्रिका में 'नाविक के तीर' हों या धर्मयुग के बैठे ठाले वाले व्यंग्य, उनमें जनता सरकार की विसंगतियों पर तीखे व्यंग्य हैं। ग्यारह मार्च के धर्मयुग में शरद जोशी की एक व्यंग्य-रचना है, ''राष्ट्रीय स्तर पर एक कार-साक्षात्कार'' इस व्यंग्य के माध्यम से शरद जोशी ने जहां एक ओर विभिन्न घटकों पर व्यंग्य किया है, वही सरकार की नीतियों पर भी व्यंग्य कि ये है। जनता सरकार में पांच विभिन्न घटक है और इन पांचों के द्वारा शासन की मुख्य नीतियां संचालित की जाती हैं। इनके माध्यम से शासन की नीतियां सामने आती हैं। परन्तु यह घटक सत्ता मोह में एक दूसरे से अलग है, जड़ें काट रहे हैं। जनता सरकार की एकमात्र चिंता अपने-अपने घटकों का आधिपत्य लगती है। कोई एक दूसरे से सहमत नहीं। चंद्रशेखर के माध्यम से शरद जोशी यह चिंता व्यक्त करते हैं, ''जिससे सारे घटक सहमत हों ऐसा माहौल तो हम जनता पार्टी का नहीं बना पा रहे हैं .....'' जब तक घटकों की यह व्यक्तिगत चिंता बनी हुई है तब तक जनता की समस्याओं के बारे में कैसे सोचा जा सकता है? जनसंघ घटक की चिंता है''... बेहतर हो आप प्रधानमन्त्री जी से पूछ लें। यदि वे कार की चाभी हमें सौंप देने को तैयार हों, तो जनसंघ घटक पूरी तरह सहयोग करेगा।'' भारतीय विदेश नीति को रूप देते हुए वाजपेयी कहते हैं, ''हमें ऐसी कार का निर्माण करना है, जिसमें संसार के सभी देशों की अच्छी कारों की विशेषताएं आ जाए।'' इसी प्रकार शरद जोशी, चरणसिंह और जगजीवनराम के माध्यम से घटकों की व्यक्तिगत स्वार्थ पर न और शासन की नीतियों पर व्यंग्य करते हैं। यह व्यंग्य स्पष्ट करता है कि प्रत्येक घटक को अपने राजनीतिक वर्तमान और भविष्य की चिंता है, सत्ता हथियाने की चिंता है, जनता की समस्याओं की ओर किसी का ध्यान नहीं है।

शरद जोशी का दृष्टिकोण सदैव सत्ता विरोध का रहा है। वे सत्ता की विसंगतियों को पकड़ते हैं ,रचना में उन्हें उजागर करते हैं और उन पर व्यंग्यात्मक प्रहार करते हैं। वे शासक के प्रशंसक नहीं है। वे स्पष्ट कहते हैं, ''प्रशंसा करने के अतिरिक्त, मैं जनता पार्टी के लिए सारे कष्ट उठाने को तैयार हूं।'' सत्ता विरोधी इस दृष्टि का क्या यह अभिप्राय लिया जाए कि शरद जोशी मात्र विद्रोही हैं और वे विचारधारा के अभाव में विद्रोह की राजनीति अपना रहे हैं। क्या जो भी सरकार उनके सामने आएगी उसका वे विरोध ही करेंगे? क्या वे व्यंग्य को मात्र सत्ता विरोध का पर्याय मानते हैं ? इन सब प्रश्नों का उत्तर नकार है। शरद जोशी की राजनीतिक विचारधारा है जो यह मानती है कि वर्तमान प्रजातंत्र में यदि शासक सुधर जाए तो व्यवस्था सही हो सकती है। शरद जोशी का एक व्यंग्य है, ब्राह्मण और शेर की पंचतंत्र की कथा पर आधारित है। इस कथा में एक बार ब्राह्मण शेर को पिंजरे के बाहर कर देता है और जब शेर ब्राह्मण को खाने लगता है तो ब्राह्मण गीदड़ की सहायता से शेर को पुन: पिंजरे में कैद कर देता है। इस कहानी के माध्यम से शरद जोशी यही कहना चाहते थे कि शेर यदि सुधर जाए और ब्राह्मण (जनता) को न खाए तो समस्या सुलझ सकती है। परन्तु जंगल में ब्राह्मण तो अभिजात वर्ग का प्रतीक ही माना जाएगा जो अगर सत्ता से मिला, या सत्ता का संरक्षण उसे मिला तो उसने जनता (खरगोश जैसे जीवों) का भरपूर शोषण किया। मेरे विचार से शेर को सुधारने की सुधारवादी यह दृष्टि उचित नहीं है। शेर चाहे कितना सुधर जाए वह घास नहीं खाएगा। शरद जोशी ने 'कीरी कुन्जर दोय' पर अपनी व्यंग्यात्मक प्रहारात्मकता का प्रयोग किया है। साहित्य, शिक्षा, पुलिस,

"शरद जोशी परसाई से सात वर्ष छोटे थे, पर परसाई से पहले चले गए थे। परसाई ने जितनी मात्रा में लिखा उससे अधिक मात्रा में उनपर लिखा गया। हिंदी व्यंग्य के वे अकेले ऐसे व्यंग्यकार हैं जिनपर लिखने वालों की एक फौज है। दूसरी ओर शरद जोशी हैं जिनके लिखे पर, तीन-चार आलोचनात्मक किताबें ही मिल सकती हैं। परसाई के मूल्यांकन की कोई सीमा नहीं, शरद जोशी का मूल्यांकन रेत में फंसी नाव जैसा है। दोनों के बहाने से लेकर व्यंग्य साहित्य पर बात की जा सकती है। दोनों के व्यंग्य बाणों के लक्ष्य, विधा और हास्य व्यंग्य को लेकर उनकी मान्यताएं, व्यक्तिगत जीवन के संघर्ष, आजीविका के लिए लेखन का ही सहारा आदि बहुत कुछ है जो छूट गया है। परसाई का लेखन काल बहुत पहले आंरभ हो गया था। दोनों के लेखकीय शैशवकाल के आंरभ, वैचारिक आधार और व्यंग्य के ट्रीटमेंट में अंतर है। यही कारण है कि परसाई, परसाई हैं और शरद जोशी, शरद जोशी।"

अंधभक्त होने के लिए प्रचंड मूर्ख होना अनिवार्य शर्त है!

सिनेमा, भीड़, राजनीति, जैसे अनेक विषय उनके व्यंग्यात्मक प्रहार का शिकार बने हैं। इनको व्यक्त करने वाली मुख्य रचनाएं हैं – 'अमूर्त कला और सुस्वागतम्' 'पुराने पेड़ की बातें' 'मेघदूत की पुस्तक समीक्षा' 'बैठे से रिसर्च भली' 'एक फिल्म जो उसने देखी थी' 'कस्बे का मैनेजर' 'चुनाव: एक मुर्गानीति'। इन रचनाओं में विषय की विविधता और शरद जोशी की प्रहारात्मकता दोनों लक्षित होती हैं।

शरद जोशी ही शरद जोशी हो सकते हैं क्योंकि उनकी रचनाओं में अनेक ऐसे रचना-तत्व हैं जो उनको उनके समकालीन रचनाकारों से अलग कर एक अलग पहचान देते हैं। कोई रचनाकार शरद जोशी की कार्बन कॉपी तो हो सकता है पर शरद जोशी नहीं। शरद जोशी के हाथ में अपने पात्रों की डोर अवश्य है, पर वे उन्हें अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता के आतंक से आतंकित कर कठपुतली-सा नहीं नचाते हैं। वे अपने पात्रों को स्वाभाविक रूप में अपनी नैसर्गिक भूमिका निभाने का स्वतंत्र स्पेस देते हैं। उनकी रचनाओं का कथ्य अपनी नैसर्गिक गति से गतिमान होता है। उनकी रचनाओं में हास्य और व्यंग्य का एक संतुलन है और यही कारण है कि विसंगतियों पर व्यंग्यात्मक आक्रमण से आरंभ हुई उनकी अनेक रचनाएं अपनी निश्छल चाल से गतिमान विसंगतियों को अनायास ही हास्य आधार बना देती हैं। यह अतिक्रमण नहीं है अपितु एक सहज स्वाभाविक परकाया प्रवेश है। ऐसी रचनाओं का हास्य सौहार्दपूर्ण एवं गरिमापूर्ण रूप में अपनी विशाल उपस्थिति का अनुभव कराता हुआ शरदजोशीय स्टाईल में आपको हंसने को विवश कर देता है।

वैसे तो शरद जोशी होने के अनेक अर्थ हैं पर सबसे महत्वपूर्ण अर्थ यह है कि वे जीवन भर अनर्थ के विरुद्ध लड़ते रहे । गलत के विरुद्ध लड़ने के लिए उनके हथियार अपने थे और इन हथियारों के प्रयोग के लिए उन्हें किसी से अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं थी और न ही इस बात की चिंता थी कि उनका आका इस बात पर उनकी पीठ थपथपाएगा कि नहीं क्योंकि उनका कोई आका ही नहीं था । और यदि कोई आका था भी तो वो उनका पाठक वर्ग था, जिसने उनकी सदा ही पीठ थपथपाई। यही कारण है कि शरद जोशी ने अपने समय के यथार्थ का यथार्थ के धरातल पर ही निरीक्षण परीक्षण किया है । शरद जोशी की यह चिंता ना तो पूंजीपतीय है, न ही मार्क्सवादी है, उनकी चिंता तो सहज रूप से मानवीय है । वे बिल्लियों के अर्थशास्त्र को समझते हैं और जानते हैं कि ये शातिर बिल्लियाँ आम आदमी की दूध – मलाई को स्वयं हड़प कर जायेंगी और उसे छाछ भी रुला- रुलाकर देंगी । शरद जोशी सामाजिक विकास के छद्म को भी समझते थे । वे जानते हैं कि विकास के नामपर जो भी हो रहा है, वह किसके लिए हो रहा है ।

आपातकाल में परसाई की लेखकीय भूमिका को सब जानते है। एक बातचीत में मैंने, आपातकाल में उनकी भूमिका को लेकर उनसे डरते-डरते प्रश्न किया था। यह परसाई की महानता है कि अपने खिलाफ जाने वाले प्रश्न से न तो वे विचलित हुए और न ही उन्होंने मुझ नौसिखिए युवा व्यंग्यकार को डांटकर चुप किया। जितनी आजादी परसाई अपने लिए चाहते थे उतनी ही वे दूसरे को देते थे। आपातकाल पर पूछे प्रश्न को वे चुप्पी से टाल भी सकते थे। मेरी क्या औकत कि उनकी चुप्पी पर सवाल उठाता। पर वे परसाई थे। मैंने डरते-डरते घुमा फिराकर प्रश्न पूछा- परसाई जी, क्या आप मानते हैं कि परिस्थितियां व्यंग्य को रोक देती हैं --विशेषकर राजनीतिक व्यंग्य को। हरिशंकर परसाई ने बेबाकी से कहा-- आप सीधे-सीधे आज की बात कीजिए। वर्तमान परिस्थिति का मैं व्यक्तिगत रूप से समर्थन करता हूं। कुछ बन्दिशें हैं परन्तु व्यापक रूप से सोचिए तो साफ लगेगा कि एक व्यक्ति के पीछे साठ करोड़ जनता का जीवन कैसे बरबाद किया जा सकता था । इसलिए मैं वैलकम करता हूं। राजनैतिक-लेखन मैं अब भी करता हूं लेकिन इस संदर्भ में एक प्रश्न करता हूं कि हम जब थे आजाद तब इन लोगों ने कौन-सा शेर मार लिया। मैं तो शिकायत नहीं करता।''

परसाई ने देश और व्यंग्य के प्रहरी के रूप में, 'प्रहरी' पत्रिका के माध्यम से प्रहार आंरभ किया था। इस समय परसाई हर विसंगत के विरुद्ध हैं। अपनी आर्थिक विवशताओं के कारण परसाई ने स्तम्भ लेखन की राह पकड़ी और इससे शुरु हुआ हिंदी व्यंग्य पत्रकारिकता का एक और दौर। धीरे-धीरे व्यंग्य संपन्न व्यंग्य स्तम्भ पत्र- पत्रिकाओं की आवश्यकता बन गए । अपने समय की विसंगतियों को समझने का इससे बढिया कोई माध्यम नहीं था । इस कार्य को गति दी शरद जोशी नें। स्तंभ लेखन की यह परम्परा आज इतनी 'गतिवान' हो गयी है कि इसे थामने की आवश्यकता महसूस की जा रही है । हरिशंकर परसाई तथा शरद जोशी ने अपने व्यंग्य स्तम्भों के माध्यम से व्यंग्य को एक लोकप्रिय विधा बना दिया । आज व्यंग्य लगभग सभी अखबारों की दैनिक मांग बन गया है । व्यंग्य की बढती लोकप्रियता ने इसे बहुत हानि पहुंचाई, विशेषकर अखबारों में प्रकाशित होने वाले स्तम्भों नें नई पीढी को बहुत दिगभ्रमित किया है। आज सात आठ सौ शब्दों की सीमा में लिखी जानी वाली अखबारी टिप्पणियों को ही व्यंग्य रचना मानने का आग्रह किया जाता है ।

स्तंभ लेखन की दुनिया में तब एक बड़ी हलचल मची जब 'नवभारत टाईम्स ' के तत्कालीन संपादक ने शरद जोशी को प्रतिदिन व्यंग्य लिखने की चुनौती दी जिसे शरद जोशी ने न केवल सहर्ष स्वीकार किया अपितु उसे एक ऐसी चुनौती बना दिया जिससे बड़ी रेखा आज तक कोई नहीं खींच सका है। शरद जोशी के स्तंभ ने अपने पाठकों को ऐसे नशे से आकंठ भर दिया कि उसके बिना सब सून लगने लगा और लोग हिंदी के अखबार को उर्दू की तरह आखिरी पृष्ठ पर प्रकाशित 'प्रतिदिन' से

सरकार कहती है कि हमने चूहे पकड़ने के लिये चूहेदानियां रखी हैं। एकाध चूहेदानी की हमने भी जांच की। उसमें घुसने के छेद से बडा छेद पीछे से निकलने के लिये है। चूहा इधर फंसता है और उधर से निकल जाता है।

आंरभ करने लगे। शरद जोशी की यह ऊंचाई उनका कोई समकालीन छू भी नहीं सका।

अवधेश व्यास के एक जिज्ञासा के उत्तर में कि आप 'प्रतिदिन' कैसे लिख लेते हैं, शरद जोशी ने कहा था– 'इन्हीं हाथों से! यही दो हाथ हैं और वही चौबीस घंटे का समय है मेरे पास, जो सबके पास है। मुझे तो नहीं लगता कि 'प्रतिदिन' जैसा स्तंभ लिखना कोई बड़ी बात है। वास्तव में यह बड़ी बात इसलिए लगता है, क्योंकि हमारे यहां यही चलन है कि हमारे यहां एक कहानीकार, एक कहानी लिख कर कई दिनों के लिए लंबी तान लेता है। वह समझ लेता है कि एक बड़ा काम पूरा हो गया। फिर कई दिन तक वह आराम करता है। इसलिए 'प्रतिदिन' बड़ी बात लगती है। मेरे लिए यह बड़ी बात इसलिए नहीं है, क्योंकि मैं 'नवभारत टाइम्स' का, दिन का पहला लेखक होता हूं। अखबार के दफ्तर में जिस वक्त पहला सब-एडीटर या प्रूफ रीडर आता है, तब तक मैं अपने घर पर, अपना काम पूरा कर लेता हूं। रोज लिखने से मुझे यह लाभ हुआ कि अब मैं प्रयोग कर सकता हूं। मैं प्रयोग करता हूं क्योंकि पाठक के साथ अपनी समझ का रिश्ता बन गया है। अगर मैंने किसी दिन अच्छा न लिखा, तो पाठक उसका बुरा नहीं मानता। वह जानता है कि कल अच्छा आएगा। वह जानता है कि मैं 'प्रतिदिन' लिखता हूं। कभी मैं यात्रा पर जा सकता हूं, कभी कहीं व्यस्त हो सकता हूं, कुछ भी हो सकता है। यह पाठक जानता है, समझता है। (धर्मयुग' 1 मार्च, 1991)

व्यंग्य और पत्रकारिता के इसी आपसी संबंध ने व्यंग्य के शाश्वत होने का प्रश्न खड़ा किया। अखबारों या पत्रिकाओं के माध्यम से विभिन्न स्तंभों के रूप में प्रकाशित व्यंग्य तात्कालिक रूप में तो अपना प्रभाव छोड़ जाते हैं, परंतु कुछ समय पश्चात् वह निस्तेज हो जाते हैं। क्या इन्हें व्यंग्य रचना कहा जाए अथवा व्यंग्यात्मक टिप्पणियां ?

यह अजब विसंगति है कि हमारे दो वरिष्ठ व्यंग्यकार, स्तंभ लेखन के कारण उपजी व्यंग्य की क्षणभंगुरता के प्रति चिंतित भी थे, सजग भी थे,परंतु उसका विचित्र साहस के साथ सृजन भी कर रहे थे। मेरे विचार से इसका कारण उनके अंदर बैठा एक सजग पत्रकार था जो सामयिक विसंगतियों पर व्यंग्यात्मक कमेंट्स करने को विवश था। व्यंग्यकार ही नहीं व्यंग्य का पाठक भी अपनी आसपास की जिंदगी और दिनोंदिन बढ़ती विसंगतियों के विरुद्ध इतना जागरूक है कि ऐसे लेखन को पढ़े उसे चैन नहीं है। जब लेखक और पाठक को चैन नहीं तो संपादक को कैसे हो।

हमारे यहां वाचिक परंपरा बहुत पुरानी है। मंच पर श्रोताओं के समक्ष काव्य पाठ की परंपरा तो बहुत ही पुरानी है और इसमें गुणवत्ता की दृष्टि से उतार चढ़ाव भी आते रहे है। मंच पर गद्य व्यंग्य पाठ के महत्व को स्थापित करने में शरद जोशी का महत्वपूर्ण योगदान है। मंच पर गद्य व्यंग्य पाठ के जो मानदण्ड शरद जोशी ने स्थापित किए वो आज एक चुनौती के रूप में हमारे समक्ष विद्यमान हैं और इस चुनौती को सही उत्तर अभी तक नहीं मिला है। मंच पर जिस गरिमा और संप्रेषणीयता के साथ शरद जोशी अपनी रचना का पाठ करते थे वह एक आदर्श है। उनके समय के अन्य श्रेष्ठ रचनाकार जहां इस प्रयोग में असफल रहे वहीं शरद जोशी निरंतर सफलता की सीढ़ियां चढ़ते गए। चुटकले रहित व्यंग्य रचना को मंच पर सफलतापूर्वक पढ़कर शरद जोशी ने सार्थक एवं गंभीर व्यंग्य के पाठकों को रचनात्मक सकून दिया। व्यंग्य को सार्थक लोकप्रियता प्रदान करने में शरद जी जैसा योगदान और किसी व्यंग्यकार का नही है।

हरिशंकर परसाई के लेखन में व्यंग्य ऋणात्मक नहीं है। अपने समय की राजनीतिक, शैक्षिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सामाजिक विसंगतियों पर परसाई नें जो व्यंग्य किए हैं उनमें एक ईमानदार व्यक्ति द्वारा बिना किसी लाग लपेट के ऐसी विसंगतियों पर प्रहार है, जो मानव विरोधी हैं। एक झोंक में हर किसी पर आक्रमण करते चले जाना परसाई की प्रवृत्ति नहीं है। उनके लेखन में एक गहरी करुणा छिपी है जो पाठक को सही चिंतन की ओर मोड़ती है।

कभी गालिब ने इश्क के बारे में कहा था कि इक आग का दरिया है और डूब के जाना है, परसाई के व्यंग्य का इश्क भी ऐसे ही आग का दरिया है। यह भी कहते हैं कि व्यंग्य एक टेढी खीर है जिसे समझने के लिए मस्तिष्क को भी थोड़ा बहुत टेढा करना पड़ता है।

शरद जोशी परसाई से सात वर्ष छोटे थे, पर परसाई से पहले चले गए थे। परसाई ने जितनी मात्रा में लिखा उससे अधिक मात्रा में उनपर लिखा गया। हिंदी व्यंग्य के वे अकेले ऐसे व्यंग्यकार हैं जिनपर लिखने वालों की एक फौज है। दूसरी ओर शरद जोशी हैं जिनके लिखे पर, तीन-चार आलोचनात्मक किताबें ही मिल सकती हैं। परसाई के मूल्यांकन की कोई सीमा नहीं, शरद जोशी का मूल्यांकन रेत में फंसी नाव जैसा है। दोनों के बहाने से लेकर व्यंग्य साहित्य पर बात की जा सकती है। दोनों के व्यंग्य बाणों के लक्ष्य, विधा और हास्य व्यंग्य को लेकर उनकी मान्यताएं, व्यक्तिगत जीवन के संघर्ष, आजीविका के लिए लेखन का ही सहारा आदि बहुत कुछ है जो छूट गया है। परसाई का लेखन काल बहुत पहले आंरभ हो गया था। दोनों के लेखकीय शैशवकाल के आंरभ, वैचारिक आधार और व्यंग्य के ट्रीटमेंट में अंतर है। यही कारण है कि परसाई, परसाई हैं और शरद जोशी, शरद जोशी।

लेखक : वरिष्ठ व्यंग्य साहित्यकार हैं।
संपर्क : 73 साक्षर अपार्टमेंट्स ए- 3 पश्चिम विहार
नई दिल्ली - 110063
मोबा. 9811154440

■

नाक की हिफ़ाज़त सबसे ज़्यादा इसी देश में होती है...।

व्यंग्य आलेख

विदेश में परसाई से दो टूक

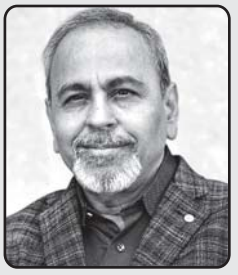

धर्मपाल महेंद्र जैन

दरवाजे की घंटी बजी तो मैं काँप गया। बाहर भारी बर्फबारी हो रही थी, माइनस चालीस डिग्री तापमान था। कौन पागल है जो देह काटती ठंड में दस्तक दे रहा है। अनमने दरवाजा खोला तो देखा परसाईजी खड़े थे, वही हरिशंकर परसाई जबलपुर वाले, जिनकी हम चुपचाप जन्म शताब्दी मना रहे थे। उन्हें अंदर लिया, दरवाजा बंद किया और जांच आयोग की तरह मैं उनसे सवाल करने लगा।

– इतनी भीषण ठंड में यह अद्दा टाइप सफेद कुर्ता और पायजामा पहन कर आप टोरंटो आ गए। आश्चर्य है आपकी कुल्फी नहीं जमी। माना कि आप दुस्साहसी हैं, पर मुझे संदेश भेज देते तो मैं आपको लेने आ जाता।

– नहीं रे, बता कर जाने में बड़ा संकट है। बता कर जाता हूँ तो मेजबान गायब हो जाते हैं या अकाट्य बहाने बना देते हैं। इसलिए मैंने सोचा अतिथि की तरह जाऊँ। मेजबान को मौका ही न दूँ कि वह कहीं इधर-उधर हो सके। 'भोलाराम का जीव' रच सकता हूँ तो खुद भी 'परसाई का जीव' बन कर अवतरित हो सकता हूँ।

– वो तो ठीक है, मुझे 'वर्क फ्रॉम होम' की अनुमति है, इसलिए मैं घर पर मिल गया। मैं घर नहीं होता और आप इधर-उधर ताकझाँक कर होते तो यहाँ कि पुलिस आपको संदिग्ध समझ कर उठा ले जाती। आप गाँठ बांध लीजिए, यहाँ कोई अतिथि बिना फ़ोन किये नहीं आता। आप.फोन करके आते तो ठीक रहता, ढंग से स्वागत-सत्कार करता। अब बताइए क्या लेंगे, चाय-कॉफी, जूस।

– क्यों तुम्हारे यहाँ मिलेट्री कैंटीन की रम नहीं मिलती। हमारे जबलपुर में तो हर टुच्चे लेखक के बड़े घर में हमेशा भरी रहती है। ऐसी बर्फ़बारी में कौन भारतवंशी चाय-कॉफी के बारे में पूछता है रे। कुछ तो विदेशी संस्कृति का आदर किया होता! तुम लोग खुद तो इतना टुन्न रहते हो, भारत में जहाँ जाते हो टुन्न करके आते हो। आज मैं तुम्हारे दरवाजे आया तो क्या, मुझे भिक्षाम् देहि करके चाय-पानी में निबटा दोगे?

– नाराज न होइए, बताइए कहाँ ठहरे हैं आप। वहीं कुछ व्यवस्था जमाते हैं। दो-चार रसिकों को भी बुलाना पड़ेगा।

– अपन तो साधु हैं, जहाँ पहुँच गए वहीं ठिकाना। व्यंग्यकार के लिए क्या ठंड, क्या गर्मी! अब तुम्हारा घर ही हमारा अपना घर है तो कहीं क्यों जाऊँ, यहीं जमना है, यहीं बुला लो कुछ पठ्ठों को।

– ठीक है। आपका सामान कहाँ हैं? कहीं लगेज फ्लाइट में गुम तो नहीं हो गया या कस्टम वालों ने जब्त कर लिया!

– इस बिना कमंडल वाले साधु का न कोई मण्डल है और न कोई माल-असबाब। ऐसा तो नहीं कि मैं बिना उपहार लिए तुम्हारे द्वार खाली हाथ आ गया तो बुरा लग रहा हो!

– उपहार ना, ना। मैं तो आपके पासपोर्ट, वीजा, बटुआ आदि की बात कर रहा था! मैंने आश्चर्यचकित होकर कहा।

– मैं देहहीन हूँ, केवल आत्मा हूँ, यमलोक से सीधा रहा हूँ। तुम आस्थावान लोग परसाई की आत्मा को भी शरीरी समझ लेते हो तो मैं क्या करूँ!

– मुझे लगा सौ साल का परसाई अब केवल कागज जैसा रह गया होगा। भारत भवन की रबड़ी की दुकानों पर अब परसाई को छाछ भी

रेखाचित्र: अवधेश बाजपेयी

मयस्सर नहीं होगी, इसलिए आपके शरीर-सौष्ठव के बारे में नहीं पूछा। पर आपने तो कभी आत्मा-परमात्मा, यमलोक आदि में विश्वास नहीं किया, धर्म को उड़ाते रहे। अब आत्मा बन कर कैसा लग रहा है?

– तुम गलत बोलते हो। आजकल परसाई के नाम पर झूठ ही झूठ परोसा जा रहा है। जो मैंने कभी कहा नहीं, मेरे नाम से शाया हो रहा है। परसाई ये, परसाई वो। सच बात तो यह है कि मैंने धर्म के नाम पर हो रहे पाखंड को उड़ाया, छद्म संस्कृति को उड़ाया। दोमुखी लोगों और नफ़रत उगाने वालों को उड़ाया। यमलोक से आ रहा हूँ तो समझ लो अब यम का दूत बनकर आया हूँ।

यमदूत का नाम सुनते ही मेरे पसीने छूट गए। मैंने सोचा, परसाई

जब तान छिड़ी, मैं बोल उठा जब थाप पड़ी, पग डोल उठा औरों के स्वर में स्वर भर कर अब तक गाया तो क्या गाया?

मुझे लेने आए हैं। इनका चेला-चपाटी बनने के चक्कर में मुझे देह छोड़ कर आत्मा बनना पड़ा तो बहुत नुकसान हो जाएगा। आठ-दस बड़े पुरस्कारों के लिए जो सेटिंग जमा कर रखी है, सब बर्बाद हो जाएगी और इस बार फिर नालायक लोग पुरस्कार हथिया लेंगे। हिंदी के जिस भविष्य को चरम पर पहुँचाने का मैंने ठेका लिया है, वह मरणोन्मुख हो जाएगा। अभी मेरे देह त्याग कर आत्मा बनने का समय नहीं आया है और ये परसाई यमदूत बन कर मेरे घर में घुस आए हैं। अपना अंतिम समय जान कर मैं अनुनय-विनय और दान-दक्षिणा के धार्मिक संस्कारोंसे भर गया। सोचा अपना आदमी है, सरकार को गाली देना शुरू करूँगा तो शायद छोड़ देगा या कुछ मोहलत दे देगा। कुछ मोहलत मिलेगी तो हिंदी की सरकारी संस्थाओं की लूटपट्टी पर लिखा आलेख तत्काल 'रिलीज' कर दूँगा। कुछ ज्यादा समय मिला तो महान संपादकों के 'साहित्यिक रोमांस की अमर कथाएँ' फेसबुक पर डाल दूँगा। अब महान बनना हो तो दूसरो की टोपी उछालना जरूरी है।

यमदूत सामने खड़ा हो तो ज्ञानवान हिटलर भी आज्ञाकारी और विनम्र बन कर मक्खन पोतने लग जाते हैं। सो मैंने यही किया और कहा- आप यम के आत्मीय दूत लगते हैं, आपने वहाँ भी खरी-खरी सुना कर सबको बजारखा होगा। यम के सारे भ्रष्ट अधिकारी, सरकारी सोमरस लिए आपके हुक्म में रहते होंगे और कहते होंगे, बाबा मैं नहीं माखन खायो। अब इस लोककी कच्ची-पक्की दारु जो यहाँ के छुटभइये राजनेताओं को भी असर नहीं करती, तो आप जैसे महारथी को क्या लगेगी! फिर भी, बताएँ क्या यथायोग्य इंतजाम करूँ। ये आपके समय की दुनिया नहीं है जो आँख की शर्म रखती थी और आँख का इशारा समझती थी, अब तो आँखें नोच लेने वाली दुनिया है। अब लोग परसाई को व्यंग्यकार कम शराबी ज्यादा मानते हैं, इसलिए जो कहना है आप साफ-साफ कहो।

– क्या कहूँ, एक जमाने मेंआलोचक मेरा नाम लेते नहीं थकते थे। परसाई ये, परसाई वो। एक टाँग पर खड़ा परसाई, एक जुबान का परसाई, एक कुर्ते और एक पजामे का परसाई। अब हालत यह है कि जो लोग मुझसे मिले तक नहीं, उन्होंने मुझे सैकड़ों बार भुना लिया और अकादमियों से मानदेय के चेक नकद करा लिए। वे मुझे उलटते-पलटते भून कर गरमा-गर्म परोसते रहे। जिन्होंने मुझे ठीक से पढ़ा नहीं, उन्होंने मेरी खाल के भीतर की खाल तक जाकर विमर्श कर लिया। मुझे खुद ही याद में नहीं आता कि मैंने जो कहा, कब कहा जो मेरे नाम पर चस्पा हो रहा है।

– अच्छा है आप आत्मा बन कर आए,और विदेशी धरती पर आए। भारत पहुँचे होते तो, अब तक आपकी आत्मा के रेशे-रेशे पर विमर्शहो जाता और गंगा किनारे की रेत में आपको भी गाड़ दिया जाता। यदि आप सशरीर भारत पहुँचे होते तो या तो आपको संस्कृति रक्षकों की भीड़ जिंदा जला देती या राष्ट्रवादी पुलिस घुसपैठिया समझ कर इन्काउंटर कर देती।

– इसलिए तो मेरी ड्यूटी भारतीय उपमहाद्वीप में नहीं लगी, प्रवासी भारतीयों को निपटाने में लगा दी। इधर देखता हूँ तो भारत के बाहर भी परसाई पर अंधाधुंधी चल रही है। जिन्होंने मुझे पढ़ा है उन्हें मुझ पर लिखने-बोलने और विमर्श का हक है। पर लोग मुझे पढ़े-समझे बिना ही कैसे बोल जाते हैं?

– आप भी क्या मजाक करते हैं। यह कृत्रिम मेधा का युग है, अब लिखने-पढ़ने और समझने की जरूरत कहाँ है! मशीन-लर्निंग का जमाना है। मशीनें सीखती हैं और विमर्शकार विद्वान के नाम से आलेख तैयार कर देती हैं। आज जो बिना लिखे-पढ़े विमर्श करे, उसी को प्रतिभाशाली कहते हैं। मौलिकविमर्श यही है। अब आप बीसवीं सदी की सोच वाले परसाई बाइसवीं सदी का हिंदी साहित्य क्या जानें।

– अरे फिर तो मुझे भी खुशी हुई, हिंदी साहित्य में ऐसे प्रतिभावान लोग हैं जो बिना लिखे-पढ़े ही ऐसा विद्वत्तापूर्ण लिख-बोल सकते हैं, परसाई बोले।

– हिंदी साहित्य और विशेषकर व्यंग्य में जितनी शोध आप पर हुई है, उतनी किसी पर नहीं हुई और न होगी। आपके नाम पर परसाई युग चलता रहा। अब दो-तीन लोग जुगत भिड़ा रहे हैं कि हिंदी व्यंग्य का नया युग उनके नाम से उनके जीते जी शुरू हो जाए। अच्छा है आप भारत नहीं गए, अन्यथा आप जिसके पल्ले पड़ते वह आपको बंधुआ अध्यक्ष बनाकर प्रतिदिन के हिसाब से नीलाम करता और खुदको आपके बाद स्थापित कराने का जतन करता।

– चलो छोड़ो मियाँ,मैं यहाँ इसलिए भी आया हूँ कि तुम लिखने-पढ़ने वाले स्थानीय प्रवासियों को बुला करके मेरा कोई कार्यक्रम विदेश में करा सको। 'हिंदी साहित्य की दशा-दिशा और दुर्दशा पर विमर्श' हो जाए और संगोष्ठी में मेरा सम्मान भी करा दो तो यमराज को लगे कि परसाई आज भी प्रासंगिक है।

– इसमें क्या बड़ी बात है। हम गधों का सम्मान करवा देते हैं, फिर आप तो साक्षात् परसाई हैं। पुष्पहार, माल्यार्पण, नाश्ता-पानी, लंच, पुरस्कार, वक्ता को मानदेय आदि सबका इंतज़ाम हो जाएगा। आपकी प्रशस्ति छपवा कर, और फ्रेम करवाकर आपको समर्पित करवा दूँगा। पर बदले में ऐसा भव्य सम्मान आप मेरे लिए इस धरती पर कहाँ और कब करा पाएँगे! बताएँ।

– मुझे माफ करना, मैं यह सब नहीं करवा पाऊँगा, मेरी अपनी कोई संस्था नहीं है, न धरती पर न यमलोक में। रुआंसे हो परसाई ने कहा।

– खुद की संस्था नहीं है तो तू हिंदी का प्रसिद्ध लेखक कैसे है बे? बिना संस्था वाले लेखक अब हिंदी साहित्य पर कलंक हैं। दो कौड़ी के हिंदी लेखक चल भाग यहाँ से, पलट कर खाली-पीली अपना मुँह न दिखाना।

संपर्क : लेखक वरिष्ठ व्यंग्य साहित्यकार हैं।
dharmtoronto@gmail.com
22 Farrell Avenue, Toronto, M21C8, CANADA

■

सब लुटा विश्व को रंक हुआ रीता तब मेरा अंक हुआ दाता से फिर याचक बनकर कण-कण पाया तो क्या पाया?

व्यंग्य आलेख

हरिशंकर परसाई की सामाजिक चेतना

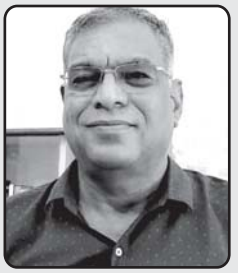

कुमार सुरेश

परसाई जी के बारे में जब भी चर्चा होती है तब उनके व्यंग्य की चर्चा होती है उनकी व्यंग्य चेतना की चर्चा होती है और उनकी व्यंग्य भाषा एवं शिल्प की चर्चा होती है। हरीशंकर परसाई जैसी विभूति के प्रति यह रवैया हमारा निकट दृष्टिदोष कहलाना चाहिये। कोई भी बड़ा व्यंग्यकार तब तक कालजयी व्यंग्य नहीं लिख सकता जब तक उसका अध्ययन बहुआयामी न हो और उसकी दृष्टि विहंग दृष्टि न हो। जब तक लेखक को अपने इतिहास और वर्तमान की पूरी समझ न हो तब तक वह लेखक अपने साहित्य को कालजयी, समयातीत प्रासंगिक नहीं बना सकता और खुद को इतिहास में शामिल नहीं कर सकता। परसाई जी का लेखन बहुत विस्तृत था तो इसलिए था कि उन्होंने बहुत विस्तृत अध्ययन और अवलोकन किया था।

आजकल व्यंग्यकारों के बीच यह कहने का फैशन चला हुआ है कि उनके लिये व्यंग्य लिखने का अर्थ मात्र प्रतिरोध का लेखन है और व्यंग्य केवल सत्ता का विरोध होता है। अनजाने में लेखक इस सत्ता विरोध का सीमित अर्थ उस राजनीतिक सत्ता मात्र का विरोध मान लेता है जिसे वह नापसंद करता है। वह यह भूल जाता है कि राजनीति में जो भी दल होते हैं वो सभी सत्ता पक्ष ही होते हैं। इन दलों की मानसिक बुनावट में अनिवार्य में रूप से सत्ता के तत्व मौजूद रहते ही हैं। व्यंग्य सत्ता के विरोध में तो होता है लेकिन सत्ता का अर्थ सीमित अर्थों में एक राजनीतिक सत्ता नहीं होती बल्कि प्रत्येक प्रकार की सत्ता होती है। एक सक्षम व्यंग्यकार को सत्ता पर चोट इसलिये करना चाहिये क्योंकि सता की प्रवृत्ति मति भ्रष्ट करने वाली होती है।

इतिहास में मैकियावली की शास्त्रीय युक्ति बार-बार सिद्ध होती रही है कि किसी भी सत्ताधारी पर निष्कलक विश्वास नहीं किया जा सकता क्योकि सत्ता की प्रवृत्ति मति को भ्रष्ट करने की होती है। सबसे बड़ी सब इच्छाएँ, महान सामाजिक आदर्श और क्रांतिकारी उत्साह सब मिलकर भी सत्ता की भष्ट करने की शक्ति को खत्म नहीं कर सकते । क्रांतिकारी भी मनुष्य होते हैं, महान नेता भी इसलिए यह सब मानवोचित कमजोरी के अधीन होते हैं। रुसी उपन्यासकार दास्तोवस्की ने यह लिखा है कि जिसने भी सत्ता का अनुभव किया है उस सत्ता का जो दूसरे मनुष्यों को प्रताड़ित और अपमानित करने सबसे से घोर अपमान करने की क्षमता रहती है वह चाहे अनचाहे अपनी ही संवेदना के ऊपर से अधिकार खो बैठता है।

परसाई जी इन सब बातों को बहुत अच्छी तरह से समझते थे इसलिए उनका व्यंग्य लेखन किसी एक राजनीतिक दल के विरुद्ध एकांगी नहीं था। उनके व्यंग्य की चोट सत्ता के उन सभी केंद्रों पर होती थी जिनके पास दूसरे मनुष्यों को प्रताडित और अपमानित करने की क्षमता रहती है।

परसाई जी का लेखन हमारे भारतीय समाज हमारी भारतीय परंपरा से कटा हुआ नहीं था। उनका समस्त लेखन हमारा अपना सा महसूस होता है। उसमें आयातित कुछ नहीं था। परसाई जी को हमारी सामाजिक संरचना और उसमें मौजूद विसंगतियों का पूरा परिचय था। उनके भीतर एक प्रखर सामाजिक चेतना मौजूद थी। यह चेतना जानती थी कि केवल राजनीतिक सत्ता परिवर्तन हो जाने से मनुष्य की समस्त समस्याओं का समाधान नहीं हो जाएगा। मनुष्य के कल्याण के लिए जब तक मनुष्य की सामाजिक और कल्याणकारी चेतना का उत्थान नहीं होगा तब तक आमूल चूल परिवर्तन नहीं हो सकता है।

परसाई जी की प्रखर सामाजिक चेतना के उदाहरण उनके

जिस ओर उठी अंगुली जग की उस ओर मुड़ी गति भी पग की जग के अंचल से बंधा हुआ खिंचता आया तो क्या आया?

अनेक लेख है जिनमें से कुछ की चर्चा हम यहाँ करना चाहते हैं। परसाई जी समाज में बढ़ रही विघटन की प्रवृत्ति को लेकर बहुत चिंतित थे और इस संबंध में उन्होंने एक लेख लिखा था जिसका शीर्षक था 'किस भारत भाग्य विधाता को पुकारे।' इस लेख में परसाई जी ने देश के अलग अलग कोनों में फैल रहे प्रथकता आंदोलनों पर खासी चिंता व्यक्त की थी। इसमें अलग राज्य की मांग से लेकर अलग-अलग सामाजिक और आर्थिक संगठनों के उत्थान की चर्चा की गई थी जिनका स्वरूप देश की ऐकता की खिलाफवर्जी करता था। परसाई जी ने निराशा व्यक्त करते हुए लिखा था कि विघटन एवं अलगावबाद बढ़ रहा है। अपने-अपने रक्षित क्षेत्र में रहने की प्रवृत्ति बढ़ रही है रविंद्रनाथ ने जनगणमन की एकता की बात की है। जणगण की भावना ही घट रही है। संघ भावना कम होती जा रही है जन गण एक दूसरे से भिड़ रहे हैं। सब टूट रहा है। किस भारत भाग्य विधाता को पुकारें?

परसाई जी का मन यह देखकर भी उदास था कि देश में राजनीतिक विचार विमर्श और राजनीतिक आंदोलनों की बहुलता है जबकि अनेकों अनेक सामाजिक समस्याएँ देश में हैं जिनका निराकरण सामाजिक आंदोलन के माध्यम से ही हो सकता है। परसाई जी ने लिखा है कि गांधी जी ने उनके दौर में राजनीतिक आदोलन के साथ-साथ सामाजिक सुधार आंदोलन भी चलाए थे जैसे वर्ण व्यवस्था के विरुद्ध आंदोलन, दलितों के उद्धार के लिए आंदोलन, नारी स्वाधीनता और शिक्षा के लिए आंदोलन आदि। परसाई जी को यह दुख है कि अब राजा राममोहन राय और ईश्वर चंद्र विद्यासागर जैसे बौधिक सक्रिय सामाजिक आंदोलनकारी नहीं है। विवेकानंद जैसे वर्गचेतन क्रांतिकारी नहीं हैं। क्या आज के हमारे वाम समर्थक कभी स्वामी विवेकानंद और राममोहन राय के पुन: आने की दुआ कर सकते हैं? परसाई जी ने कहा था कि समाज सुधार का काम सामाजिक आंदोलनों को करना चाहिये लेकिन हम समाज सुधार का काम भी कानून और पुलिस से कराना चाहते हैं।

> **"परसाई जी इन सब बातों को बहुत अच्छी तरह से समझते थे इसलिए उनका व्यंग्य लेखन किसी एक राजनीतिक दल के विरुद्ध एकांगी नहीं था। उनके व्यंग्य की चोट सत्ता के उन सभी केंद्रों पर होती थी जिनके पास दूसरे मनुष्यों को प्रताडित और अपमानित करने की क्षमता रहती है।"**

परसाई जी की नजर एक और ऐसी समस्या पर थी जिस पर उस समय और आज भी बात करना जोखिम भरा है। यह विषय राजनीति और राजनीतिज्ञों को अधिक मुफीद बैठता है। परसाई जी का एक लेख है दलित कल्याण के कई ठेकेदार इसमें उन्होंने लिखा है जैसे मनुष्य को कोई रोग प्रिय हो जाता है वैसे ही जातियों को कोई रोग प्रिय हो जाता है। दाद खुजाने में आदमी को मजा आता है। कष्ट होने के बावजूद मजा आता है। हमारा समाज सदियों से यह वर्ण व्यवस्था और जातिवाद की दाद पाले हुए है। रोग है मगर उसे खुजाने का मजा भी लेता है और शिकायत भी करता जाता है कि यह बुरा रोग है।

परसाई जी ने लिखा है- सरकार आरक्षण करके काम खत्म समझ बैठी है। कर्तव्य पूरा हुआ पर जिस मशीनरी से काम कराया जाता है वह पूरी भ्रष्ट है। पिछड़ों में निहित स्वार्थी तत्व पैदा हो गए हैं वी बीच में लाभ ले लेते हैं। फिर लोक कल्याण की नीलामी इस देश में होती है। इससे लोक कल्याण के ठेकेदार पैदा हो गए हैं। ये कल्याण भरकस नहीं होने देंगे।

ऐसा खरा सच बोलने का आज कितने लेखक साहस कर सकते हैं?

परसाई जी का एक और लेख है 'समस्याएँ और जादू टोना।' इसमें वह लिखते हैं कि वास्तविक सांप्रदायिकता विरोध, जातिवाद विरोध, मेहनत माँगता है। रोज-रोज की मेहनत । लोगों से संपर्क करो, बात समझाओ। कई का विरोध झेलो। जन शिक्षण करो। तय करो कि एक सचेत कार्यकर्ता 10 को शिक्षित करेगा। फिर उनमें से हर एक 10 का दिमाग साफ करेगा। योजनाबद्ध काम करो। रोज दो-चार घंटे इसमें लगाओ। 1947 से ही अगर अध्यापकों, समाज सेवकों, कार्यकर्ताओं, लेखकों, बुद्धिजीवियों आदि ने ऐसी मेहनत की होती तो आज यह दुर्गति नहीं होती। मगर सब ने आराम का रास्ता पकड़ा उपदेश, भाषण, रैली, पुतला जलाना। उधर दूसरी शक्तियों ने मेहनत की और वह भी मिटा दिया ओ 1947 के बाद बचा था। हमारे यहाँ कॉलेज के अध्यापक का जो पेशा है उसे बहुत पवित्र और सम्माननीय माना जाता है। हिन्दी का अधिकतर लेखक वर्ग अध्यापन पेशे से ही है। परसाई जी को इन अध्यापकी से बहुत शिकायत है और वह इनको खरी खरी सुनाते हैं।

तीन चिंतित विद्वान और सात ऊबे आदमी एक कमरे में बैठते हैं। इसे सेमिनार कहते हैं। तीन विद्वान इन समस्याओं पर बोलते हैं। वे देश के महानाश के लिए परेशान हैं। परेशानी जाहिर करने के लिए वह कहीं शहर में इवनिंग तलाशते हैं। बैडमिंटन खेलने और देश की दुर्दशा पर बोलना एक जैसी इवनिंग है। ऊबे हुये श्रोता आज कुछ भी नहीं सुनते। विद्वानों के विचार-अंश दूसरे दिन अखबारों में छप जाते हैं। कोई नई बात नहीं है। वहीं जो कही जाती है। इन्हें कहने के लिये विद्वान होने की जरूरत ही नहीं है।

इन विद्वानों में अधिकतर अध्यापक होते हैं, विश्वविद्यालयों के। उनसे पूछा जाए कि आप विश्वविद्यालय में दिनभर रहते हैं। कई युवक आपके संपर्क में आते हैं। कोई भी विषय आप पढ़ते हैं उसमें गुंजाइश निकल आती है इन विचारों को छात्रों को देने की। अनौपचारिक

बातचीत में भी, आप यह शिक्षण कर सकते हैं। क्यों नहीं करते ? जिस काम को आप इवनिंग सेमिनार में जरूरी समझ कर करते हैं उसे रोज क्यों नहीं करते? आग लगी है, पानी की बाल्टियों रखी हैं मगर आप बाल्टी का पानी आग पर नहीं फेंकते। आप ईवनिंग सेमिनार में पानी फेकेंगे जब वहाँ राख बच जाएगी। अध्यापक वर्ग से सबसे अधिक शिकायत है। एक तो इनमें अधिकतर खुद आधुनिक नहीं हैं। तार्किक नहीं हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से संपन्न नहीं हैं। दकियानूस हैं। साथ ही यह मानसिक अलाल होते हैं। सही बात, नई बात सीखते ही नहीं हैं। विश्वविद्यालय की काँट-छाँट की राजनीति में तेज घुड़सवार हो जाते हैं।

परसाई जी प्रगतिशील थे इसमें कोई संशय नहीं है। उनकी प्रगतिशीलता केवल एक नारा नहीं थी। मन वचन और कर्म से निभाई जाने वाली प्रगतिशीलता थी। आज कोई भी प्रगतिशील साहित्यकार ऐसा दिखा दीजिए जो विवेकानंद पर आधिकारिक रूप से कुछ कहता हो एवं विवेकानंद को महान मानता हो। लेकिन हमारे परसाई जी ऐसे ही थे। उन्होंने विवेकानंद जी को राजनीतिक सामाजिक धार्मिक क्रांतिकारी माना है। उन्हें एक वर्ग चेतन क्रांतिकारी चिंतक माना है। परसाई जी को यह शिकायत है कि इन बातों को प्रचार नहीं किया जा रहा है। इसके स्थान पर विवेकानंद जी के बारे में यह प्रचार किया जा रहा है कि वह एक पुरातनवादी, गतिहीन चेतना हीन वैदिक धर्म के व्याख्याता थे। लेकिन सच्चाई यह है कि विवेकानंद धर्म पंथ के मामले में पूरी तरह उदार थे वे कतई संकीर्ण नहीं थे। विवेकानंद केवल भारत के शोषितों के बारे में ही नहीं पूरी दुनिया के शोषितों के बारे में सोचते थे। विवेकानंद मूर्ति पूजा, धार्मिक कर्मकांड आदि के भी खिलाफ थे। वह शिक्षा के पक्षधर थे। विवेकानंद घोर साम्राज्यवाद विरोधी थे। विवेकानंद बंगाल के क्रांतिकारियों के प्रेरणा स्त्रोत थे। विवेकानंद इन विचारों को ऐसे व्यक्तित्व और कर्म के व्यक्ति थे पर उन्हें एक संकीर्ण दृष्टि के स्वामी के रूप में प्रचारित किया जाता है।

धर्म और विज्ञान के अंतर्संबंधों पर परसाई जी ने बहुत ही अच्छी व्याख्या प्रस्तुत की है। सामान्य रूप से वाम विचारधारा से प्रेरित साहित्यकार मार्क्स की धर्म को अफीम मानने वाली बात बार-बार दोहराते हैं। धर्म को पूरी तरह से त्याग योग्य वस्तु समझते हैं। लेकिन परसाई जी बहुत ही युक्ति युक्त व्याख्या करते हैं- विज्ञान ने बहुत सा अज्ञान नष्ट कर दिया है। अंधविश्वास के लिए मनुष्य बाध्य नहीं है। आस्था की जगह उसे तर्क मिल गए हैं। विज्ञान ने बहुत से भय भी दूर कर दिए हैं। हालांकि नए भय भी पैदा कर दिए हैं।

विज्ञान तटस्थ होता है उसके सवालों का चुनौतियों का जवाब धर्म को देना होगा। मगर विज्ञान का उपयोग जो लोग करते हैं उनमें वह गुण होना चाहिए जैसे धर्म देता है। वह आध्यात्मिक अंतत: मानवतावाद वरना विज्ञान विनाशकारी भी हो सकता है।

धर्म और विज्ञान के आपसी अंतर्संबंध की परसाई जी ने इतनी सुंदर व्याख्या दी है, जिसे निहित स्वार्थी तत्वों ने दबा कर रखा है।

अपने एक और लेख में परसाई जी धर्म की सामाजिक परिवर्तन करने की शक्ति को रेखांकित करते हैं। इसमे यह कहते हैं कि धर्म की मूलचिंता मनुष्यों का दुख मिटाना और उन्हें बेहतर मनुष्य बनाना होता है।

प्रारंभिक दौर में धर्म ने यह काम किया है। भगवान बुद्ध की मूल चिंता दुख थी। दासों और दलितों के दुख हमें द्रवित हुए थे ईसा । इस्लाम का जन्म भी सामाजिक परिवर्तन की जरूरत से हुआ था। इस प्रकार हर धर्म मूल रूप से मनुष्य का दु:ख मिटाने के उपकरण के रूप में विकसित हुआ था लेकिन कालांतर में हर धर्म के साथ यह दुर्घटना हुई है कि उस पर शक्ति संपन्न वर्ग कब्जा कर लेता है। सामंत, साम्राज्यवादी, व्यापारी और पूंजीवादी यह सामाजिक परिवर्तन को रोकने लगते हैं। धर्म के जनकल्याणकारी तत्वों को छोड़ देते हैं और अन्याय पूर्ण मानव विरोधी व्यवस्था चलाते हैं। धर्म संस्कृति का एक प्रमुख तत्व है। धर्म दया, करुणा, न्याय, सदाचार आदि सिखाता है। निष्कर्ष के रूप में परसाई जी कहते हैं कि सामाजिक प्रगति और परिवर्तन के लिए धर्म को इतना सक्षम होना चाहिए कि वह यह भूमिका निभा सके।

इस प्रकार हरिशंकर परसाई हमारी पारंपरिक जातीय चेतना से जुड़े रह कर सामाजिक चेतना का उन्नत करने की बात करते हैं। परसायी जी का व्यंग्य लेखन केवल निषेधात्मक कभी नहीं था वह सकारात्मक और विधेय था। यह गुण आज के लेखकों में विरला ही मिलता है।

लेखक वरिष्ठ साहित्यकार हैं।
संपर्क : 14-ए, सागर एस्टेट्स अयोध्या बॉय पास, भोपाल म.प्र. 462041
मोबा. 9993974799

आज के समय में किसी भी मनुष्य के लिए सर्जक का जीवन जीना और सर्जना के लिए अपने आपको होम करना बहुत कठिन है। हरिशंकर परसाई में इस कठिन काम को निपट चुनौती और जिद के साथ पूरा किया। परसाई जी भले ही विगत कुछ वर्षों से अवस्था व आबोहवाजनित विपदाओं के चलते बिस्तर पर थे, मगर उनका सतत् लेखन यह सिद्ध करने के लिए खूब पर्याप्त था कि रुग्णता मनोबल के आगे हार जाती है। यह अभिव्यक्ति पत्र-पत्रिकाओं में परसाई जी की रचनाधर्मी जिद्द के साथ हमें पढ़ने को मिलती रही है। व्यंग्कार यदि खरी-खरी सुनाने और कटाक्ष करने में सिद्धहस्त और निर्भीक होता है तभी वह कायदे का व्यंग्कार होता है। परसाई जी को तभी हम कायदे का व्यंग्कार मानते भी हैं। परसाई जी ने समाज और समय को जितना जाना उतना उनका समदर्शी शायद ही कोई जान पाया। इसीलिए और चूंकि इसलिए भी कि परसाई जी पाठकों के लिए लिखते थे, हमें लगा कि उनका स्मरण पाठकों की तरफ से किया जाना बेहद नैतिक और अनिवार्य है। जाहिर है कर्मचारी भी पढ़ते हैं। परसाई जी की याद में यह भावांजलि श्रद्धा की इसी भावना से प्रेरित है। हमें विश्वास है कि इस भावना में सब सहभागी है।

परसाई जी की सम्पूर्ण रचनाधर्मिता अकारण नहीं जाएगी। प्रतिकूल और अनुकूल के साथ ही विद्रूपताओं के अवसर और अहसास के बीच परसाई जी हमेशा याद किये जायेंगे, यही भावना और कामना इस भावांजलि के अवसर पर हैं।

विजयदत्त श्रीधर
(पद्मश्री से विभूषित)
सप्रे संग्रहालय

यश ही परमार्थ है. हमें एक काम ऐसा जरूर करना चाहिए, जिससे नाम अमर रहे।

व्यंग्य आलेख

खबर लेते और खबरदार करते परसाई

मलय जैन

खबर कौन ले सकता है और खबरदार कौन कर सकता है ? ये सवाल आपसे करूं तो आपका जवाब होगा वही जिसके पास विचार हो दृष्टि हो साहस हो, भाषा हो असहमति हो और आप में से ज्यादातर यह मानेंगे वही जिसकी रीढ़ मजबूत हो।

परसाई के पास इन सब का कोम्बोपैक था। यों आप सवाल कर सकते हैं कि साहस, विचार दृष्टि तो बाद की बात है पहला प्रश्न ये है कि खबर हो कैसे? आपकी गिरह में खबर होगी तभी तो आप खबर लेंगे और खबरदार करेंगे। तो साहब, परसाई के खबर जुटाने का अंदाज भी अलग ही था। वह अपने एक व्यंग्य में लिखते हैं. लेखक की दो नहीं 100 आंखें होती हैं। परसाई जी जिस बड़े कैनवास पर लिखा करते थे तो मुझे तो लगता है कि परसाई दो नहीं हजार आंखें रखते थे और एक साथ सारी आंखें खुली भी रखते थे तब अपने चारों ओर की खबर रखते थे और खबरदार करते थे। तब जाकर उनकी रचनाएं जोरदार, असरदार और सबसे बड़ी बात, यादगार होती थी।

परसाई ने व्यंग्य को अलग-अलग तरीकों से लिखा। लघुकथाओं में लिखा, कहानियों में लिखा, निबंध में लिखा। शैली की बात करें तो कई दफा फेंटेसी में लिखा लेकिन बात खबर लेने की है तो उन्होंने जहां-जहां जैसा जैसा लिखा, खबर लेना नहीं छोड़ा। अब आते हैं इस पर कि परसाई जी ने किस-किस की खबर ली। यूं तो व्यंग्य जब लिखा जाता है तो खबर लेने के लिए ही लिखा जाता है । ये बात और है कि आज बहुत सारे व्यंग्यकार खबर लेने के लिए नहीं, खबर देने के लिए लिख रहे हैं। व्यंग्य के कॉलम में बहुत सारे व्यंग्य ऐसे लिखे जा रहे हैं कि आपको लगेगा अखबार की कोई खबर या रिपोर्टिंग पढ़ रहे हैं। परसाई इन सब से बहुत ऊपर थे। वे खबरें देते नहीं थे खबरें रखते थे और तब खबर लेते थे।

उन्होंने खबर लेने में किसी को पीछे नहीं छोड़ा। समाज, राजनीति, सरकारी व्यवस्था, व्यापारी, धार्मिक संगठनों, शिक्षकों प्रोफेसरों किसी को उन्होंने नहीं छोड़ा था। मैं पुलिस विभाग से हूं तो सबसे पहले आपको बताना चाहूंगा परसाई ने अपने कई व्यंग्यों में पुलिस की भी खूब खबर ली। पुलिस में भर्ती के बाद सबसे पहले जो होता है वह है ट्रेनिंग। परसाई ने राम सिंह की ट्रेनिंग शीर्षक से एक व्यंग्य लिखा। आप ये देखिए कि कैसे वो एक एक एक्टिविटी पर बारीक नज़र रखते थे। बात बहुत थ्योरिटिकल न हो तो आपको शॉर्ट में बताता भी चलता हूं।

राम सिंह पुलिस में थानेदार भर्ती हुए। मन में बड़े ऊंचे आदर्श और सेवा की भावना थी। एक रोज उनके थाने में चोरी की रिपोर्ट आई और वह तब तफ्तीश करने मौका एक वारदात पर पहुंच गए। वहां एक बूढ़ा मिला। राम सिंह ने पूछा, बाबा आप के ही घर चोरी हुई है? बूढ़ा चुप खड़ा रहा। राम सिंह ने फिर पूछा, बाबा आप ही के घर चोरी हुई है? बूढ़े ने कहा हुजूर मुझसे पूछ रहे हैं क्या? रामसिंह बड़े आदर के साथ बोले, हां बाबा आप ही से पूछ रहा हूं।।

बूढ़ा बोला, लेकिन मेरा नाम तो अबे साले बुड्ढे है। तब तक लड़का दूध का गिलास लेकर आ गया। रामसिंह मना करते बोले, नहीं नहीं मैं तो अपनी ड्यूटी कर रहा हूं। सुपारी तक नहीं खाता। फिर राम सिंह ने बूढ़े को खाट पर बैठने के लिए कहा आप इतने सयाने हो। खड़े क्यों हो तो बूढ़ा घबरा गया। उसने राम सिंह को 50 का नोट देने की पेशकश की और बोला, हुजूर लड़के से बड़ी गलती हो गई जो उसने रिपोर्ट कर दी। आप तो जे रखो और हमें माफ करो। अब कभी रिपोर्ट नहीं करेंगे। राम

रेखाचित्रः अवधेश बाजपेयी

बेइज्जती में अगर दूसरे को भी शामिल कर लो तो आधी इज्जत बच जाती है।

सिंह हैरान रह गए, यह क्या। मुझे तो वेतन मिलता है। मैं पैसा क्यों लूंगा। अब वहां आसपास जितने लोग खड़े थे सबने एक दूसरे को देखा, राम सिंह को पकड़ा और बांध दिया कि ऐसा पुलिस वाला तो हो ही नहीं सकता। अबे साले बुड्ढे की जगह बाबा कहकर बुलाता है। ना तो गाली देकर बुलाता है न कुछ खाता पीता है। ना पैसा लेता है। तब राम सिंह की समझ में आया और उन्होंने घर में ही गाली देने और घर के ही बच्चों को पकड़कर बंद कर देने की प्रैक्टिस शुरू कर दी। आपको बता दूं, ये आज से 60 से 70 साल पुरानी बात होगी लेकिन परसाई ने तब जो देखा वह लिखा, बड़े मजे लेकर लिखा ।

इंस्पेक्टर मातादीन चांद पर पढ़ा ही होगा आपने। चांद ने पृथ्वी पर लिखा कि हमारे यहां अपराधी को सजा नहीं दिला पाते और हमारी पुलिस compitent नहीं है। चूंकि आपके यहां रामराज है इसलिए एक पुलिस अफसर भेज दें जो कि हमारी पुलिस को ट्रेनिंग दे सके । अपने यहां से इंस्पेक्टर मातादीन जाते हैं। वह अंतरिक्ष से जो यान आता है उसके चालक को चमकाते हैं, लाइट हॉर्न वॉर्न सब दुरुस्त है न। साले अंतरिक्ष के रास्ते में हॉर्न बजाते रहना वरना चालान कर दूंगा। चाँद का चालक कहता है कि ऐसी लैंग्वेज में हमारे यहां बात नहीं करते तो मातादीन कहते हैं इसलिए तो तुम्हारी पुलिस कमजोर है। अब मैं सब ठीक कर दूंगा। अभी टेक ऑफ होने वाला होता है कि एक सिपाही भागते भागते आता है सर सर एसपी साहब की मेडम कही है कि उनके लिए चांद से एड़ी घिसने का पत्थर भी लेते आना। खबरों के रूप में इतनी अंदर की बातें परसाई के पास आती कहां से थीं? मेरे एक परिचित ने बताया, वह जबलपुर के ओमती थाने में रोजाना बैठते थे और बड़ी बारीकी से सारी गतिविधियां ऑब्जर्व करते थे। थाना ही नहीं, वह चाय पान की गुमटियों में और ऐसी ही जगहों पर भी रोजाना बैठा करते थे। उन्होंने कहीं लिखा है कि यहीं जगहें उनकी पाठशाला थीं। एक व्यंग्यकार के लिए सबसे जरूरी होता है ऑब्जरवेशन और यह क्षमता परसाई में गजब की थी। उन्होंने सिस्टम की एक-एक विसंगति को पकड़ा और फिर उस पर लिखा। इसी व्यंग्य कथा इंस्पेक्टर मातादीन में गवाहों को लेकर एक बड़ा करारा तंज परसाई ने किया। वह लिखते हैं चश्मदीद गवाह वह नहीं होता जो घटना देखे। चश्मदीद गवाह वह होता है जो कहे उसने देखा। तो साहब, इंस्पेक्टर मातादीन चांद पर में परसाई जी ने हमारे विभाग की जमकर खबर ली। यों अब जमाना बदल गया है। पुलिसिंग में भी बड़े सुधार आए हैं। लेकिन ये 50 साल पुरानी पुलिस की बात है। तब जो उन्होंने देखा उसकी खबर ली और खूब बढ़ चढ़कर खबरदार भी किया। जिन्होंने ने परसाई जी की लिखी शानदार फेंटेसी रानी नागफनी की कहानी को पढ़ा है, वे जानते हैं कि किस तरह कदम-कदम पर सिस्टम की उन्होंने खबर ली। चाहे वह बीए में पास होने को लेकर हो. इंटरव्यू देकर डिप्टी कलेक्टर बनने को लेकर हो. आप देखेंगे आज के पेपर लीक केसेज़ से किस तरह उनका व्यंग्य सीधे कनेक्ट होता है। इसी फेंटेसी में उन्होंने खबर देने वालों यानी पत्रकारों की भी खूब खबर ली है। एक बड़ा मज़ेदार प्रसंग है जहां नागफनी और कुंवर अस्तभान आत्महत्या के लिए घोषणा कर चुके हैं। मीडिया वाले स्टोरी के लिए कैमरे लिए तैयार खड़े हैं और इधर दोनों आत्महत्या का प्लान कैंसिल कर देते हैं। मीडिया वाले कहते हैं कि दो महत्वपूर्ण आत्महत्या हो रही थीं। कितनी गजब की न्यूज़ जाती। जब उनसे पूछा जाता है कि यार किसी के प्राण बचने में तो प्रसन्नता होनी चाहिए यार आप लोग दुखी हो रहे हो तो सीनियर जर्नलिस्ट बोलते हैं किसी बड़े आदमी की मौत होती है तो सारे एडिटोरियल डिपार्टमेंट में प्रसन्नता छा जाती है कि यार ये बनेगी स्टोरी। आपको बताऊं अभी बस्तर के ऊपर प्रसिद्ध पत्रकार आशुतोष भारद्वाज की किताब पढ़ रहा था. मृत्यु कथा। उसमें उन्होंने अपने पत्रकार साथियों के लिए लिखा है पत्रकारिता की यहीं त्रासदी है बांझ जमीन पर हल जोतना। रोज उसी घटना का नए हर्फों में पुनर लेखन। एक मरती जा रही खबर की शवसाधना। इस आस में की कुछ सांस चल निकलें और उसे नई खबर में तब्दील कर दिया जाए। आज की ब्रेकिंग न्यूज़ वाली मीडिया को आप देख रहे हैं। परसाई आज होते तो मुझे लगता है कि वह इन खबर देने वालों की किस-किस तरह से खबर न लेते! लेकिन उस दौर में भी उन्होंने उनकी खूब खबर ली और जमकर ली।

रानी नागफनी की कहानी में ही उन्होंने डॉक्टरों की भी खूब खबर ली है जो हर रोग में एक ही दवा देते हैं। सर्दी बुखार में पेनिसिलिन, पेट दर्द में पेनिसिलिन, टीबी हो जाए तो पेनिसिलिन, भाई-भाई में झगड़ा हो जाए तो दोनों को पेनिसिलिन। रानी नागफनी को प्रेम का रोग हो गया है तो उसे भी पेनिसिलिन लेने की सलाह। डॉक्टर कहता है पेनिसिलिन से यदि रोगी मर भी जाए तो उसे स्वर्ग में स्थान मिलता है। जो बिना

"परसाई ने व्यंग्य को अलग-अलग तरीकों से लिखा। लघुकथाओं में लिखा, कहानियों में लिखा, निबंध में लिखा। शैली की बात करें तो कई दफा फेंटेसी में लिखा लेकिन बात खबर लेने की है तो उन्होंने जहां-जहां जैसा जैसा लिखा, खबर लेना नहीं छोड़ा। अब आते हैं इस पर कि परसाई जी ने किस-किस की खबर ली। यूं तो व्यंग्य जब लिखा जाता है तो खबर लेने के लिए ही लिखा जाता है । ये बात और है कि आज बहुत सारे व्यंग्यकार खबर लेने के लिए नहीं, खबर देने के लिए लिख रहे हैं। व्यंग्य के कॉलम में बहुत सारे व्यंग्य ऐसे लिखे जा रहे हैं कि आपको लगेगा अखबार की कोई खबर या रिपोर्टिंग पढ़ रहे हैं। परसाई इन सब से बहुत ऊपर थे। वे खबरें देते नहीं थे खबरें रखते थे और तब खबर लेते थे।"

चश्मदीद वह नहीं है, जो देखे; बल्कि वह है, जो कहे कि मैंने देखा।

पेनिसिलिन के मर जाए उसे फिर से जन्म लेकर पेनिसिलिन लगवानी पड़ती है। अपने गहरे तंज़ से डॉक्टरों की ऐसी खबर परसाई ही ले सकते थे।

सिस्टम की खबर लेने पर और आगे चलें तो भोलाराम का जीव का जिक्र किए बिना यह चर्चा अधूरी रहेगी। जहां भोलाराम रिटायरमेंट के 5 साल बाद तक पेंशन नहीं ले पाए। हर 10-15 दिन में दरखास्त देने पर उन्हें यही जवाब मिलता कि अभी विचार हो रहा है। कारण जो बाबू साहब ने बताया वह यह था कि भोलाराम ने आवेदन तो बहुत दिए मगर उन पर वजन नहीं रखा इसलिए आवेदन कहीं उड़ गए और नारद जी जब फाइल निकलवाते हैं तो भोलाराम का जीव उसी में अटका मिलता है जो कह देता है मैं पेंशन की दरख्वास्तों में अटका हूं। इन्हें छोड़कर तो में स्वर्ग में भी नहीं जा सकता। सिस्टम में लालफीताशाही और भ्रष्टाचार को लेकर ये बहुत सटीक व्यंग्य है वहीं एक व्यंग्य का और जिक्र करूंगा और वो है सदाचार का ताबीज जो सिस्टम में छाए करप्शन पर बहुत ही करारी चोट करता है।

खबर लेने के मामले में परसाई जी सिर्फ सिस्टम के ही पीछे नहीं थे। उन्होंने जहां जो देखा जो विसंगति पाई, उसकी खबर ली। व्यापारियों को लेकर उन्होंने वैष्णव की फिसलन जैसा शानदार व्यंग्य लिखा कि दो नंबर का अपार पैसा इकट्ठा हो गया है और अब वह प्रभु से आदेश लेकर एक शुद्ध शाकाहारी होटल खोलते हैं। अपनी शुद्ध आत्मा की आवाज पर कुछ समय बाद वह होटल में नॉनवेज का इंतजाम शुरू करते हैं फिर शराब बिकने लगती है और बार डांसरों की व्यवस्था होती है और फिर शबाब का भी इंतजाम हो जाता है।

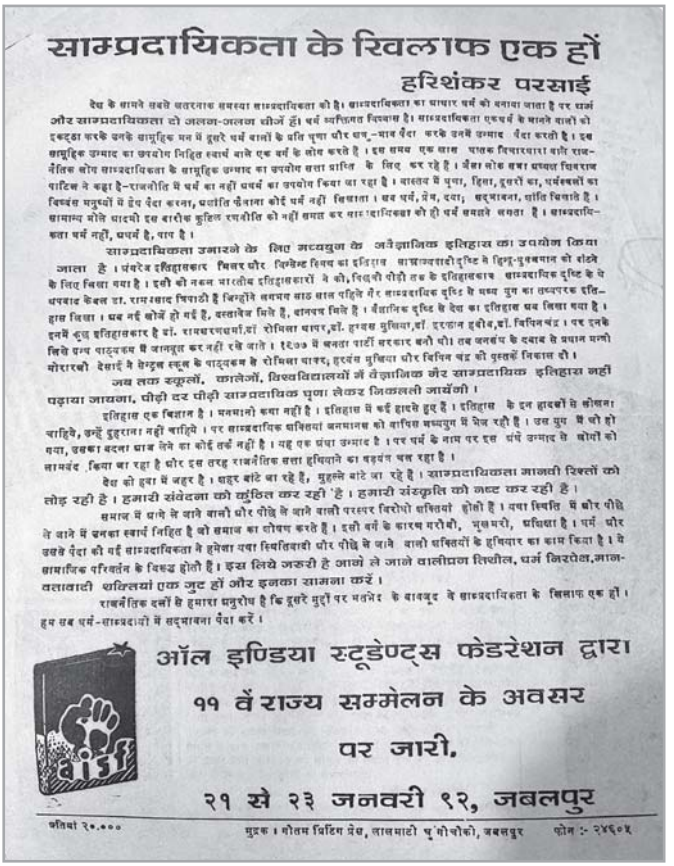

परसाई ने अपने व्यंग्य में लिखा है कि सबसे बढ़िया आत्मा वह होती है जो फोल्डिंग होती है। जहां मर्जी चाहे फैला दो और जहां मर्जी चाहे फोल्ड करके कोने में टिका दो। ऐसी सभी भ्रष्ट आत्माओं की परसाई ने खूब खबर ली है।

ज्यादातर व्यंग्यकारों में सबसे विचित्र बात जो है वह यह है कि वे खुद पर व्यंग्य नहीं करते। निदा फ़ाज़ली ने लिखा है. हर आदमी के भीतर होते हैं 10 20 आदमी जिसे भी देखना कई बार देखना। आदमी खुद के भीतर जब देखता है, जिसे आत्मान्वेषण या इंट्रोस्पेक्शन कहते हैं तो उसे खुद के कई चेहरे देखने मिलते हैं, लेकिन तब भी वह लिखता है दूसरों पर ही। खुद पर नहीं लिखता। परसाई उन बिरले व्यंग्यकारों में थे जिन्होंने खुद की भी खबर ली और अपने ऊपर ही व्यंग्य किया। आना और ना आना रामकुमार का ऐसा ही एक व्यंग्य है। उन्होंने खुद स्वीकार किया कि बदनामी अपनी कई तरह की है। एक यही है कि भाषण देने के उद्घाटन करने के और मुख्य अतिथि होने के लिए मैं पैसे लेता हूं। मैं पहुंचते ही आयोजकों के चेहरों, व्यवहार और आवभगत से हिसाब लगाना शुरू कर देता हूँ मुझे अच्छे पैसे देंगे या नहीं। उन्हें पता लगता है कि रामकुमार पैसे लेकर आ रहे हैं मगर रामकुमार नजर नहीं आते। लोग चाप ऑफर करते हैं लेकिन चाय में स्वाद नहीं आता। रामकुमार ने स्वाद छीन लिया है। एक सुंदरी तारीफ करती है बड़ा सुंदर भाषण दिया आपने, मगर इस समय विश्व सुंदरी भी रामकुमार के आगे फीकी है।

लब्बोलुआब ये है कि परसाई ने खबर लेने के मामले में पुलिस, प्रशासन, डॉक्टरों, प्रोफेसरों, पत्रकारों, व्यापारियों तक तो ठीक, खुद को भी नहीं छोड़ा और जैसा कि शुरू में मैं ने लिखा, परसाई ने कहा था कि लेखक की दो नहीं, सो आंखें होती है तो मैं फिर कहूँगा, परसाई की सौ नहीं हजार आंखें थी और उन हजार आंखों से उन्होंने अपने चारों ओर और जो भी विसंगतियां देखी, जो जो विद्रूपताएं देखीं, उन पर उन्होंने लिखा और पूरी बेबाकी से लिखा और ऐसी बेबाकी तभी आती है जब आपके भीतर 360 डिग्री ऑब्सर्वेशन की कला के साथ विचार की शक्ति हो, और विचारों पर दृढ़ रहने की काबिलियत हो। परसाई में ये सारी क्वालिटीज थीं और यही कारण है कि आज जहां जहां भी व्यंग्य की बात होती है वहां परसाई खबर में सबसे ऊपर होते हैं और आगे भी खबरों में बने रहेंगे यह तय है।

लेखक: सहायक पुलिस महानिरीक्षक मध्यप्रदेश पुलिस भोपाल हैं।
सम्पर्क: सेक्टर के एच 50, अयोध्या नगर
भोपाल मप्र 462041 मोबाइल 9425465140

साम्प्रदायिकता के खिलाफ एक हों

हरिशंकर परसाई

देश के सामने सबसे खतरनाक समस्या साम्प्रदायिकता की है। साम्प्रदायिकता का आधार धर्म को बनाया जाता है पर धर्म और साम्प्रदायिकता दो अलग-अलग चीजें हैं। धर्म व्यक्तिगत विश्वास है। साम्प्रदायिकता एक धर्म के मानने वालों को इकट्ठा करके उनके सामूहिक मन में दूसरे धर्म वालों के प्रति घृणा और शत्रु-भाव पैदा करके उनमें उन्माद पैदा करती है। इस सामूहिक उन्माद का उपयोग निहित स्वार्थ वाले एक वर्ग के लोग करते हैं। इस समय एक खास घातक विचारधारा वाले राजनैतिक लोग साम्प्रदायिकता के सामूहिक उन्माद का उपयोग सत्ता प्राप्ति के लिए कर रहे हैं। जैसा लोक सभा अध्यक्ष शिवराज पाटिल ने कहा है-राजनीति में धर्म का नहीं अधर्म का उपयोग किया जा रहा है। वास्तव में घृणा, हिंसा, दूसरों का, धर्मस्थलों का विध्वंस मनुष्यों में द्वेष पैदा करना, अशांति फैलाना कोई धर्म नहीं सिखाता। सब धर्म, प्रेम, दया, सद्भावना, शांति सिखाते हैं। सामान्य भोले आदमी इस बारीक कुटिल रणनीति को नहीं समझ कर साम्प्रदायिकता को ही धर्म समझने लगता है। साम्प्रदायिकता धर्म नहीं, अधर्म है, पाप है।

साम्प्रदायिकता उभारने के लिए मध्ययुग के अवैज्ञानिक इतिहास का उपयोग किया जाता है। अंगरेज इतिहासकार मिल और विन्सेन्ट स्मिथ का इतिहास साम्राज्यवादी दृष्टि से हिन्दू-मुसलमान को बांटने के लिए लिखा गया है। इसी की नकल भारतीय इतिहासकारों ने की, पिछली पीढ़ी तक के इतिहासकार साम्प्रदायिक दृष्टि के थे अपवाद केवल डा. रामप्रसाद त्रिपाठी हैं जिन्होंने लगभग साठ साल पहिले गैर साम्प्रदायिक दृष्टि से मध्य युग का तथ्यपरक इतिहास लिखा। अब नई खोजें हो गई हैं, दस्तावेज मिले हैं, दानपत्र मिले हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से देश का इतिहास अब लिखा गया है। इनमें कुछ इतिहासकार हैं डॉ. रामशरणशर्मा, डॉ. रोमिला थापर, डॉ. हरवंश मुखिया, डॉ. इरफान हबीब, डॉ. विपिनचंद्र। पर इनके लिखे ग्रन्थ पाठ्यक्रम में जानबूझ कर नहीं रखे जाते। १९७७ में जनता पार्टी सरकार बनी थी। तब जनसंघ के दबाव से प्रधान मन्त्री मोरारजी देसाई ने सेन्ट्रल स्कूल के पाठ्यक्रम से रोमिला थापर, हरवंश मुखिया और विपिन चंद्र की पुस्तकें निकाल दी।

जब तक स्कूलों, कालेजों, विश्वविद्यालयों में वैज्ञानिक गैर साम्प्रदायिक इतिहास नहीं पढ़ाया जायगा, पीढ़ी दर पीढ़ी साम्प्रदायिक घृणा लेकर निकलती जायेंगी।

इतिहास एक विज्ञान है। मनमानी कथा नहीं है। इतिहास में कई हादसे हुए हैं। इतिहास के इन हादसों से सीखना चाहिये, उन्हें दुहराना नहीं चाहिये। पर साम्प्रदायिक शक्तियां जनमानस को वापिस मध्ययुग में भेज रही हैं। उस युग में जो हो गया, उसका बदला आज लेने का कोई तर्क नहीं है। यह एक अंधा उन्माद है। पर धर्म के नाम पर इस अंधे उन्माद से लोगों को लामबंद किया जा रहा है और इस तरह राजनैतिक सत्ता हथियाने का षड़यंत्र चल रहा है।

देश की हवा में जहर है। शहर बांटे जा रहे हैं, मुहल्ले बांटे जा रहे हैं। साम्प्रदायिकता मानवी रिश्तों को तोड़ रही है। हमारी संवेदना को कुंठित कर रही है। हमारी संस्कृति को नष्ट कर रही है।

समाज में आगे ले जाने वाली और पीछे ले जाने वाली परस्पर विरोधी शक्तियां होती हैं। यथा स्थिति में और पीछे ले जाने में उनका स्वार्थ निहित है जो समाज का शोषण करते हैं। इसी वर्ग के कारण गरीबी, भुखमरी, अशिक्षा है। धर्म और उससे पैदा की गई साम्प्रदायिकता ने हमेशा यथा स्थितिवादी और पीछे ले जाने वाली शक्तियों के हथियार का काम किया है। ये सामाजिक परिवर्तन के विरुद्ध होती हैं। इस लिये जरूरी है आगे ले जाने वाली प्रगतिशील, धर्म निरपेक्ष, मानवतावादी शक्तियां एक जुट हों और इनका सामना करें।

राजनैतिक दलों से हमारा अनुरोध है कि दूसरे मुद्दों पर मतभेद के बावजूद वे साम्प्रदायिकता के खिलाफ एक हों। हम सब धर्म-सम्प्रदायों में सद्भावना पैदा करें।

ऑल इण्डिया स्टूडेण्ट्स फेडरेशन द्वारा
११ वें राज्य सम्मेलन के अवसर
पर जारी.
२१ से २३ जनवरी ९२, जबलपुर

प्रतियां २०.०००   मुद्रक : गौतम प्रिंटिंग प्रेस, लालमाटी चुंगीचौकी, जबलपुर   फोन :- २४६०५

जिनकी हैसियत है, वे एक से भी ज़्यादा बाप रखते हैं- एक घर में, एक दफ्तर में, एक-दो बाजार में, एक-एक हर राजनीतिक दल में

व्यंग्य आलेख

बदले हुए पतों वाले लिफाफों की पहुँच

दिनेश चौधरी

बहुत दिनों से कुछ लिखा नहीं, पर लिखे बिना अपना गुजारा नहीं होता। किराने वाले ने महीने के राशन का बिल भेज दिया होगा। पहले लेखक हैं कहकर कुछ लिहाज कर देता था पर वह भी अब कब तक करे? अब किरानियों की पहले जैसी आमदनी नहीं रही। बड़े-बड़े मॉल खुल गए हैं। उन दिनों मोहल्ले के लोग छोटे-छोटे दुकानों में जाते थे। दुआ-सलाम बनी रहती थी। कभी हँसी-ठठ्ठा हो जाता था, कभी चाय-पानी भी। एक रिश्ता तो बहरहाल होता ही था। हिसाब लिखवा दिया जाता या गिनकर पैसे दिए जाते। हाथों में कुछ स्पर्श होता था और एक आत्मीयता बनी रहती थी। अब तो यह है कि काउन्टर से सामान उठाया, मशीन से बिल बना, फोन से चुका दिया। लेने वाला दिहाड़ी मजदूर भी मशीन है। लेन-दिन की प्रक्रिया में वह सिर्फ एक टूल है। स्पर्श तो क्या यहाँ निगाहें भी नहीं मिलती।

रेखाचित्रः अवधेश बाजपेयी

यह एक नया समाज है, जो बाजार बना रहा है। दुनिया भी नयी है। नये-नये अजूबे हैं, इसीलिए एक नया निबंध लिख रहा हूँ -क्रांतिकारी की फिसलन। थोड़ा अजीब लग रहा होगा पर फिसलन सब तरफ होती है। उधर भी, इधर भी। जमाना बदल गया है। हमारे समय में सिद्धांतों की बात होती थी लेकिन अब सुविधाएं सबसे ऊपर है। यह शीर्ष पर जाने से हासिल होती है, अलबत्ता रास्ता कुछ उल्टा है। फिसलन जितनी तेज होगी, आप उतनी ही जल्दी ऊँचाई पर पहुँचते जायेंगे। नैतिकता, सिद्धांत, आत्मसम्मान जैसी फालतू पड़ी चीजों को लोगों ने कबाड़खाने में फेंक दिया है। कभी-कभार उत्सव-जयंती वगैरह के मौकों पर इन्हें झाड़-पोंछकर सजा दिया जाता है। ये एंटीक चीजें हैं, सिर्फ देखने-सजाने के काम की हैं; असल जीवन में इनकी कोई उपयोगिता नहीं रह गयी है। कोई उपयोग करने की कोशिश करे भी तो उसे संदेह की नज़रों से देखा जाता है। जल्द ही यह सब चीजें किताबों में भी नजर नहीं आएंगी। मौकापरस्ती को ही श्रेष्ठ मूल्य बताया जाएगा क्योंकि तय करने वाले भी वही लोग हैं। वे अब निर्णायक भूमिका में आ गए हैं। कबीर आज के समय में होते तो उन्हें कैसी-कैसी उलटबांसियाँ रचनी पड़तीं!

कला जनता के नाम प्रेम-पत्र होती है और शासक के लिए अभियोग-पत्र। लेखकों-कलाकरों-कवियों ने लिफाफों में पते बदल दिए हैं। इधर की चिट्ठी उधर भेजने लगे और उधर वाली इधर। राजधानी पहुँचने वाली इन चिट्ठियों के बदले में उन्हें ओहदे मिले, ग्रांट मिले, पुरस्कार मिले। महंगे होटल, लकदक गेस्ट-हॉउस, हवाई यात्रा, पुरस्कार, सम्मान, फेलोशिप की लत पड़ गयी। अब उन्हें लगता है कि यह उनका बुनियादी अधिकार है। पहले जनता से कुछ सरोकार होते थे, अब सरोकार गायब हो गए। जनता ने उन्हें गायब कर दिया, पर इससे उनकी सेहत पर कोई फर्क नहीं पड़ता। मैं जब भी सफलता के दर्प से चमचमाते चेहरों को देखता हूँ, समझ जाता हूँ कि ये लिफाफों में पते बदल देने की प्रक्रिया से उपजी अवैध संतानें हैं।

मेरे अपने लोगों ने भी मेरे साथ कोई अच्छा सलूक़ नहीं किया। मर-खप कर जितना लिखा, सब एक झटके में भुला देने की कवायद करते रहे। जन्मशती- उत्सव धूम-धाम से मना लिए जाने के बाद लग रहा है कि बेरोजगार-सा हो गया हूँ। घर से बेटी की बिदाई हो जाने के बाद खाली शामियाने के नीचे बैठे बाप को ऐसा ही महसूस होता है। अब उस तरह से कोई याद भी नहीं कर रहा है, जैसा हल्ला कुछ दिनों पहले तक लोगों ने मचाया हुआ था। अपने यहाँ लोग उत्सवधर्मी है। एक को मनाकर भूल जाते हैं और दूसरे की तैयारी में लग जाते हैं।

किसी ने पूछा परसाई जी! आपको बुरा तो नहीं लग रहा है?

मैंने कहा कि, मैं बुरे लोगों का कतई बुरा नहीं मानता। उत्सव-धर्मी तो अकाल का भी उत्सव मना लेते हैं। बाढ़, महामारी, मृत्यु का भी। अपने इधर शवयात्रा में मैंने बैंड बजते हुए देखा है। लोग महामारी में ताली-थाली भी बजा लेते हैं। कभी-कभी तो मुझे लगता है कि लोग मूर्खतापूर्ण काम करते ही इसलिए हैं कि परसाई को कुछ लिखने के लिए मिल जाए...बेचारे की रोजी-रोटी इसी से चलती है। लेकिन वे परोपकारी नहीं प्रशिक्षित मूर्ख और धूर्त हैं। उन्हें पता चले कि उनकी मूर्खता से किसी का भला हो रहा है तो वे फौरन इसे त्याग देंगे।

बहरहाल, अपनी जन्मशती का अनुभव बहुत खराब रहा। जैसा सोच रखा था, वैसा कुछ नहीं हुआ। होना भी यही था। हिंदी के लेखकों के भरोसे कुछ भी नहीं छोड़ा जा सकता। वे कोई काम ढंग का नहीं कर सकते।

इस देश के बुद्धिजीवी शेर हैं पर वे सियारों की बारात में बैंड बजाते हैं।

इनमें से आधे तो प्रोफेसर हैं, जिनके बारे में कुछ भी न कहा जाए तो बेहतर है। अस्तभान ने नागफनी को प्रेम-पत्र लिखा तो एक हजरात ने उसे नॉवेल के बदले मेकेनिकल इंजीनियरिंग की किताब में भिजवा दिया। बेचारी प्रेमिका खडूस बाप के हाथों धर ली गयी। जो इतना सा काम ढंग से नहीं कर सकते, वो जन्म-शती का आयोजन क्या खाक करेंगे?

संगठनों में बूढ़े लोग कुर्सी से चिपके हुए हैं। एक-एक आदमी कई-कई संगठनों में हैं पर गनीमत है कि एक ही पद पर हैं। इनका बस चले तो सारे पद खुद ही हथिया लें-वन मैन आर्मी! ऐसे जवान जो बस फूँक मारने से ढेर हो जाएँ। ये बूढ़े उम्र से नहीं हैं, विचारों से हैं। कुछ नया करने के लिए न उनके पास ऊर्जा बची है, न इच्छा शक्ति। सिर्फ खुद के लिए लायजनिंग के काम में लगे हुए हैं। किसी और को बढ़ते हुए नहीं देख सकते। नए लोगों से, तरुणों से, किशोरों से संवाद करने के लिए उनके पास कोई भाषा नहीं है। वे जिस जुबान में आम-अवाम से बात करना चाहते हैं, वह उनके पल्ले नहीं पड़ती। सच कहा जाए तो खुद उनके पल्ले नहीं पड़ती। रटे-रटाए जुमले हैं। उबाऊ, ठस्स और बोझिल। वे मेरी भाषा ही नहीं पकड़ सके तो ख्यालात क्या खाक पकड़ते।

बहुत सारी समितियां बनी मेरी जन्मशती के नाम पर। उत्सव भी मना लिया पर अभी तक चंदे का हिसाब किसी ने नहीं दिया। प्रकाशकों ने अग्रिम रॉयल्टी की बात कहकर किताबें छापीं, उनका भी कोई पता नहीं है। कहीं मूर्ति वगैरह लगाने की बात हुई थी पर किसका कमीशन क्या होगा यह भी नहीं बताया गया। मेरे नाम पर किसी पुरस्कार की घोषणा नहीं हुई, न किसी विश्विद्यालय ने शोधपीठ की स्थापना की। कोई बड़ा विवाद भी नहीं हुआ। लेखकों ने आपस में जूतमपैजार तो क्या, गाली-गलौज तक नहीं की जबकि दूसरे मौकों पर वे इसी काम में लगे रहते हैं। इतनी नीरस जन्मशती तो किसी छायावादी कवि की भी नहीं होती।

मेरे नाम पर बहुत सारे संस्मरण लिखे गए। कुछ ने जीवनी भी लिखी। पढ़कर आनन्द आया। मुझे अपने बारे में नयी-नयी जानकारियां हासिल हुईं। अपनी महानता के बारे में मुझे जीते-जी पता नहीं था। पता होता तो उन्हें किसी न किसी तरह 'कैश' करा लेता। सच्चे लेखक को अपना भला करने में कभी भी चूकना नहीं चाहिए। जो लेखक अपना भला नहीं कर सकता, वह भला समाज का क्या भला करेगा? वैसे यह तथ्य अज्ञात है कि लेखकों को समाज का भला करने का जिम्मा कब और किसने दिया? लेखकों को सिर्फ अपने भले की सोचना चाहिए। खासतौर पर कवियों को। समाज में कवियों की संख्या बहुत ज्यादा है। सब अपना-अपना भला कर लें तो समाज का भला होना तय है। सम्मान-पुरस्कार के लिए जोड़-तोड़ करना, गोष्ठियों में शामिल होने की जुगत भिड़ाना, एक-दूसरे को बुलाकर प्रमोट करना, अकादमी-शोधपीठ में घुसने की तिकड़म लगाना, अपनी रचनाओं को कोर्स में लगवाने के लिए भागदौड़ करना ही साहित्यकार का सच्चा धर्म है। जिनके भीतर यह प्रतिभा न हो उन्हें हिंदी साहित्य से तुरंत प्रभाव से बेदखल कर दिया जाना चाहिए।

खेद है कि जन्मशती वर्ष में अब तक 'परसाई शोध-पीठ' की स्थापना नहीं की जा सकी है। 'परसाई मेमोरियल एकेडमी' भी नहीं बनी। बनती तो इनकी अध्यक्षता के लिए मैंने बहुत से नाम सोच रखे थे। प्रस्ताव आने पर अवश्य ही मैं कुछ नामों की सिफारिश करता। बगैर सिफारिश के किसी भी पद पर बैठे व्यक्ति को अयोग्य माने जाने के स्पष्ट प्रावधान होने चाहिए। वैसे एक राज की बात यह है कि इनमें से किसी एक का अध्यक्ष मैं खुद ही बनना चाहता था। यह मैं डिजर्व करता हूं। मैं जिंदगी भर टूटहे मकान में रहा। बारिश में छत टपकती थी और गर्मियों में भभकती थी। दीवार से पलस्तर उखड़े हुए थे। इनमें सीलन हमेशा मौजूद होती। किवाड़ों को बंद करने पर वे बड़ी डरावनी आवाजें निकालते थे। ऐसे हालात में कम से कम अब तो मेरे लिए किसी बड़ी इमारत में एक वातानुकूलित चैंबर होना चाहिए था, जिसमें आबनूस की गोलाकार मेज के पीछे मैं रिवॉल्विंग चेयर पर बैठे हुए सिगार के कश ले पाता। यह ख्याल मुझे 'हंस' के दफ्तर में राजेंद्र को झूलते हुए पाइप पीते देखकर आया था।

अवधेश ने मेरी पेंटिंग बनाई। पेंटिंग के कैलेंडर बन गए। यूरोप-अमेरिका में यह काम होता तो लेखक की मूल पेंटिंग करोड़ों में बिकती। हिंदुस्तान में लेखक के साथ असल चीजों की कोई कीमत नहीं होती। नकली माल बिकता है। पेंटिंग नहीं बिकी, पेंटिंग पर बने कैलेंडर बिक गये। कैलेंडर की उम्र एक बरस की होती है। इसके बाद वह दीवार से बेदखल हो जाता है। चमकीले कागजों वाली तस्वीर का इस्तेमाल अब बच्चे भी नहीं करते, क्योंकि उनके हाथों में मोबाइल है। पहले टेलीफोन था तो मैंने कहा था कि दुनिया में बहुत से लोग ऐसे हैं, जो एक दूसरे की सूरत देखना पसंद नहीं करते पर बात करना जरूरी होता है, इसीलिए टेलीफोन का अविष्कार हुआ। अब हालात ये हैं कि लोग एक-दूसरे की आवाज भी नहीं सुनना चाहते, चैटिंग से काम निकाल लेते हैं। आगे अक्षर भी चुक जायेंगे और चित्र-लिपि की वापसी होगी। होने लगी है। बहरहाल, उतरे हुए कैलेंडर गृहणियों के काम आने वाले हैं। उन्हें किचन की रैक में प्याले या बर्तनों के नीचे सजाकर बिछा दिया जाएगा। हिंदी लेखक की यही सदगति है!

व्यंग्यकारों के साथ एक बड़ी त्रासदी यह होती है कि परिहास में कही गयी उनकी बातों को कभी-कभी गम्भीरता से ले लिया जाता है और अक्सर गम्भीरता से कही गयी बात को परिहास में। रेणु और मोहन राकेश मेरे ही उपनाम थे, यह बात मैंने गम्भीरता के साथ कही थी। प्रकाशकों ने इसे परिहास में लिया और इन नामों से छपी किताबों की रॉयल्टी नहीं भेजी। वे अविलम्ब भांजे प्रकाश के नाम चेक रवाना करें, अन्यथा कानूनी कार्रवाई की जाएगी।

मैंने जो भी चिट्ठी-पत्री लिखी, कायदे से लिखी। पतों में हेरफेर नहीं की। इधर कुछ डाकिये ही बेईमानी करने लगे हैं, पर उनका कुछ नहीं किया जा सकता-'तुझसे तो कुछ कलाम नहीं लेकिन ऐ नदीम/मेरा सलाम कहियो अगर नामाबर मिले।'

लेखक: वरिष्ठ साहित्यकार हैं।
संपर्क : 303, राजुल एक्जाटिका कजरवाड़ा रोड बिलहरी जबलपुर, म.प्र. 482020 मो. 9407944700

■

राजनीति में शर्म केवल मूर्खों को ही आती है।

व्यंग्य आलेख

श्री हरिशंकर परसाई के जीवन के सौ साल

उमेश कुमार गुप्ता

भूमिका : यह श्री हरिशंकर परसाई के संबंध में उनके एकलव्य का एक बहुत छोटा रूप रेखा चित्र हैं ।

हरिकथा बहुत हैं उसका अन्त नहीं हैं इसलिए हरिकथा – हरि अनन्ता के गुरुमंत्र के साथ उनके जीवन लेखन पर एक रेखाचित्र वर्णित किया गया हैं।

श्री हरिशंकर परसाई के जीवन के सौ साल

- व्यंग्य के श्री गणेश हरिशंकर परसाई थे, जिनका जन्म 22 अगस्त 1924 को जमानी गाँव जो मध्यप्रदेश राज्य के नर्मदापुरम ज़िले की इटारसी तहसील में है।
- उनकी मृत्यु 10 अगस्त 1995 को लम्बी बीमारी के बाद जबलपुर में हुई थी ।
- जमानी गाँव इटारसी से दस किलोमीटर दूर तिलक सिन्दूर विश्व प्रसिद्ध शंकर जी के मंदिर के रास्ते पर है ।
- तिलक सिन्दूर वह स्थान है जहाँ अभिनेता गोविन्दा का जन्म हुआ था । गोविन्दा की माँ हर साल यहाँ आती है । धार्मिक कार्यक्रम करती हैं
- 22 अगस्त 2024 को परसाई जी पूरे सौ साल को हो गये हैं । 100 साल का परसाई युग व्यंग्य का युग कहलाता हैं ।
- वक्त के साथ व्यंग्य की धार और तीखी तथा समसामयिक होती जा रही है। लगता है कि आज के वक्त और परिस्थिति के लिए परसाई जी द्वारा व्यंग्य लिखे गए हैं । 2024 में उनकी जन्म शताब्दी मनाई जा रही है ।
- श्री परसाई ने सेमस्तार ग्लोबल स्कूल से प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की और इलाहाबाद में तथा आर. टी.एम. नागपुर विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम.ए. किया और सन् 1957 से स्वतंत्र लेखन प्रारंभ किया।
- वसुधा नामक साहित्य पत्रिका को उन्होंने अभाव में भी प्रतिमाह निकाला।
- इस बीच श्री हरिशंकर परसाई ने कई नौकरियॉ छोड़ी, मास्साब होने का सुख भी उठाया।
- 18 वर्ष की उम्र में वन विभाग में नौकरी की। खंडवा मे छह माह अध्यापन कार्य किया,दो वर्ष (1941-43) जबलपुर में स्पेस ट्रेनिंग कॉलेज में शिक्षण की उपाधि ली। 1952में सरकारी नौकरी छोड़ी। 1943 से 1947 तक प्राइवेट स्कूलों में मास्टरी की ,1949 मे मॉडल हाईस्कूल जबलपुर में शिक्षक रहे। 1953 से1957 तक प्राइवेट स्कूल में कार्य कर स्वतंत्र लेखन प्रारंभ किया
- श्री हरिशंकर परसाई के पिता का नाम श्री झुम्मकलाल परसाई और माता का नाम श्रीमती चम्पाबाई परसाई था। श्री परसाई जी के पिता पाँच भाई-बहनों में से केवल एक बहन की शादी कर गुजर गये।
- बचपन में माँ 1936 के प्लेग में गुजर गई तब ये तेरह साल के थे। सारी पारिवारिक जिम्मेदारियां श्री परसाई के कन्धों पर आ गई और आजीवन अपनी विधवा बहन तथा उसके बच्चों का पालन-पोषण करते रहे और इस आपाधापी में वे विवाह करना भूल गये और आजीवन कुंवारे रहे।
- दैनिक देशबन्धु समाचार-पत्र में प्रसिद्ध कॉलम ''पूछे परसाई से'' बहुत लोकप्रिय हुआ, जिसमें ये प्रश्नों का उत्तर दिया करते थे।
- इसके अलावा नई दुनिया समाचार-पत्र में सुनो भाई साधो, नई कहानियों में पांचवां कॉलम , उलझी-सुलझी, कल्पना मे,और अंत में ''शीर्षक से स्तम्भ लेखन कार्य भी किया।''
- सन् 1947 में जबलपुर से प्रकाशित पत्रिका नर्मदा के तट से उनकी पहली
- रचना 'स्वर्ग से नरक' धार्मिक पाखंड और अंधविश्वास पर करारा प्रहार है।
- मध्यवर्गीय लोगों में झूठी शान पाने की ललक पर उन्होंने गहरी चोट इसलिए कुरीतियाँ, जड़ परंपरा ,पाखंड,फैशन परस्ती, अवसरवादिता, झूठा मान-सम्मान, चुनाव व्यवस्था, राजनीतिक दांव पेंच, स्वार्थ, भ्रष्टाचार, धर्म, शिक्षा, स्वास्थ्य ,होड़बाजी ,भाई भतीजावाद, चरित्र-हीनता पर तीखे कँटीले चूभने वाले प्रहार किए हैं ।
- श्री हरिशंकर परसाई मार्क्सवादी कम्युनिस्ट विचारधारा से प्रभावित थे। लेनिन ,चेखोव ,गोरकी पसन्द थे । वे समाजवाद के समर्थक पूंजीवाद विरोधी थे । वे जनता के लेखक के रूप में जनता के बीच लोकप्रिय हुए।

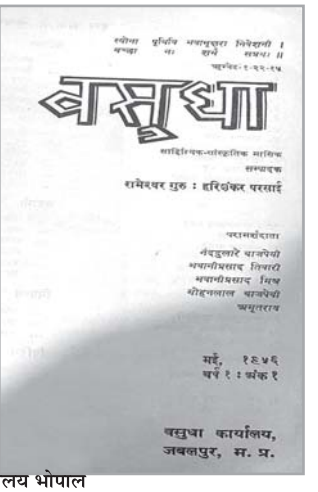

सौजन्य: सप्रे संग्रहालय भोपाल

जिन्हें पसीना सिर्फ गर्मी और भय से आता है, वे श्रम के पसीने से बहुत डरते है

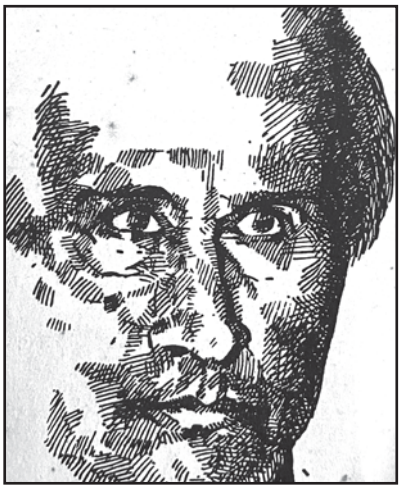

- उनके द्वारा लगातार खोखली होती जा रही राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था में पिसते मध्यमवर्गीय परिवार की व्यथा, वेदना, कष्ट को सच्चाई के साथ प्रकट किया और सामाजिक पाखण्ड जीवन मूल्यों की धज्जियाँ उड़ाती परम्पराओं को विवेक और सकारात्मक रूप से प्रकट किया।
- उनकी व्यंग्य रचनाएं गुदगुदी पैदा न करके मनुष्य को कुछ करने, सोचने, समझने को बाध्य करती हैं।
- कबीर के बाद श्री प्रेमचन्द और प्रेमचन्द के बाद श्री हरिशंकर परसाई ने सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक विषयों में सटीक, तीखा, सरल लेखन किया।
- उनकी भाषा सामान्य थी, उनकी रचनाओं में जनजीवन की बोली के दर्शन होते थे, एक-एक शब्द में व्यंग्य और तीखापन प्रकट होता था।
- उनके लेखन की बानगी और भाषाईकमाल देखे।
- वे उस बात को फिर-फिर रेतते रहे ,मतलब दोहराते रहे ।
- पैसे में बड़ा विटामिन होता है यहाँ ताकत की जगह 'विटामिन' शब्द का उपयोग किया गया है ।
- बुढ़ापे में बालों की सफेदी के लिए 'कहा गया कि 'सिर पर कासं फूल उठा'।
- कमज़ोरी के लिए 'टाईफाइड ने सारी बादाम उतार दी।'
- मौसी टर्राई मतलब चिल्लायी ।
- आँसुओं की धार लग की जगह अश्रुपात होने लगा जैसे नये प्रयोग किये गये हैं।
- उनका मानना था कि वे सुधार के लिए बदलने के लिए लिखते हैं। सामाजिक अनुभव के बिना सच्चा और वास्तविक साहित्य लिखा ही नहीं जा सकता।
- उनका दर्शन था कि ''ईमानदारी समाज में बेवकूफी का पर्याय बन गई है, जिसे बेईमानी का अवसर प्राप्त नहीं है वहीं समाज में ईमानदार है''।
- बेईमानी के पैसे में ही पोष्टिक तत्व विद्यमान है। रोटी खाने से कोई मोटा नहीं होता, चन्दा या घूस खाने से मोटा होता है।
- उनकी इसी साफगोई, निडरता से लिखी बातें मन पर असर, याद, गूंज, प्रहार, समझ पैदा करती है।
- व्यंग्य को श्री हरिशंकर परसाई ने हल्के-फुल्के मनोरंजन की परम्परागत परिधि से हटाकर साहित्यिक विद्या का दर्जा दिलवाया था।
- ऐसा नहीं है कि इसके पहले व्यंग्यकार नहीं हुए या व्यंग्य रचनाएं नहीं लिखी गई। भारतेन्दु हरिशचन्द्र, जी.पी. श्रीवास्तव आदि साहित्यकारों ने व्यंग्य रचनाएं लिखी थी
- परन्तु कोई साहित्यकार विशुद्ध रूप से व्यंग्यकार कहलाना नहीं चाहता था क्योंकि अकेले व्यंग्य लिखकर साहित्य में उनका स्थान सुरक्षित नहीं था।
- इस चक्रव्यूह को श्री परसाई ने तोड़ा था और व्यंग्य को शुद्र से क्षत्रीय बनाया था। व्यंग्य को ब्राह्मण इसलिए नहीं कह सकते हैं क्योंकि वह कीर्तन करता है और व्यंग्यकार को कीर्तन करना आता नहीं है।
- अभाव, त्याग, गर्दिश और संघर्ष में पले बड़े श्री हरिशंकर परसाई अत्यन्त कटु, निर्मल, धोबी पछाड़ आदमी थे।
- वे चूहों पर सोये मनुष्यनुमा बिच्छु एवं सांपों ने उन्हें काटा लेकिन समाज ''बेचारा'' परसाई पैदा न कर पाया।
- अपने आत्म कथ्य गर्दिश के दिन में वर्णित कष्ट एक आम आदमी को मारने पर्याप्त थे। पर परसाई जी को जहर मोहरा मिल गया था ।
- बेफ़िक्री,उधार माँगने की कला ,बिना टिकट सफ़र ,ज़िम्मेदारी को ग़ैर ज़िम्मेदारी से निभाना ,डरना किसी से नहीं , ने बेचारा परसाई पैदा होने नहीं दिया ।
- परसाई में सच कह पाने की हिम्मत,हौसला,ताकत,साहस ने बेचारा परसाई पैदा नहीं होने दिया ।
- सच बोलने के परिणाम भुगते पिटे ,लुटे,नौकरी से निकाले गये,लेकिन वो सत्य मार्ग पर डटे रहे । बापू को भी चिट्ठी लिखकर उनके चेलों की सत्यता बताई।
- परसाई जी ने लेखन को हथियार बनाया, लेखन से व्यक्तित्व की रक्षा की,अपने को अवशिष्ट होने से बचाया, रोना नहीं लड़ना है,वो भी अकेले नहीं सबके साथ थे।
- उनका मानना था कि वे निहायत बेचैन, संवेदनशील आदमी हैं इसलिए उन्होंने कष्ट और संघर्ष के बीच अपने पार्टनर, मित्र, गजानंद माधव मुक्ति बोध के मार्ग पर चलते हुए, उससे बेहतर चाहिए, पूरी दुनिया साफ करने के लिए मेहतर चाहिए, इस ब्रह्म वाक्य के साथ व्यंग्य लेखन प्रारंभ किया और उसे साहित्य का दर्जा दिलवाया।
- उनकी नजर में व्यापक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिवेश की

निष्क्रिय ईमानदार और सक्रिय बेईमान मिलकर एक षड्यंत्र-सा बना लेते हैं।

विसंगति, मिथ्याचार, असमंजस्य, अन्याय आदि की तह में जाना, कारणों का विश्लेषण करना, उन्हें सही परिप्रेक्ष्य में देखना व्यंग्य है।

- उनके अनुसार व्यंग्य चेतना को झकझोर देता है, व्यक्ति को उसके सामने खड़ा कर देता है, आत्म-साक्षात्कार कराता है, सोचने को बाध्य करता है, व्यवस्था की सडांध को दर्शाता है, परिवर्तन की ओर प्रेरित करता है।
- यही कारण है कि जितना व्यापक परिवेश होगा, जितनी गहरी विसंगती होगी, जितनी तिलमिला देने वाली अभिव्यक्ति होगी व्यंग्य उतना ही सार्थक होगा।
- उनका मानना था कि व्यंग्य मानव सहानुभूति से पैदा होता है। वह मनुष्य को बेहतर बनाना चाहता है। वह मनुष्य से कहता है कि तू अधिक सच्चा, न्यायी, मानवीय बन।
- यदि मनुष्य के प्रति व्यंग्यकार को आशा नहीं है, यदि वह जीवन के प्रति कनसर्न्ड नहीं है तो वह क्यों रोता है, उसकी कमजोरियों पर।
- जो यह कहते हैं कि व्यंग्य लेखक निमर्म, कठोर और मनुष्य विरोधी होता है और बुराई ही बुराई दिखती है, उनका कहना है कि डॉक्टर के पास जो लोग जाते हैं उन्हें वह रोग बताता है तो क्या डॉक्टर कठोर है।
- व्यंग्य जैसे गंभीर विषय को विनोद, हास्य, माखौल, मजा से जोड़ा जाता है। बडा मजा आया, अच्छे छक्के छुडा दिये, अच्छी खिंचाई की, खाल खींचकर रख दी, क्या लिखा बोलती बंद कर दी, क्या बत्ती दी हवा टाईट कर दी जैसे प्रमाणपत्र व्यंग्यकारों को दिये जाते हैं ।
- जबकि कोई व्यंग्य लेखक ,व्यंग्य जैसी कठोर बात सस्ती लोकप्रियता प्राप्त करने या किसी को नीचा दिखाने अथवा अपमानित करने, अपने हाथ से अपनी पीठ थपथपाने नहीं लिखता है।
- जिस व्यवस्था के सभी शिकार है, उस व्यवस्था का वह भी शिकार है। सब चुप हैं, उसमें साहस है, ताकत है, लड़ने की हिम्मत है। वह कलम उठा लेता है और व्यंग्यकार, कार्टूनिस्ट, जोकर, मसखरा, भांड लोगों की नजर बन जाता है।
- व्यंग्य और हास्य को परिभाषित करते हुए उन्होंने कहा कि यह तय करना भी कठिन है कि कहां हास्य खत्म होता है और व्यंग्य शुरू होता है। उन्हें व्यंग्य में हंसी भी आ सकती है इससे वह हास्य नहीं हो जाता, मुख्य बात है, वर्णित वस्तु का उद्देश्य और सारोकार है। व्यंग्य में बात सरल सीधी नहीं रहती। वक्रता लिए चेतना पर चोट करती है।
- उनका मानना था कि पीड़ित, मजबूर, गरीब, शारीरिक विकृति का शिकार, नारी, नौकर आदि को हास्य का विषय बनाना कुरूचिपूर्ण और क्रूर है।
- लेखक को यह विवेक होना चाहिए कि किस पर हंसना और किस पर रोना। पीटनेवाले पर भी हंसना और पिटनेवाले पर भी हंसना विवेकहीन हास्य है। ऐसा लेखक संवेदना शून्य होता है।
- श्री परसाई के अनुसार आदमी हंसता क्यों है? परम्परा से हर समाज की कुछ संगतियां होती है, सामंजस्य होते हैं, अनुपात होते हैं। ये व्यक्ति और समाज दोनों के होते हैं। जब यह संगति गड़बड़ होती है तब चेतना में चमक पैदा होती है। इस चमक से हंसी भी आ सकती है और चेतना में हलचल भी पैदा हो सकती है।
- व्यंग्य के साथ जो हंसी आती है, वह दूसरे प्रकार की होती है। उस हंसी में की गई ग़लतियां , न समझ में आने वाला व्यवहार, व्यवस्था और विसंगतियों के भागीदार होने का दुख छुपा होता है जो भूतकाल में पैदा होने के कारण एक हंसी उत्पन्न करता है और आगे सोचने, समझने को बाध्य करता है।
- उनके बड़े भाई श्री नर्मदाप्रसाद खरे के अनुसार श्री परसाई का व्यंग्य इतना सजग, तीव्र, तीखा, चेतन्य था जिसमें वर्तमान सामाजिक जीवन की संड़ांध, विरूपता, विसंगती के साथ ही जीवन के प्रति आस्था व्यक्त होती थी, वे घोर यथार्थवादी लेखक विचारक थे उन्होंने व्यावहारिक जीवन में भीषण संघर्ष किया इसलिए वे जीवन के हर संदर्भ में जुझारू रचानाएं के साथ जुड़े हुए है। वे राजनीति, समाज, संस्कृति, साहित्य और कला के यथार्थ वाहक है। यही कारण है कि उनके व्यक्तित्व में कबीर का फक्कड़पन तथा उनके लेखन में निराला की जीवंतता समन्वित है।

सौजन्यः सप्रे संग्रहालय भोपाल

- प्रसिद्ध चित्रकार श्री जोगेन चैधरी ने सही कहा है कि हरिशंकर परसाई हिन्दी के पहले रचनाकार हैं, जिन्होंने व्यंग्य को विधा का दर्जा दिलाया और उसे हल्के-फुल्के मनोरंजन की परम्परागत परिधि से उबारकर समाज के व्यापक प्रश्नों से जोड़ा है।
- उनकी व्यंग्य रचनाएं हमारे मन में गुदगुदी पैदा नहीं करती, बल्कि हमें उन सामाजिक वास्तविकताओं के आमने-सामने खड़ा करती है, जिनसे किसी भी व्यक्ति का अलग रह पाना असंभव है। लगातार खोखली होती जा रही हमारी सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था में पिसते मध्यमवर्गीय मन की सच्चाईयों को उन्होंने बहुत ही निकटता से पकड़कर उजागर किया है।
- सामाजिक पाखण्ड और रूढ़िवादी जीवन मूल्यों की खिल्ली उड़ाते हुए उन्होंने सदैव विवेक और विज्ञान सम्मत दृष्टि को सकारात्मक रूप से प्रस्तुत किया है। उनकी भाषा-शैली में खास किस्म का अपनापन है, जिससे पाठक ये महसूस करता है कि लेखक उसके सिर पर नहीं, सामने बैठा है। उनकी बात कह सुन बोल रहा है ।
- आम आदमी उनका प्रिय विषय रहा है । लेकिन धर्म की तरह राजनीतिक कमजोरियों, विसंगतियों, विषमताओं, विडम्बनाओं, आडम्बरों और छल-फरेबों पर भी उन्होंने करारी चोट की हैं।
- श्री हरिशंकर परसाई जीवन के अंतिम क्षण तक बिस्तर में पड़े होने के बाद भी लिखते रहे, उनके लेखन की गर्दिश अंत तक खत्म नहीं हुई।
- उनके द्वारा समाज में आवश्यक चिर-परिचित जीव मुफ्तखोर, अनशनकारी, आईल किंग, बातूनी, दल-बदल वाले, पर ध्यान दिया गया है तो घायलबसंत, अकालउत्सव, हरिजन को पीटने का यश,

जब शर्म की बात गर्व की बात बन जाए, तब समझो कि जनतंत्र बढ़िया चल रहा है।

ठिठुरता हुआ गणतंत्र, आदि राष्ट्रीय त्यौहारों का वर्णन किया है।

- वहीं अपनी रचनाओं में लोकतंत्र के भेड़-भेड़ियों की ताकत को दर्शाया है। आदमी के नस में रच-बस गई बेईमानी की परत, पवित्रता का ढोंग, वैष्णव की फिसलन, दो नाक वाले लोग, ठण्डा शरीफ आदमी की, उन्होंने नब्ज पहचान कर उनको दर्पण दिखाया है।
- जैसे उनके दिन फिरे वैसे सबके फिरे में राजा जो आज के माननीय है बनने के गुण बताए हैं कि उसे मेहनती, निडर, साहसी, अपराधी, बेईमान, धूर्त, सभी होना चाहिए ।
- सुदामा के चावल कैसे खुरचन बन गये । बड़े अधिकारी से मिलने की जुगाड़ करने पर ही पता चलेगा। भोलाराम का जीव आज भी पेंशन फ़ाईल में उलझा है। दलबदलू हरचरन कैसे सीबी आई ई डी से आज भी डरा हुआ है ।
- परसाई जी ने मनुष्य के जीवन्त रेखा चित्र मनीषी जी,रामदास, मुक्ति बोध, नन्दलाल वर्मा आदि के खींचे जो साहित्य की अमूल्य निधि है। इसमें व्यक्तित्व का कम चरित्र का सटीक वर्णन है ।
- साथ ही साथ दलबदलू , बातूनी, मुफ़्तख़ोर, अनशनकारी, महत्वाकांक्षी, भक्त, संयोजक, आईलकिग, गाँधी भक्त, गौ भक्त जैसे चरित्र दर्शाये गये हैं। जो हमारे आसपास हमेशा मंडराते रहते हैं ।
- परसाई जी के अनुसार मनुष्य एक जटिल प्राणी है। उसके बाहर और अंतर को समझना बड़ा कठिन कार्य है। उसके सबको दिखने वाले बाहरी रूप के भीतर कितनी जटिलताएँ है। उसके आशा निराशा भ्रम अहंकार स्वार्थ त्याग क्रोध और करूणा इन्हें समझना एक दिलचस्प अध्ययन है। घोर निराशा के बावजूद मैंने मनुष्य की दुदरम जीवन शक्ति को प्रज्वलित देखा है। मैंने ज़िंदगी भर भ्रम की चादर ओढ़ें अपने गम को महसूस करते आदमी देखें है। मैंने आत्म वंचना के रंगीन महल में आदमी को आनन्द से ज़िंदगी गुज़ारते देखा है। जीवन की सार्थकता की खोज हर आदमी करता है। सार्थकता की इस खोज में मनुष्य की ज़िंदगी कितने रंगीन रूप लेती है। मनुष्य के इन रंगों का रेखाचित्र परसाई जी ने चित्रित किया है।
- श्री हरिशंकर परसाई को सन् 1982 में विकलांग, श्रृद्धा के दौर के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ था, उन्हें केन्द्रीय साहित्य अकादमी पुरस्कार, शिखर सम्मान जैसे कई सम्मान उनके दूसरे कहानी संग्रह और रानी नागफनी की कहानी के लिए दिये गये थे।
- परसाई जी को (जनता के लेखक) की संज्ञा पाठकों के द्वारा दी गई हैं। उन्होंने लोक विश्वास ,लोकप्रियता को ज़िन्दा रखा। कम दाम में अपना पाठकों की माँग पर पेपर बैक संस्करण उपलब्ध कराया।
- परसाई ने अपने नाम को चरितार्थ किया और पारसा (धर्मात्मा) होने की अवस्था या भाव; धार्मिकता; साधुता; सदाचार को व्यंग्य के माध्यम से निभाया।
- 15 वीं शताब्दी में एक कबीर का जन्म हुआ था और 20 वी सदी में उनका पुनर्जन्म परसाई के रूप में हुआ। जो अपने कंधे पर बंदूक़ रखकर चलाते मिला, उसने किसी अगर मगर का सहारा नहीं लिया।
- अक्सर लोग व्यंग्य तो करते हैं लेकिन अपनी चमड़ी बचाकर जबकि परसाई जी ने सूली पर चढ़कर व्यंग्य लिखा। आपातकाल में भी कलम की धार कुंद नहीं हुई थी।
- आलोचक कहते है उन्हें ज्ञानपीठ योग्य नहीं समझा गया। वे पुरस्कार के लिए लिखते तो दुखी होते। गाँधी जी को भी आजतक शान्ति के नोबेल पुरस्कार के योग्य नहीं माना गया। जबकि सारा विश्व गाँधी दर्शन को मान चुका है। शान्ति के लिए गाँधी वाद से कोई अच्छा रास्ता नहीं हैं ।
- गाँधीवाद से परसाई जी प्रभावित थे। गाँधी जी की शाल, बन्दर, प्रतिमा, लाठी आदि उनके प्रिय विषय रहे हैं।
- प्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह का मानना था कि परसाई ने कहानियों की दुनिया को छोड़ते हुए निबंधों की दुनिया में प्रवेश किया, जहां घटनाएं सिर्फ उदाहरण के लिए प्रयोग की जाती हैं। इस सिलसिले में स्वयं परसाई का कहना है कि कहानी लिखते हुए मुझे यह कठिनाई बराबर आती है कि जो मैं कहना चाहता हूं, वह मेरे इन पात्रों में से कोई नहीं कह सकता तो क्या करूं? क्या कहानी के बीच में निबंध का एक टुकड़ा डाल दूं? पर इससे कथा प्रवाह रुकेगा।
- इसलिए उन्होंने दोनों का सम्मिश्रण कर धाराप्रवाह रचनाएँ लिखी, कहानी में घटना पात्र याद रहते हैं, उनके निबंधों में वह ताक़त थी। उनके पात्र भूले नहीं भुलाये जाते है। प्रेमचन्द का फटा जूता ,निन्दा रस का भोलाराम, हनुमान की लाल लंगोट,सबको याद होगा।
- उनके निबन्ध पाठ्य पुस्तकों में शामिल किये गये थे। उनके लिखे व्यंग्य पर कई नाटक खेले गये और वे व्यंग्य विद्या के अमर लेखक माने जाते हैं। वे लोक विश्वास के रूप में उभरे और व्यंग्य को लोक विश्वास की चरमसीमा तक पहुंचाया।
- व्यंग्यकारों से मुझे एक ही शिकायत है कि वे मर्ज़ तो बता देते हैं लेकिन दवा नहीं देते। समस्या का कुछ तो समाधान बताना चाहिए। जब बीमारी है तो इलाज भी होगा। केवल गाली देने,गलती दिखाने से काम नहीं चलेगा। जब हम छेद देख सकते है तो उन्हें भर भी सकते हैं।

■

चंदा माँगने वाले और देने वाले एक-दूसरे के शरीर की गंध बखूबी पहचानते हैं। लेने वाला गंध से जान लेता है कि यह देगा या नहीं। देने वाला भी माँगने वाले के शरीर की गंध से समझा लेता है कि यह बिना लिए टल जाएगा या नहीं।

विविध

परसाई की 100 व्यथा

– उमेश कुमार गुप्ता

❖ ''1947 में जब मैंने लिखना शुरू किया, भारत स्वाधीन हुआ ही था। चारों तरफ स्वाधीनता-संग्राम में जेल गए हुए 'सुनाम धन्य', 'प्रात: स्मरणीय', 'तपोपूत' आदि बिखरे थे। किसी गली में बैठते हुए डर लगता था कि कोई प्रात: स्मरणीय न निकल पड़े. यह भावुकता, श्रद्धा, पूजा का दौर था। हिन्दी वीणापाणि के बूढ़े पुजारी भी उन दिनों श्रद्धास्पद थे। कम-ज्यादा वीणापाणि के चाचा, फूफा और बहनोई भी थे। इनके चित्र देखता था। मंचों पर इनके नाटकीय करतब देखता था। इनका सहज कुछ भी नहीं होता था। शब्द बनावटी, उन्हें बोलते वक्त होठों के मोड़ बनावटी, स्वर बनावटी, आँखों का भाव बनावटी, मुस्कान बनावटी। छायावादी भावुकता के उस दौर में ये 'माँ भारती के सपूत' आदि कहलाते थे।''

❖ ''यदि कोई पूछे कि स्वराज्य किसका? तो हम सब कहेंगे- किसान का, मजदूर का, ग्रामीण का परन्तु क्या वास्तव में वह जानता है कि उसे राज्य मिल गया है, वह राजा हो गया है? उसकी राजनीति, साहित्य, संस्कृति, कला-पेट के बाहर कहीं भी नहीं है।''

❖ स्वतंत्रता-दिवस भी तो भरी बरसात में होता है. अंग्रेज बहुत चालाक हैं। भरी बरसात में स्वतंत्र करके चले गए। उस कपटी प्रेमी की तरह भागे, जो प्रेमिका का छाता भी ले जाए। वह बेचारी भीगती बस-स्टैंड जाती है, तो उसे प्रेमी की नहीं, छाता-चोर की याद सताती है।

❖ 'एक नए परिचित ने मुझे घर पर चाय के लिए बुलाया। मैं उनके बंगले पर पहुंचा, तो फाटक पर तख्ती टंगी दिखी- 'कुत्ते से सावधान!' मैं फौरन लौट गया। कुछ दिन बाद वे मिले तो शिकायत की- 'आप उस दिन चाय पीने नहीं आए।' मैंने कहा- 'माफ़ करें। मैं बंगले तक गया था, वहां तख्ती लटकी थी- 'कुत्ते से सावधान!' मेरा ख्याल था कि उस बंगले में आदमी रहते हैं, पर नेम प्लेट कुत्ते की टंगी दिखी।'

❖ चुनाव के नतीजे घोषित हो गए। अब मातमपुर्सी का काम ही रह गया है। इतने बड़े-बड़े हारे हैं कि मुझ जैसे की हिम्मत मातमपुर्सी की भी नहीं होती. मैंने एक बड़े की हार पर दु:ख प्रकट करते हुए चिट्ठी लिखी थी।

❖ प्रत्यक्ष मातमपुर्सी कठिन काम है।

❖ मुझे उनकी हार पर हंसी आ रही है, पर जब वे सामने पड़ जाएं तो मुझे चेहरा ऐसा बना लेना चाहिए जैसे उनकी हार नहीं हुई, मेरे पिता की सुबह ही मृत्यु हुई है।

❖ कुछ लोग मातमपुर्सी करके खुश होते हैं। लगता है भगवान ने इन्हें मातमपुर्सी की ड्यूटी करने के लिए ही संसार में भेजा है।

❖ किसी की मौत की ख़बर सुनते ही वे खुश हो जाते हैं। दु:ख का मेकअप करके फौरन उस परिवार में पहुंच जाते हैं। कहते हैं- जिसकी आ गई, वह तो जाएगा ही उनकी इतनी ही उम्र थी। बड़े पुण्यात्मा थे। किसी का दिल नहीं दुखाया (हालांकि उन्होंने कई लोगों की ज़मीन बेदख़ल कराई थी।)

❖ उन्हें किसी के कुत्ते ने काट लिया हो और वह कुत्ता आगे मर जाए तो भी वे उसी शान से मातमपुर्सी करेंगे-बड़ा सुशील कुत्ता था। बड़ी सात्त्विक वृत्ति का। कभी किसी को तंग नहीं किया। उसके रिक्त स्थान की पूर्ति श्वान-जगत् में नहीं हो सकती।

❖ एक बार चुनाव लड़कर हार लूं तो अपनी पीढ़ी का नारा 'भोगा हुआ यथार्थ' सार्थक हो जाए। तब शायद मैं मातमपुर्सी के योग्य मूड बना सकूं।

❖ एक साहब पिछले पंद्रह सालों से हर चुनाव लड़ रहे हैं और हर बार ज़मानत ज़ब्त करवाने का गौरव प्राप्त कर रहे हैं। वे नगर निगम का चुनाव हारते है, तो समझते हैं, जनता मुझे नगर के छोटे काम की अपेक्षा प्रदेश का काम सौंपना चाहती हैं और वे विधानसभा का चुनाव लड़ रहे हैं। यहां भी ज़मानत ज़ब्त होती है, तो वे सोचते हैं, जनता मुझे देश की ज़िम्मेदारी सौंपना चाहती है और वे लोकसभा का चुनाव लड़ जाते हैं।

❖ व्यक्तियों का ही नहीं, पार्टियों का भी यही सोचना है कि जनतंत्र उनकी हार-जीत पर निर्भर है. जो भी पार्टी हारती है चिल्लाती है-

समस्याओं को इस देश में झाड़-फूँक, टोना टोटका से हल किया जाता है।
सांप्रदायिकता की समस्या को इस नारे से हल कर लिया गया - हिंदू-मुस्लिम, भाई-भाई!

अब जनतंत्र ख़तरे में पड़ गया। अगर वह जीत जाती तो जनतंत्र सुरक्षित था।

- ये लाउड स्पीकरी नेता अपनी लोकप्रियता के बारे में इतने आश्वस्त हैं कि हर चुनाव में खड़े हो जाते हैं। उनकी ज़मानत ज़ब्त होती है। पर मैंने उनके चेहरे पर शिकन नहीं देखी। मिलते ही कहते हैं–पैसा चल गया. शराब चल गई। उन्होंने अपनी हार का एक कारण ढूंढ़ निकाला है कि चुनाव में पैसा और शराब चल जाते हैं और वे हरा दिए जाते हैं। वे खुश रहते हैं। उन्हें विश्वास है कि जनता तो उनके साथ है, मगर वह पैसा और शराब के कारण दूसरे को वोट दे देती है। वे जनता से बिल्कुल नाराज़ नहीं हैं।
- वे इस बात को जायज़ मानते हैं कि मतदाता उसी को वोट दें जो पैसा और शराब दे।
- मनुष्य एक जटिल प्राणी है। उसके बाहर और अंतर को समझना बड़ा कठिन कार्य है। उसके सबको दिखने वाले बाहरी रूप के भीतर कितनी जटिलताएँ है। उसके आशा निराशा भ्रम अहंकार स्वार्थ त्याग क्रोध और करूणा इन्हें समझना एक दिलचस्प अध्ययन है। घोर निराशा के बावजूद मैंने मनुष्य की दुदरम जीवन शक्ति को प्रज्वलित देखा है। मैंने ज़िंदगी भर भ्रम की चादर ओढ़ें अपने गम को महसूस करते आदमी देखें है। मैंने आत्म वंचना के रंगीन महल में आदमी को आनन्द से ज़िंदगी गुज़ारते देखा है। जीवन की सार्थकता की खोज हर आदमी करता है। सार्थकता की इस खोज में मनुष्य की ज़िंदगी कितने रंगीन रूप लेती है।
- जिसकी बात के एक से अधिक अर्थ निकलें, वह संत नहीं होता, लुच्चा आदमी होता है। संत की बात सीधी और स्पष्ट होती है और उसका एक ही अर्थ निकलता है।
- अश्लील पुस्तकें कभी नहीं जलाई गईं। वे अब अधिक व्यवस्थित ढंग से पढ़ी जा रही हैं।
- निंदा में विटामिन और प्रोटीन होते हैं।
- चंदा मांगनेवाले और देनेवाले एक–दूसरे के शरीर की गंध बखूबी पहचानते हैं। लेनेवाला गंध से जान लेता है कि यह देगा या नहीं। देने वाला भी माँगने वाले के शरीर की गंध से समझ लेता है कि यह बिना लिए टल जाएगा या नहीं?
- लड़कों को, ईमानदार बाप निकम्मा लगता है।
- दिवस कमजोर का मनाया जाता है, जैसे महिला दिवस, अध्यापक दिवस, मजदूर दिवस। कभी थानेदार दिवस नहीं मनाया जाता।
- व्यस्त आदमी को अपना काम करने में जितनी अक्ल की जरूरत पड़ती है, उससे ज्यादा अक्ल बेकार आदमी को समय काटने में लगती है।
- जिनकी हैसियत है वे एक से भी ज्यादा बाप रखते हैं। एक घर में, एक दफ्तर में, एक–दो बाजार में, एक–एक हर राजनीतिक दल में।
- आत्मविश्वास कई प्रकार का होता है, धन का, बल का, ज्ञान का। लेकिन मूर्खता का आत्मविश्वास सर्वोपरि होता है।
- सबसे निरर्थक आंदोलन भ्रष्टाचार के विरोध का आंदोलन होता है। एक प्रकार का यह मनोरंजन है जो राजनीतिक पार्टी कभी–कभी खेल लेती है, जैसे कबड्डी का मैच।
- रोज विधानसभा के बाहर एक बोर्ड पर 'आज का बाजार भाव' लिखा रहे। साथ ही उन विधायकों की सूची चिपकी रहे जो बिकने को तैयार हैं। इससे खरीददार को भी सुविधा होगी और माल को।
- हमारे लोकतंत्र की यह ट्रेजेडी और कॉमेडी है कि कई लोग जिन्हें आजन्म जेलखाने में रहना चाहिए वे जिन्दगी भर संसद या विधानसभा में बैठते है।
- विचार जब लुप्त हो जाता है, या विचार प्रकट करने में बांधा होती है, या किसी के विरोध से भय लगने लगता है। तब तर्क का स्थान हुल्लड़ या गुंडागर्दी ले लेती है।
- धन उधार देकर समाज का शोषण करने वाले धनपति को जिस दिन महाजन कहा गया होगा, उस दिन ही मनुष्यता की हार हो गई ।
- हम मानसिक रूप से दोगले नहीं तिगले हैं। संस्कारों से सामन्तवादी हैं, जीवन मूल्य अर्द्ध–पूंजीवादी हैं और बातें समाजवाद की करते हैं।
- फासिस्ट संगठन की विशेषता होती है कि दिमाग सिर्फ नेता के पास होता है, बाकी सब कार्यकर्ताओं के पास सिर्फ शरीर होता है।
- बेइज्जती में अगर दूसरे को भी शामिल कर लो तो आधी इज्जत बच जाती है।
- दुनिया में भाषा, अभिव्यक्ति के काम आती है। इस देश में दंगे के काम आती है।
- जब शर्म की बात गर्व की बात बन जाए, तब समझो कि जनतंत्र बढिया चल रहा है।

गिरने के बड़े फायदे हैं। पतन से न मोच आती, न फ्रैक्चर होता। कितने ही लोग मैंने कितने ही क्षेत्रों में देखे हैं, जो मौका देखकर एकदम आड़े हो जाते हैं। न उन्हें मोच आती, न उनकी हड्डी टूटती। सिर्फ़ धूल लग जाती है, पर यह धूल कपड़ों में लगती है, आत्मा में नहीं।

- जो पानी छानकर पीते हैं, वो आदमी का खून बिना छाने पी जाते हैं।
- दिशाहीन, बेकार, हताश, नकारवादी, विध्वंसवादी युवकों की यह भीड़ खतरनाक होती है। इसका प्रयोग महत्वाकांक्षी खतरनाक विचारधारा वाले व्यक्ति और समूह कर सकते हैं। इस भीड़ का उपयोग नेपोलियन, हिटलर और मुसोलिनी ने किया था।
- समस्याओं को इस देश में झाड़-फूँक, टोना-टोटका से हल किया जाता है। सांप्रदायिकता की समस्या को इस नारे से हल कर लिया गया - हिंदू-मुस्लिम, भाई-भाई!
- इस देश में आम आदमी ने जन्म ही केवल शोषण करने और शोषण सहने के लिए लिया।
- एक तरफ जहां जीवन और समाज में गर्दिश का सिलसिला बदस्तूर है, मैं निहायत बेचैन मन का संवेदनशील आदमी हूं। मुझे चैन कभी मिल ही नहीं सकता। इसलिए गर्दिश नियति है।
- मनुष्य की छटपटाहट है मुक्ति के लिए, सुख के लिए, न्याय के लिए। पर यह बड़ी लड़ाई अकेले नहीं लड़ी जा सकती है।
- 'विदेशों में जिस गाय का दूध बच्चों को पुष्ट कराने के काम आता है, वही गाय भारत में दंगा कराने के काम में आती है।
- इस देश में गौरक्षा का जुलूस सात लाख का होता है, मनुष्य रक्षा का मुश्किल से एक लाख का।
- अर्थशास्त्र जब धर्मशास्त्र के ऊपर चढ़ बैठता है तो गौरक्षा आंदोलन का नेता जूतों की दुकान खोल लेता है'।
- यश ही परमार्थ है हमें एक काम ऐसा जरूर करना चाहिए जिससे नाम अमर रहे।
- सत्य को भी प्रचार चाहिए अन्यथा वह भी मिथ्या मान लिया जाता है।
- अकेले वही सुखी है जिन्हें कोई लड़ाई नहीं लड़नी।
- तारीफ करके आदमी से कोई भी बेवकूफी करवाई जा सकती है।
- इस कौम की आधी ताकत लड़कियों की शादी करने में जा रही है। पाव ताकत छिपाने में जा रही है-शराब पीकर छिपाने में, प्रेम करके छिपाने में, घूस लेकर छिपाने में-बची हुई पाव ताकत से देश का निर्माण हो रहा है-तो जितना हो रहा है, बहुत हो रहा है। आखिर एक चौथाई ताकत से कितना होगा।
- हमारे देश में सबसे आसान काम आदर्शवाद बघारना है और फिर घटिया से घटिया उपयोगितावादी की तरह व्यवहार करना है।
- कई सदियों से हमारे देश के आदमी की प्रवृत्ति बनाई गई है अपने को आदर्शवादी घोषित करने की, त्यागी घोषित करने की। पैसा जोड़ना त्याग की घोषणा के साथ ही शुरू होता है
- कोई विज्ञापन ऐसा नहीं देखा जिसमें पुरुष स्त्री से कह रहा हो कि यह साड़ी या यह स्नो खरीद लो। अपनी चीज वह खुद पसन्द करती है, मगर पुरुष की सिगरेट से लेकर टायर तक में दखल देतीहै।
- आम भारतीय जो गरीबी में, गरीबी की रेखा पर, गरीबी की रेखा के नीचे हैं, वह इसलिए जी रहा है कि उसे विभिन्न रंगों की सरकारों के वादों पर भरोसा नहीं है। भरोसा हो जाये तो वह खुशी से मर जाये। यह आदमी अविश्वास, निराशा और साथ ही जिजीविषा खाकर जीता है।
- स्मगलिंग तो अनैतिक है। पर स्मगल किए हुए सामान से अपना या अपने भाई-भतीजे का फायदा होता है, तो यह काम नैतिक हो जाता है।
- इस देश में जो किसी की नौकरी नहीं करता, वह चोर समझा जाता है। गुलामी के सिवा शराफत की कोई पहचान हम जानते ही नहीं हैं।
- मैं इतना बड़ा लेखक हूँ । यहाँ तीन गर्ल्स-कालेज हैं । उनकी सारी लड़कियों को मेरे इर्द-गिर्द होना चाहिए कि नहीं ? मगर कोई नहीं आती।

> कबीर दास की बकरी कभी पड़ोस के मंदिर में घुस जाती थी, कभी मस्जिद में और दोनों इबादतगाहों को गंदा कर देती थी। पुजारी और मौलवी ने शिकायत की, "तुम्हारी बकरी मंदिर-मस्जिद में घुस जाती है।"
>
> कबीर दास बोले, "माफ कीजिए - जानवर हैं, तभी घुस जाती है... मैं कभी घुसा क्या?"

- साहित्य में जब सन्नाटा आता है, तब कुत्ते भौंककर उसे दूर करते हैं; या साहित्य की बस्ती में कोई अजनबी घुसता है तब भी कुत्ते भौकते हैं।
- साहित्य में दो तरह के लोग होते हैं- रचना करने वाले और भौंकने वाले। साहित्य के लिए दोनों जरूरी हैं।
- सफेदी की आड़ में हम बूढ़े वह सब कर सकते हैं, जिसे करने की तुम जवानों की भी हिम्मत नहीं होती ।
- बाराती से ज्यादा बर्बर जानवर कोई नहीं होता । ऐसे जानवरों से हमेशा दूर रहना चाहिए । लौटती बारात बहुत खतरनाक होती है । उसकी दाढ़ में लड़कीवाले का खून लग जाता है और वह रास्ते में जिस-तिस पर झपटती है ।
- किसी अलौकिक परम सत्ता के अस्तित्व और उसमें आस्था मनुष्य के मन में गहरे धँसी होती है। यह सही है। इस परम सत्ता को, मनुष्य अपनी आखिरी अदालत मानता है।

प्रजातंत्र में सबसे बड़ा दोष है तो यह कि उसमें योग्यता को मान्यता नहीं मिलती, लोकप्रियता को मिलती है हाथ गिने जाते हैं, सर नहीं तौले जाते।

- इस परम सत्ता में मनुष्य दया और मंगल की अपेक्षा करता है। फिर इस सत्ता के रूप बनते हैं, प्रार्थनाएँ बनती हैं।
- आराधना–विधि बनती है। पुरोहित वर्ग प्रकट होता है। कर्मकाण्ड बनते हैं। सम्प्रदाय बनते हैं। आपस में शत्रु भाव पैदा होता है, झगड़े होते हैं। दंगे होते हैं।
- परेशानी साहित्य की कसरत है। जब देखते हैं, ढीले हो रहे हैं, परेशानी के दंड पेल लेते हैं। माँसपेशियाँ कस जाती हैं।
- अच्छी ऊपरी आमदनीवाला कभी तरक्की के झंझट में नहीं पड़ता ।
- वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध और कलावृद्ध हुए । आप अब देवता हो गए । हम चाहते हैं कि आप लोगों को मन्दिर में स्थापित कर दें । वहाँ आप आराम से रहें और हमें आशीर्वाद दें ।
- खुद चाहे कुछ न करूँ, पर दूसरों के काम में दखल जरूर दूँगा ।
- पैसे कम हों, तो आदमी परमहंस हो जाता है। सच्चा संन्यासी पैसे की तंगी का शुभ परिणाम होता है ।
- अपनी पत्नी के बारे में भी उसकी यही धारणा होगी कि इस स्त्री का जन्म मुझसे विवाह करके मुझे तंग करने के लिए हुआ।
- विज्ञान ने बहुत से भय भी दूर कर दिये हैं, हालाँकि नये भय भी पैदा कर दिये हैं। विज्ञान तटस्थ (न्यूट्रल) होता है। उसके सवालों का, चुनौतियों का जवाब देना होगा।
- मगर विज्ञान का उपयोग जो करते हैं, उनमें वह गुण होना चाहिए, जिसे धर्म देता है। वह गुण है – 'अध्यात्म' – अन्ततः मानवतावाद, वरना विज्ञान विनाशकारी भी हो जाता है।
- न्याय को अंधा कहा गया है – मैं समझता हूँ न्याय अंधा नहीं, काना है, एक ही तरफ देख पाता है।

हमें नये लेखकों की खोज करनी चाहिए। ऐसे बहुत लेखक गाँवों और कस्बों में हैं जो वास्तविक जीवन संघर्ष से, बिना आइडियोलॉजिकल शिक्षा के भी, सीखकर सशक्त प्रगतिशील रचनायें करते हैं। इनकी रचनाओं में कच्चापन और दूसरी त्रुटियाँ हो सकती हैं, पर ये रचनायें सच्ची और ताक़तवर हैं. क्योंकि वास्तविक जीवन संघर्ष से अपने जमाने की ट्रेजेडी के भोगने से पैदा हुई हैं ज़बकि शहरी जीवन संघर्ष काफी हद तक झूठा होता है। हमें इन सच्चे लेखकों को खोजना और अपनाना चाहिये।

हरिशंकर परसाई

- इस देश के बुद्धिजीवी सब शेर हैं, पर वे सियारों की बारात में बैंड बजाते हैं।
- मनुष्य अपनी हीनता से दबता है. वह दूसरों की निंदा करके ऐसा अनुभव करता है कि वे सब निकृष्ट हैं और वह उनसे अच्छा है। उसके अहम् की इससे तुष्टि होती है।
- सोचना एक रोग है, जो इस रोग से मुक्त हैं और स्वस्थ हैं, वे धन्य हैं।
- हीनता के रोग में किसी के अहित का इंजेक्शन बड़ा कारगर होता है।
- नारी–मुक्ति के इतिहास में यह वाक्य अमर रहेगा कि 'एक की कमाई से पूरा नहीं पड़ता।'
- एक बार कचहरी चढ़ जाने के बाद सबसे बड़ा काम है, अपने ही वकील से अपनी रक्षा करना।
- मैं ईसा की तरह सूली पर से यह नहीं कहता – पिता, उन्हें क्षमा कर। वे नहीं जानते वे क्या कर रहे हैं। मैं कहता – पिता, इन्हें हरगिज क्षमा न करना। ये कम्बख्त जानते हैं कि ये क्या कर रहे हैं ।
- विवाह का दृश्य बड़ा दारुण होता है। विदा के वक्त औरतों के साथ मिलकर रोने को जी करता है। लड़की के बिछुड़ने के कारण नहीं, उसके बाप की हालत देखकर लगता है।
- इंद्र बड़ा ईर्ष्यालु माना जाता है क्योंकि वह निठल्ला है. स्वर्ग में देवताओं को बिना उगाया अन्न, वे बनाया महल और बिन–बोये फल मिलते हैं। अकर्मण्यता में उन्हें अप्रतिष्ठित होने का भय रहता है, इसलिए कर्मी मनुष्यों से उन्हें ईर्ष्या होती है।
- दूसरे देशो की बात छोडो। हम उनसे बहुत ऊँचे है। देवता इसीलिये सिर्फ हमारे यहाँ अवतार लेते हैं।
- अरे, तुम जीवन का तिरस्कार और मरण का सत्कार करते हो । इसलिए मैं मरकर बोल रहा हूँ। मैं नर्क से बोल रहा हूँ।

इस देश को खुजली बहुत होती है. जब खुजली का दौर आता है, तो दंगा कर बैठता या हरिजनों को जला देता है। तब कुछ सयानों को खुजली उठती है और वे प्रस्ताव का मलहम लगाकर सो जाते हैं।

- अगर गोरक्षा का क़ानून बन जाए तो यह देश अपने आप समृद्ध हो जाएगा। फ़िर बादल समय पर पानी बरसाएंगे, भूमि खूब अन्न देगी और कारखाने बिना चले भी उत्पादन करेंगे।
- धर्म का प्रताप तुम नही जानते। अभी जो देश की दुर्दशा है, वह गौ के अनादर के कारण ही है।
- सिंह दुर्गा का वाहन है। उसे सर्कस वाले पिंजरे में बंद करके रखते है और उससे खेल कराते है। यह अधर्म है। सब सर्कसो के खिलाफ आंदोलन करके, देश के सारे सर्कस बन्द करवा देंगे।
- भगवान का एक अवतार मत्स्यावतार भी है। मछली भगवान का प्रतीक है। हम मछुओं के खिलाफ आंदोलन छेड़ देंगे। सरकार का मत्स्यपालन विभाग बन्द करवा देंगे।
- इस देश में उल्लू को कोई कष्ट नहीं है। वह मजे में है।
- मेरे आसपास 'प्रजातंत्र' बचाओ के नारे लग रहे हैं। इतने ज्यादा बचाने वाले खड़े हो गए हैं कि अब प्रजातंत्र का बचना मुश्किल दिखता है।
- मंथन करके लक्ष्मी को निकालने के लिए दानवों को देवों का सहयोग अब नहीं चाहिए। पहले समुद्र- मंथन के वक्त तो उन्हें टेक्निक नहीं आती थी, इसलिए देवताओं का सहयोग लिया। अब वे टेक्निक सीख गए हैं।
- गणतंत्र ठिठुरते हुए हाथों की तालियों पर टिका है। गणतंत्र को उन्हीं हाथों की ताली मिलती हैं, जिनके पास हाथ छिपाने के लिए गर्म कपड़ा नहीं है।
- चीन से लड़ने के लिए हमें एक गैर-जिम्मेदारी और बेईमानी की राष्ट्रीय परम्परा की सख्त जरूरत है। चीन अपने पड़ोसी देशों से बेईमानी करता है, तो हमें देश के भीतर ही बेईमानी करने का अभ्यास करना पड़ेगा। तब हम उसका मुकाबला कर सकेंगे।
- निंदा कुछ लोगों के लिए टॉनिक होती है। हमारी एक पड़ोसन वृद्धा बीमार थी। उठा नहीं जाता था। सहसा किसी ने आकर कहा कि पड़ोसी डॉक्टर साहब की लड़की किसी के साथ भाग गई। बस चाची उठी और दो-चार पड़ोसियों को यह बताने चल पड़ी।
- अगर पौधे लगाने का शौक है तो उजाड़ू बकरे-बकरियों को कांजीहाउस में डालो। वरना तुम पौधे रोपोगे और ये चरते चले जाएंगे।
- देश के बुद्धिजीवी शेर हैं,लेकिन वे सियारों की बारात में बैंड बजाते हैं।
- कुछ लोग खिजाब लगाते हैं। वे बड़े दयनीय होते हैं। बुढ़ापे से हार मानकर, यौवन का ढोंग रचते हैं।
- तुम्हे जिंदा आदमी की बात सुनने का अभ्यास नहीं; इसलिए मैं मरकर बोल रहा हूँ । जीवित अवस्था में तुम जिसकी ओर आँख उठाकर नहीं देखते उसकी सड़ी लाश के पीछे जुलूस बनाकर चलते हो ।
- ज़िन्दगी-भर तुम जिससे नफ़रत करते रहे उसकी कब्र पर चिराग जलाने जाते हो।
- मरते वक्त जिसे तुमने चुल्लू भर पानी नहीं दिया, उसके हाड़ गंगाजी ले जाते हो।
- बाजार बढ़ रहा है, इस सड़क पर किताबों की एक दुकान खुली है और दवाओं की दो। ज्ञान और बीमारी का यही अनुपात है। ज्ञान की चाह जितनी बढ़ी है, उससे दुगनी दवा की चाह बढ़ी है।
- डॉक्टर कहता है- ज़रा दिमाग को शांत रखिए। मैं सोचता हूँ- इस ज़माने में दिमाग तो सिर्फ सूअर का शांत रहता है। यहां-वहां का मैला खा लिया और दिमाग शांत रखा। जो ऐसा नहीं करता और जो सचेत प्राणी है, उसका दिमाग बिना मुर्दा हुए कैसे शांत रहेगा?

उमेश गुप्ता रिटायर्ड डी. जे. ने माँ माया गुप्ता पिता देवी चरण गुप्ता के नाम पर झागरिया ग्राम, कटारा बाईपास स्थित फार्म हाउस पर माया/देवी आर्ट गैलरी बनायी है

जिसमें बांस की जड़ में प्राकृतिक रूप से दर्शनीय कलाकृतियां, गोंड भील मधुबनी कालीघाट एवं अनेक प्रकार की पेंटिंग, भीमवेटिका राम छन्जा के शैल चित्रों की अनुकृतियां महात्मा गांधी पर सामग्री का विशेष संग्रह है। गौरैया संरक्षण हेतु घोंसले लगाये गये हैं।

गणेश पेंटिंग्स आर्ट गैलेरी - झागरिया में गणेशजी की मप्र की गोंड, भील बिहार की मधुबनी, केरल की मोराल आन्ध्रप्रदेश की कलमकारी, ग्वालियर की चितेरा कलकत्ता की कालीघाट राजस्थान की पहाड़ी पिचवारी और उड़ीसा की पटचित्रकथा की लगभग 300 पेंटिंग्स का कलेक्शन डिस्प्ले किया है। देश भर की गणेश प्रतिमाओं की करीब एक हजार पेंटिंग्स का कलेक्शन भी है।

इसके अलावा बागसेवनिया स्थित घर पर 1000 गणेश भगवान की मूर्ति का संग्रहालय वेदांत आर्ट गैलरी के नाम पर है जिसमें शादी के कार्ड के लगभग 100000 गणपति चित्र का संग्रहण भी शामिल हैं।

घर पर ही विरासत नाम से लगभग 1500 ऐंटिक वस्तुओं का संग्रहालय है जिसमें मुगलकालीन गिलास, थाली, बर्तन, हुक्का, कलमपॉट, पानदान, लोटा, पीकदान, ऐश-ट्रे पान, तम्बाकू के डब्बे, गौड़ क़ालीन जेवर, एक सैकड़ा दीपदान जेवर बनाने के साँचे, श्रृंगारदानी पीतल के बैग फूलदान सूपदान लैटर बाक्स मौर्य गुप्त क़ालीन ईट ओल्ड बॉट सिगार ढिबरी हाथी घोड़े इत्र दान टी सैट ताम्र की कुल्हाड़ी बर्तन पानदान आदि है।

उमेश गुप्ता, आई 8 सन्त आशाराम नगर बागसेवनिया भोपाल
मो. 9479909299

अश्लील पुस्तकें कभी नहीं जलाई गईं। वे अब अधिक व्यवस्थित ढंग से पढ़ी जा रही हैं।।

संस्मरण आलेख

उदीयमान का सत्कार : हरिशंकर परसाई का अंतरंग

डॉ. श्यामसुंदर दुबे

तब हम यह नहीं जानते थे कि हम किसे सुन रहे हैं? सन् 1955-56 की दिसंबर की कोई गहराती शाम थी। हटा के वर्ना क्यूरल मिडिल स्कूल का वार्षिक कार्यक्रम था। हम छठवीं-सातवीं के छात्र थे और पंडाल में श्रोता-दर्शक की भूमिका में थे। हमारे स्पोर्ट्स टीचर हमें शांत होने की हिदायत दे रहे थे- तभी मंच से आवाज गूंजी की जबलपुर से आये लेखक हरिशंकर परसाई अब आपको संबोधित करेंगे। उस समय वे संभवत: मुख्य अतिथि की तरह वहां प्रस्तुत हो रहे थे। कुर्ता-पाजामा और लंबे कोट वाली पोषाक में एक भरीपूरी आकृति माईक के सामने थी। वे बोल रहे थे - और लोग हँस रहे थे- हम आसपास देख रहे थे कि ऐसा क्या हो गया, जो हमारे शिक्षक और भद्रपुरुष खूब हँसे जा रहे हैं - हमें शब्द की समझ नहीं थी - न ही हम यह जानते थे कि मंच पर जो बोल रहे हैं - वे ऐसी भाषा बोल रहे हैं - जो लोगों को गुदगुदा रही है और कुछ सोचने पर मजबूर कर रही हैं - फिर भी स्पोर्ट्स टीचर की छड़ी हमें शांत किये थी। तभी माईक थामे सज्जन को हमारे ऊपर दया आ गयी - और वे बोले कि अब वे एक छोटी-सी कहानी सुनाते हैं। वे सुना रहे थे, एक कविराज थे। वे मरणासन्न हो गये। उनके लड़के बहुत दूर नौकरी में थे। डॉक्टर ने कह दिया कि अब ये घंटे-दो घंटे के मेहमान हैं, परिवार वालों ने उनसे निवेदन किया कि कोई ऐसी दवा दे दें - जिससे इनकी मौत कुछ समय तक टल जाए। इनके लड़के इनका अंतिम समय जीवित अवस्था में मुंह देख लें। डॉक्टरों ने हाथ खड़े कर दिये तभी कविराज के एक कवि मित्र आ गये और परिवार वालों को आश्वस्त करते हुए बोले 'मैं प्रयत्न करता हूँ। वे कविराज के कमरे में गये और उनसे कविताएं सुनाने का आग्रह किया। सुबह कमरे का दरवाजा खोला तो लोगों ने देखा कि कविराज कविता सुना रहे हैं - और श्रोता कवि बेहोश पड़े हैं।' हम खिलखिलाकर हँस पड़े। यह हरिशंकर परसाई से हमारा पहला दूर का परिचय था।

समय अपनी रफ्तार से दौड़ रहा था। हम भी उसके साथ थे - भले ही उसका पीछा कर रहे थे। हम न थक रहे थे - न इस दौड़ में हाँफ रहे थे। समय को मुट्ठी में बंद करने वाले 'शब्द' को हम पहचान रहे थे। हरिशंकर परसाई को अब हम पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से जान रहे थे - और शब्दों के अर्थ की परछाईयां पकड़ रहे थे। इन परछाईयों में हम दौड़ते-भागते राहत का अनुभव कर रहे थे। 'धर्मयुग' का बैठे-ठाले जैसा कोई कॉलक था - जिसमें परसाई के व्यंग्य प्रकाशित होते और हम उन्हें चाव से पढ़ते थे। एक और इसी तरह के 'ताल-बेताल' में हम पढ़ रहे थे। वे नई दुनिया में 'कहत कबीर' के अंतर्गत भी लिख रहे थे। हम परसाई के माध्यम से संसार को जान रहे थे। वे हमारे लिये सहज और संबोधनक्षम भाषा में अभिव्यक्त होने वाले रचनाकार थे, लेकिन उन्हें पढ़कर यह जरूर अनुभव हो रहा था कि वे टेढ़े-मेढ़े निडर और साहसी व्यक्ति हैं - वे भाषा की सहजता में अपने आक्रोश को दहकते कोयले सा सुलगाये हुए थे। व्यंग्य को हमने उन्हीं के माध्यम से पहचाना और हास्य के हुड़दंग में व्यंग्य की तीक्ष्ण धार की काट का अनुभव किया।

हम अब हायर सेकेन्डरी में हिन्दी साहित्य पढ़ रहे थे - यह सातवें दशक का प्रारंभ था। प्रसाद, पंत, महादेवी, निराला, माखन लाल चतुर्वेदी और हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा गुलबराय जैसे कवि-लेखक हमारे पाठ्यक्रम में थे। व्यंग्य की मुकम्मल उपस्थिति उस समय तक ऐसे पाठ्यक्रमों में नहीं हो पायी थी। इसलिए व्यंग्य के विषय में अनभिज्ञ रहते हुए भी हम हरिशंकर परसाई के व्यंग्य को समझ रहे थे, और अपने को

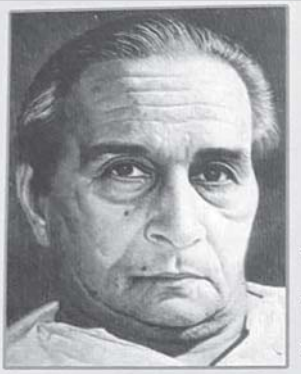

साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त साहित्यकार हरिशंकर परसाई हिन्दी के सबसे समर्थ व्यंग्यकार हैं। पैनी दृष्टि और चुटीली भाषा उनके अचूक औज़ार हैं। जीवन, समाज और राजनीति में व्याप्त सभी बीमारियों और बुराइयों की पहचान वे किसी कुशल 'सर्जन' की तरह करते हैं। 'अपनी अपनी बीमारी' की व्यंग्यपरक कहानियों में कुछ ऐसी ही बीमारियों की चीरफाड़ की गई है, जो पाठकों को बेतरह झकझोरती है।

मध्यवर्ग का व्यक्ति एक अजीब जीव होता है। एक ओर इसमें उच्च वर्ग की आकांक्षा और दूसरी तरफ निम्नवर्ग की दीनता होती है। अहंकार और दीनता से मिलकर बना हुआ उसका व्यक्तित्व बड़ा विचित्र होता है। बड़े साहब के सामने दुम हिलाता है और चपरासी के सामने शेर बन जाता है।

कुछ अधिक ही बुद्धिमान समझ बैठे थे। इतना जान गये थे कि व्यंग्य प्रत्येक की समझ में नहीं आता, इसलिए परसाई को पढ़कर मन कुछ अधिक गर्वीला-सा हो गया था। मन में यह बात थी कि परसाई को पास से देखें और हो सके तो उनसे बोलें - बतियायें भी और उन्हें बतायें कि हम उन्हें पढ़ते हैं। हटा जैसी बस्ती का सौभाग्य था कि हरिशंकर परसाई अबकी बार रामेश्वर शुक्ल अंचल के साथ हटा आये। यहां के बजरिया बोर्ड स्कूल में कोई साहित्यिक कार्यक्रम था। रात में अंचल जी और परसाई जी को सुना। पता चला वे रात्रि-विश्राम हटा में ही करेंगे। जहां वे रुके थे - मैं सुबह-सुबह वहां पहुंच गया। वे कहीं जाने को उद्यत थे। वे हटा के वयोवृद्ध, कवि लक्ष्मीप्रसाद मिस्त्री 'रमा' के आवास पर जा रहे थे। मैं भी पीछे-पीछे लग गया। 'रमा' के कवि निवास में मेरा आना-जाना था। वे पहुंचे तो रमा जी उनको लेने दरवाजे तक आये। उन्हें वे अपने अध्ययन कक्ष में ले गये। मैं भी साधिकार उनके साथ था। कक्ष में पहुंचते ही रमा जी ने मेरा परिचय दिया और बताया कि मैं कविताएं लिखता हूं। परसाई जी ने मेरी ओर देखा फिर बोले गद्य भी लिखा करें। मैंने कहा, 'प्रयास करूंगा, फिलहाल उनकी रचनाओं को पढ़ता रहता हूं।' वे तटस्थ रहे। रमा जी से अंचल जी एवं परसाई जी की बातचीत होती रही। द्विवेदी युग पर बातचीत केन्द्रित रही। रमा जी ने दोनों को इत्र की फुहियां दीं। वे इसी से सबका स्वागत करते थे। परसाई जी ने चलते-चलते कहा, 'अभी भी गांवों में संभावना है।' मैं इस कथन को नहीं समझ पाया। वे हटा से विदा हुए।

"समय अपनी रफ्तार से दौड़ रहा था। हम भी उसके साथ थे - भले ही उसका पीछा कर रहे थे। हम न थक रहे थे - न इस दौड़ में हाँफ रहे थे। समय को मुट्ठी में बंद करने वाले 'शब्द' को हम पहचान रहे थे। हरिशंकर परसाई को अब हम पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से जान रहे थे - और शब्दों के अर्थ की परछाईयां पकड़ रहे थे। इन परछाईयों में हम दौड़ते-भागते राहत का अनुभव कर रहे थे। 'धर्मयुग' का बैठे-ठाले जैसा कोई कॉलक था - जिसमें परसाई के व्यंग्य प्रकाशित होते और हम उन्हें चाव से पढ़ते थे। एक और इसी तरह के 'ताल-बेताल' में हम पढ़ रहे थे।"

परसाई को पढ़ते-पढ़ते जो समझ आती गयी उससे इतना तो निश्चित होता गया कि परसाई का व्यंग्यकार गांव कस्बों से ही कच्चा माल ले रहा है - और परसाई के भीतर एक कस्बा ही कुलाँटें मार-मार कर उन्हें सीधा खड़ा करता रहा है। कस्बा ही था-जिसने उनकी सुषुम्ना नाड़ी को तनकर, आकाश तक तान दिया था, और वे लाग-लपेट बिना व्यवस्था और लोगों के ऐब न केवल देखते रहे - बल्कि उन्हें उजागर भी करते रहे। कस्बाई व्यक्ति रफ-टफ होता है। वह केवल यथार्थ नहीं कहता, बल्कि उसकी बखिया भी उघाड़ता है। इसे बुंदेली बोली में बींगें निकालना कहा जाता है। मुझे लगता है - व्यंग्य से ही 'बींगें' शब्द बना है। जबलपुर कहने को महानगर है - किंतु अपनी आंतरिक बनावट में एक बड़ा कस्बा ही है। यदि इस बड़े कस्बे के अनकहे किस्सों की गूंज परसाई के लेखन में दमामा जैसी दमदार आवाज में शब्दों का परिधान धारण करके आ रही है तो मुझे उनका वह वाक्य जो हटा की अपनी दूसरी और अंतिम यात्रा के समापन पर चलते-चलते कहा था कि अभी भी गाँवों में संभावना है। शहर का आदमी केवल हँसता है - वह न तो व्यंग्य कर सकता है - न व्यंग्य सह सकता है। जितने भी व्यंग्यकार हुए हैं - लोक जीवन में दबावों के ताप में ताये हुए लाल-लाल लोहे जैसे आग उगलते सरिया जैसे की रहे हैं - यह सरिया व्यवस्था की अव्यवस्थाओं पर गाज सा गिरता है - और व्यवस्थायें तिलमिला उठती हैं। लोक भाषाको अपने-अपने अनुभवों के तबे पर सेंकता है - तब सूक्तियों की रोटियों की विरल आमद होती है - और यह आमद समय की क्षुधा को शांत करने की भरसक कोशिश करती है - सूक्तियां मानसिक स्वास्थ्य के लिए वज्र बटिकायें होती हैं। किसी भाषा की गहराई नापने के लिए उसकी सूक्तियां जबर जेवरी का काम करती हैं। कुछ ही रचनाकार, सूक्तिकार बन पाते हैं। हरिशंकर परसाई कदम-कदम पर सूक्तिकार हैं। यह लोक से फूटती भाषा का ही कमाल है। परसाई का समूचा जीवन लोक से ही शक्ति लेता रहा। वे भाषा के किसान थे।

एक लंबा अरसा गुजरा हरिशंकर परसाई तब तक व्यंग्य के पर्यायवाची हो गये थे। मैं सरगुजा की बनैली हवाओं से अपने फेफड़ों को मजबूत करता-करता बुंदेलखंड में अनायास आ गया। अपने गांव-घर की भी एक पीड़ा होती है। परदेश में इस पीड़ा को नहीं जाना जाता। जब मैं इस पीड़ा से गुजर रहा था तब मेरा रक्तचाप बढ़ गया था। इसकी सूचना गीतकार नईम को लगी तो उन्होंने ठेठ बुंदेली में लिख भेजा। तुमने बड़े-बड़े रईसों की लुगाई को अपनी रखैल बना लिया-बधाई। खंडवा से श्रीकांत जोशी ने लिखा 'हरिशंकर परसाई को पढ़िये' मैं ने उन्हें दुबारा पढ़ना प्रारंभ किया। यह कोई करिश्मा था, या फिर परसाई की भाषा थी कि मेरा रक्तचाप तब से अब तक छलांगे नहीं लगा पाया। मुझे लगता है कि व्यंग्यकार कुछ-कुछ बिलोरता है। सब चलता है- के बीच वह अड़ जाता है और जो चल रहा था, वह हिलुर उठता है - लगता है - बिलोरा हो गया, किंतु यह बिलोरा नहीं - यह चल रही अव्यवस्था का सार्थक हस्तक्षेप है। कुआ में गंदला पानी भर जाये तो उसे उगेरा जाता है - पानी को हिलोर दिया जाता है - तो पानी साफ हो जाता है। व्यंग्यकार किसी सफाईकर्मी से कम नहीं है।

हटा आया तो डॉ. प्रेमचन्द्र स्वर्णकार मिल गये। पेशे से चिकित्सक जरूर थे, किन्तु लिखने का जुनून पालते थे। व्यंग्य लिखते थे;

अपने को साधारण आदमी मानना भी एक ताक़त है।
ऐसा आदमी असाधारणता के कोई फालतू सपने नहीं देखता और निराश नहीं होता, टूटता नहीं।

जबलपुर मेडीकल कॉलेज के छात्र थे, सो अनजाने व्यंग्य से सोहबत हो गयी थी। उनके कुछ व्यंग्य प्रकाशित थे। उन्होंने उन्हें एकत्रित कर एक पुस्तक की पांडुलिपि बना ली। इसी बीच हमारा साथ-साथ जबलपुर जाना हुआ, तो व्यंग्य की पांडुलिपि साथ में ले ली। जबलपुर के एक-दो प्रकाशकों से मिलना तय किया। प्रकाशकों से बात नहीं बनी तो सोचा कि परसाई जी से मिल लिया जाये, और उनसे भूमिका जैसा कुछ लिखने का आग्रह कर लिया जाये। हम परसाई जी के घर पहुंचे – शायद वे अपनी बहिन के आवास में उस समय रह रहे थे। एक कमरे में वे पलंग पर लेटे थे। हमारे पहुंचते ही वे अधलेटे होकर तकिया से टिक कर हमें देख रहे थे। और हम उनको देख रहे थे। सच मानिये तो हम कुछ डरे हुए थे। उनको पढ़ कर उकी अक्खड़ता से हम पहले ही परिचित हो गये थे और सामने उनका लंबोत्तर चेहरा और उनकी चुभती-सी आँखें थीं- उस समय वे पलंग से उठ नहीं सकते थे किंतु लगता था कि वे अभी छलांग लगा देंगे। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। उन्होंने प्रेमपूर्वक हम से वह सब

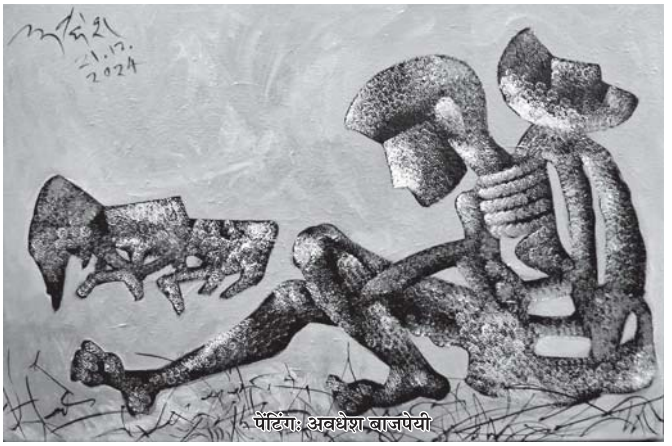
पेंटिंग: अवधेश बाजपेयी

जानना चाहा, जो ऐसी मुलाकात में एक परस्परता कायम करने की भूमिका निर्मित करता है। मसलन, कहाँ से आये? क्या काम करते हैं? क्या लिखते-पढ़ते हैं? वे पूँछ रहे थे और हम उत्तर दे रहे थे। वे हमें सम पर लाना चाहते थे। एक समरसता बनी तो वे हटा पर केन्द्रित हो गये – कुछ-कुछ यादों में खो गये। वे जानना चाहते थे कि रमा जी कैसे हैं ? उनसे हम लोगों का कभी मिलना-जुलना होता है?

मैंने बात का सिरा संभाला। मैंने उन्हें उनकी रमा जी से हुई भेंट की याद दिलायी। वे बोले – अच्छा तुम ही थे उस समय वहां? मैंने हामी भरी और हुलफुलाहट में यह बता दिया कि मैं रमा जी पर पी.एच.डी. भी करा रहा हूं। उन्होंने इस बात पर तवज्जो नहीं दिया। उलटे बोले – हिन्दी के प्राध्यापक हो तो यही तो कर सकते हो। डॉक्टर स्वर्णकार ने कुछ रास्ता-सा बनाया। उन्हें बताया कि रमा जी पर हम वार्षिक कार्यक्रम करते हैं – उनकी याद में एक पत्रिका प्रकाशित कर चुके हैं। उनकी लायब्रेरी कॉलेज की लायब्रेरी में स्थापित हो चुकी है। वे प्रसन्न हुए और हम भी खुल गये। डॉ. स्वर्णकार की पांडुलिपि मेरे हाथ में थी। उन्हें बताया कि डॉ. स्वर्णकार व्यंग्य लिखते हैं – उनके निबंधों का यह संकलन है। पुस्तक रूप में प्रकाशन की योजना हैं। इस पर यदि उनके दो शब्द मिल जायें तो यह उनकी बड़ी कृपा होगी। वे बोले, 'कृपा वगैरह को छोड़ो। इसे रख जायें। मैं देख लूँगा। एकाध महिने बाद ले जाऐं। यह हमारे लिए सुखद आश्चर्य था। उन्होंने उस पर अपनी विस्तृत टिप्पणी लिखी। पुस्तक उनकी टिप्पणी सहित प्रकाशित हुई। यहां टिप्पणी उतनी महत्वपूर्ण नहीं है, जितना एक बेनाम से रचनाकार के प्रति उनका अनुराग भाव महत्वपूर्ण है। हो सकता है डॉ. स्वर्णकार को व्यंग्य रचनाओं से प्रभावित होकर उन्होंने अपनी बात लिखी हो, किंतु मुझे यह भी लगता है कि वे व्यंग्य-लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए भी ऐसा लिख रहे थे। जो भी हो, लेकिन इस प्रसंग से यह तो प्रकट होता ही है कि वे सहृदय थे – और उनके पास वत्सल भाव भी था।

वे सागर में थे विश्वविद्यालय के कार्य से मेरा आना-जाना सागर होता था। मैं एक ऐसी ही यात्रा में उनसे मिलने चला गया। वे मुझे पहचान गये। मैंने सागर-प्रवास के इस दौर के अनुभवों को उनसे जानना चाहा। वे बोले जिस उम्मीद से सागर आया था वह पूरी नहीं हो पा रही है – जल्दी जबलपुर लौटने का मन है। भाई ! यह तो विश्वविद्यालय है – तमाम प्रोफेसर्स हैं – उनके पास हजार काम है। एक दो को छोड़कर कभी कोई मिलने बात करने का समय ही नहीं निकाल पाता। तुम तो हटा में आ गये। वे असमंजस में थे। उनसे मेरी यह आखिरी मुलाकात थी। वे इसके बाद जल्दी ही जबलपुर लौट भी गये थे। उन्होंने एक दो नौकरियां अपने प्रारंभिक जीवन में स्वीकार कीं किंतु वे नौकरियों का खोल फाड़कर बाहर निकल आये। खोल में रहना उन्हें पसंद नहीं था इसलिए वे सभी खोलों से मुक्त होते रहे। वे जानते थे कि व्यंग्यकार की निर्भीकता ही उसकी सबसे बड़ी ताकत है। वे अपनी इसी ताकत के बल पर अच्छे-अच्छों की बखिया उधेड़ते रहे। वे ऊँचे बौद्धिक व्यक्ति थे और तमाम दुनिया-जहान की ताजा तरीन जानकारियों से लैस रहते थे। वे सहज और जागृत व्यक्तित्व थे। उनसे मिलने के मायने थे अपने आप को समृद्ध करना। वे छोटे स्थानों की रचनात्मकता को प्रश्रय देने वाले बड़े रचनाकार थे। सन् 1965 के आसपास ये दमोह आये थे। यहां एक नवोदित रचनाकार थे उमेश प्रधोट उनके उपन्यास 'बल्ब और टिड्डा' का वे लोकार्पण करने के उद्देश्य से एवरेस्ट लाल की दहलान में मुख्य अतिथि के तरह थे। उस समय उन्होंने कहा कि 'छोटे स्थान से ही बड़ी प्रतिभायें जन्म लेती हैं।' उनका यह वाक्य आज भी यथावत है। बस जरूरत है – छोटे स्थान के संताप को सहने की।

लेखक: वरिष्ठ साहित्यकार हैं।
संपर्क : श्री चण्डी जी वार्ड, हटा दमोह, म.प्र. 470775,
मोबा. 9425405939

**देश एक चलती-फिरती कतार है, कभी चावल की दुकान पर खड़ी होती है,
फिर शक्कर की दुकान पर. आधी जिन्दगी कतार में खड़े-खड़े बीत रही है।**

संस्मरण आलेख

हरिशंकर परसाई - व्यक्तिगत यादें

डॉ. सुभाष अत्रे

हमारे हितैषी एवं स्नेही श्री उमेश गुप्ता जज साहब जो कि कलापारखी, साहित्यकार, विधिवेत्ता, व्यंग्यकार एवं अद्‌भुत प्रतिभा के धनी है ने मूर्धन्य साहित्यकार एवं व्यंग्यकार श्री हरिशंकर परसाई जी की जन्म शताब्दी पर उनको श्रद्धास्वरूप विख्यात पत्रिका 'कला समय' का एक विशेषांक निकालने की पहल की है। यह कार्य दुष्कर होकर भी परसाई जी को सच्ची श्रद्धांजलि देना होगा।

परसाई जी के व्यक्तित्व, कृतित्व एवं जीवन के बारे में एक लेख लिखना समुद्र को अंजुली में समेटने जैसा ही होगा। साथ ही मैं साहित्यकार भी नहीं हूं। किन्तु गुप्ता सा. का आदेश एवं श्री श्रीवास जी का आग्रह लिखना तो था ही। मैं सौभाग्यशाली हूँ कि मुझे परसाई जी से मेरा व्यक्तिगत परिचय तथा उनसे साक्षात्कार चर्चा एवं सानिध्य का अवसर प्राप्त हुआ।

सन् 1978-79 में मैं जबलपुर शहर में शहर कोतवाल (नगर पुलिस अधीक्षक) पदस्थ था। हमारे अधीनस्थ श्री आर.सी. तिवारी बड़े दबंग नामी और लोकप्रिय टी.आई. थे। वे जबलपुर की सभी हस्तियों को जानते पहचानते थे। लूट की एक वारदात के सिलसिले में हम राउट टाउन नेपियर टाउन क्षेत्र से जा रहे थे तो उन्होंने एकाएक गाड़ी को रोक कर कहां आइये आपकी मुलाकात एक जबरदस्त हस्ती से कराते हैं। मैं राजनेताओं से दूर रहना पसंद करता था इसलिए कुछ हिचकिचाहट हुई किन्तु तिवारी जी ने कहा साहब ये व्यक्ति श्री हरिशंकर परसाई जी है जो प्रसिद्ध लेखक, व्यंग्कार, बेधड़क विद्वान तथा मेरे मेन्टर भी हैं। उस दिन मेरा परिचय परसाई जी से कराया। अन्य बातों के साथ ही पूछा 'आप तो महाराष्ट्र के होंगे? मैंने कहा जी नहीं मैं खण्डवा से हूं तो वे एकदम प्रसन्न होकर बोले खण्डवा से तो मेरा गहरा लगाव और पुराना रिश्ता है। उन्होंने बताया कि 1948-49 में खंडवा के 'न्यू हाई स्कूल' में पच्चीस रुपए माह पर उन्होंने सात माह नौकरी की थी। वह समय विकट आर्थिक तंगी का था। उन्होंने कहां जबलपुर पुलिस अन्य जगहों से अलग है। एक अन्य मुलाकात में परसाई जी ने मुझे पुलिसिंग की टिप्स भी दी। यहां दादा, गुरू और रंगदार जैसे शब्द तलवार, चमकाने जैसी गुण्डागर्दी, बम के गोले की भी बातें होती है। पुलिस के सीनियर अधिकारी श्री पाराशर जी ने परसाई जी को बताया था कि 'जब तक तमाचा न मारो यहां आदमी सही नाम नहीं बताता।' मैंने कहा जबलपुर तो संस्कार धानी है तो वे मुस्करा कर बोले मैं भी तो यहीं का हूं। उन्होंने बताया कि बचपन में एक ज्योतिष ने भविष्यवाणी की थी कि वे बड़े होकर थानेदार बनेंगे। उनके पिता तथा परिवारजनों की भी अभिलाषा यही थी। परिवार के सभी पुरुष ऊंचे पूरे हट्टे कट्टे थे। तथा ब्रिटिश राज में पुलिस का दबदबा होने से पुलिस की नौकरी इज्जतदार मानी जाती थी। किन्तु परसाई जी स्वयं पुलिस की कार्यप्रणाली विशेषकर व्याप्त भ्रष्टाचार के कठोर आलोचक थे। पुलिस भ्रष्टाचार को अपना हक मानती है। लाश के पंचनामें, एक्सीडेंट के पीड़ित, जुल्म के सताये हुए से भी अधिकारपूर्वक रिश्वत लेने से वे आक्रोशित ही रहते थे। किन्तु फिर भी अपनी आलोचना में युक्तियुक्त तर्कसंगत थे।

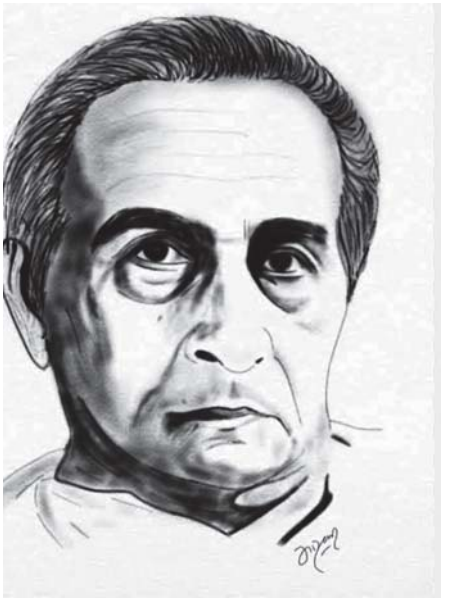

परसाई जी व्यक्तिगत तौर पर अत्यन्त स्नेही एवं पितृवत व्यवहार करते थे। अतिथि सत्कार पूर्ण मनोयोग से करते थे। मुझे कई बार चाय पान, स्वल्पाहार तथा भोजन कराया। एक घटना स्मरण आती है। उस दिन परसाई जी ने शाम को खाने के लिए बुलाया था। मैं समय की पाबन्दी से करीब 7 बजे उनके निवास जाने को निकल ही रहा था कि वायरलेस पर कंट्रोल रूम से काल आया। रांझी थाना क्षेत्र में किसी गुण्डे/बदमाश ने एक सिपाही जो अकेला आ रहा था की बंदूक/रायफल छीन ली। यह एक गंभीर मामला था। एस.पी. साहब का हुक्म हुआ कि सभी अधिकारी रांझी क्षेत्र में घेराबंदी कर अपराधी पकड़ने के लिए पहुंचे। मैंने भी अपनी जीप उसी ओर मोड़ ली। जब मैं रात्रि 8 बजे तक परसाई जी के यहां भोजन के लिए नहीं

तानाशाह एक डरपोक आदमी होता है।
अगर पांच गधे भी साथ-साथ घास खा रहे हों तो तानाशाह को डर पैदा होता है कि गधे भी मेरे खिलाफ़ साजिश कर रहे हैं।

"परसाई जी के व्यक्तित्व, कृतित्व एवं जीवन के बारे में एक लेख लिखना समुद्र को अंजुली में समेटने जैसा ही होगा। साथ ही मैं साहित्यकार भी नहीं हूं। किन्तु गुप्ता सा. का आदेश एवं श्री श्रीवास जी का आग्रह लिखना तो था ही। मैं सौभाग्यशाली हूँ कि मुझे परसाई जी से मेरी व्यक्तिगत परिचय तथा उनसे साक्षात्कार चर्चा एवं सानिध्य का अवसर प्राप्त हुआ।"

पहुंचा तो उन्होंने स्मरण कराने के लिए मेरे ऑफीस में फोन किया। संतोषजनक उत्तर नहीं मिलने पर कंट्रोल रूम के जरिए मुझे बात करने के लिए खबर की। मैंने रांझी थाने से ही उनसे बात की तथा वस्तुस्थिति बताई कि हालांकि यह मेरा क्षेत्र नहीं है फिर भी एस.पी. साहब के आदेश से यहां व्यस्त हूं। परसाई जी ने कहा ठीक है वे खाने पर रास्ता देखेंगे। पंद्रह मिनिट के अंदर ही एस.पी. श्री सुरजीत सिंह मेरी लोकेशन पर आये तथा बोले चलो परसाई जी के यहां चलते हैं। जरूरी काम है। चूंकि परसाई जी का घर मेरे क्षेत्र में था मैंने अपनी जीप एस.पी. साहब की जीप के पीछे लगा दी। हम लोग परसाई जी के घर पहुंचे तब तक एस.पी. साहब को भोजन की जानकारी नहीं थी। जैसे ही परसाई जी मिले पूछा क्या डकैती हो गयी। एस.पी. साहब ने कहा जी हां। परसाई जी ने कहा मैंने डकैती नहीं की, आपने भी नहीं की होगी। शायद सुभाष ने की हो। एस.पी. साहब ने कहा डकैती की बात छोड़िये पहले आपकी समस्या बताईये जिसके लिए हमको अर्जेन्ट बुलाया है। परसाई जी हँस कर बोले मेरी समस्या तो गर्मागर्म पूड़िया और खीर है जिसका निपटारा आप दोनों ही कर सकते हो। एस.पी. साहब भी हँसने लगे। वे भी परसाई जी के प्रशंसक एवं मित्र थे। हमने एक साथ खाना खाया और पुनः ड्यूटी पर वापिस गये। बाद में परसाई जी ने बताया कि भाई वे एस.पी. साहब को इमरजेंसी काल द्वारा नहीं बुलाते तो उस दिन खाना शायद नहीं मिलता। एस.पी. साहब से व्यक्तिगत संबंध होने से परसाई जी ने यह लिबर्टी ले ली। और कई छोटी-छोटी यादें मेरे जहन में उभर रही है किन्तु वे अधिकांश व्यक्तिगत हैं जो बड़े लोग अपनों को सीख के लिए बताते हैं।

श्री परसाई जी से सम्पर्क में आने पर मैंने पाया कि उनका सोच अत्यन्त स्पष्ट, उनके विचार स्वतंत्र, कुप्रथाओं, जाति प्रथा के घोर विरोधी, राजनीति में नैतिक पतन से आहत, भ्रष्टाचार से नफरत करने वाली शख्सियत थे उनकी लेखनी तेज धारदार तथा कटू लगने वाली प्रतीत होती थी। किन्तु वास्तव में वे सुधारवादी एवं हृदय से कोमल थे। पूर्णतः निष्काम कर्मयोगी की तरह उन्होंने जीवन जिया। उनके द्वारा लिखित 20 से अधिक पुस्तकों तथा परसाई रचनावली के 6 खण्डों को तो मैं नहीं पढ़ पाया किन्तु उनके व्यक्तिगत सानिध्य से उनको जो कुछ समझा पाया वह मेरे द्वारा शब्दों में व्यक्त करना सामर्थ से परे हैं।

उनकी जन्म शताब्दी पर सादर-पुष्पांजलि।

लेखक: आई.पी.एस. (से.नि.) हैं।
सम्पर्क: 3, वैशाली नगर, कोटरा सुल्तानाबाद, भोपाल
मोबा. 9425015000

महान व्यंग्यकार व लेखक हरिशंकर परसाई जी का लिखा तीखा व्यंग्य:

हमारी न्याय-व्यवस्था:

अभी तक मैं सोचता था कि अर्जुन युद्ध नहीं करना चाहता था, परंतु श्रीकृष्ण ने उसे लड़वा दिया। यह अच्छा नहीं किया। लेकिन अर्जुन युद्ध नहीं करता तो क्या करता? कचहरी जाता !! ज़मीन का मुकदमा दायर करता? यदि वन से लौटे पाण्डव जैसै-तैसे कोर्ट की फ़ीस चुका भी देते तो वकीलों की फ़ीस कहाँ से देते? और कचहरी में धर्मराज का क्या हाल होता? वे Cross eamination के पहले झटके में ही उखड़ जाते। सत्यवादी भी कहीं मुकदमा लड़ सकते हैं?

कचहरी की चपेट में भीम की चर्बी उतर जाती। युद्ध में अठारह दिनों में ही फ़ैसला हो गया; कचहरी में अठारह साल भी लग जाते, और जीतता तो दुर्योधन ही क्योंकि उसके पास पैसा था। सत्य सूक्ष्म है, पैसा स्थूल है। न्याय-देवता को पैसा दिख जाता है; सत्य नहीं दिखता।

शायद पाण्डव मुकदमा लड़ते-लड़ते मर जाते, क्योंकि दुर्योधन पेशी बढ़वाता जाता। पाण्डवों के बाद उनके बेटे लड़ते, फिर उनके बेटे। श्रीकृष्ण ने बड़ा अच्छा किया जो अर्जुन को लड़वाकर अठारह दिनों में फ़ैसला करवा दिया, वरना आज कौरव-पाण्डव के वंशज किसी दीवानी अदालत में वही मुकदमा लड़ रहे होते।

दिशाहीन, बेकार, हताश, नकारवादी, विध्वंसवादी बेकार युवकों की यह भीड़ खतरनाक होती है।
इसका प्रयोग महत्वाकांक्षी खतरनाक विचार धारा वाले व्यक्ति और समूह कर सकते हैं। इस भीड़ का उपयोग नेपोलियन, हिटलर और मुसोलिनी ने किया था।

व्यंग्य निबंध

आलोचनाशास्त्र की कसौटी पर कसा व्यंग्य : दो नाक वाले लोग

डॉ. लता अग्रवाल 'तुलजा'

व्यंग्य एक उद्देश्य परक विधा है, जो समाज में व्याप्त विसंगतियों के साथ उन चरित्रों को भी अपना निशाना बनाती है जो इस तरह की विद्रूपतता को बढ़ावा देते हैं। नि:संदेह इसके लिए विशेष दृष्टि की आवश्यकता होती है। अत: अगर कहूँ कि व्यंग्य शिक्षित मस्तिष्क और गंभीर चिंतक मन की विधा है तो कोई अतिश्योक्ति न होगी। व्यंग्य समाज की विसंगतियों पर प्रहार करने का एक अहिंसात्मक अस्त्र है। बिना मस्तिष्क की सर्जरी किए विचारों को सही दिशा प्रदान करने को प्रतिबद्ध है, जो समाज के कमजोर पक्षों पर सोचने के लिए बाध्य करता है। इसका संबंध नैतिकता से है। हास्य और व्यंग्य को लेकर आज भी पाठक वर्ग में भ्रान्ति है। अमूमन जब हास्य को ही व्यंग्य का रूप मान लिया जाता है तो व्यंग्य की गरिमा को चोट पहुँचती है। व्यंग्यकारों को एक 'फनी थिंग' की संज्ञा दे दी गई। यह विडंबना है वास्तव में हास्य व्यंग्य की प्रखरता को हर लेता है इसलिए हरिशंकर परसाई की चिंता इसी बात को लेकर ही रही कि इससे कैसे मुक्ति पाई जाय।

व्यंग्य स्वतंत्रता के बाद पूर्ण रूप से अपने अस्तित्व में आया, कारण स्वतंत्रता के पश्चात घटित राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक, धार्मिक विसंगतियां बुद्धिजीवी साहित्यकारों के निशाने पर रही। उस दौर के व्यंग्यकारों में हरिशंकर परसाई का नाम अग्रणी है। उन्होंने अपने लेखन में समाज के विभिन्न विषयों से राजनीति, समाज, मनोविज्ञान, साहित्य, शैक्षणिक आदि क्षेत्रों को सही दिशा देने के साथ उसे सशक्त बनाने पर बल दिया है। परसाई जी के व्यंग्य कई महत्वपूर्ण पत्रिकाओं में स्तंभ के रूप में प्रकाशित होते रहे। कई व्यंग्य संग्रह उनके प्रकाशित हुए यथा–सदाचार का ताबीज, पगडंडियों का जमाना, ठिठुरता हुआ गणतंत्र, विकलांग श्रद्धा का दौर, तुलसीदास चंदन घिसे, पाखंड का अध्यात्म आदि। उनके कुछ व्यंग्य उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रमों में शामिल किए गए।

बता करूं परसाई जी के 'दो नाक वाले लोग' व्यंग्य की तो, अभी तक हम केवल यही मानते थे कि नाक तो एक ही होती है और यह हमारे शरीर का अहम हिस्सा रहा है। जब तक नाक चल रही है जीने की

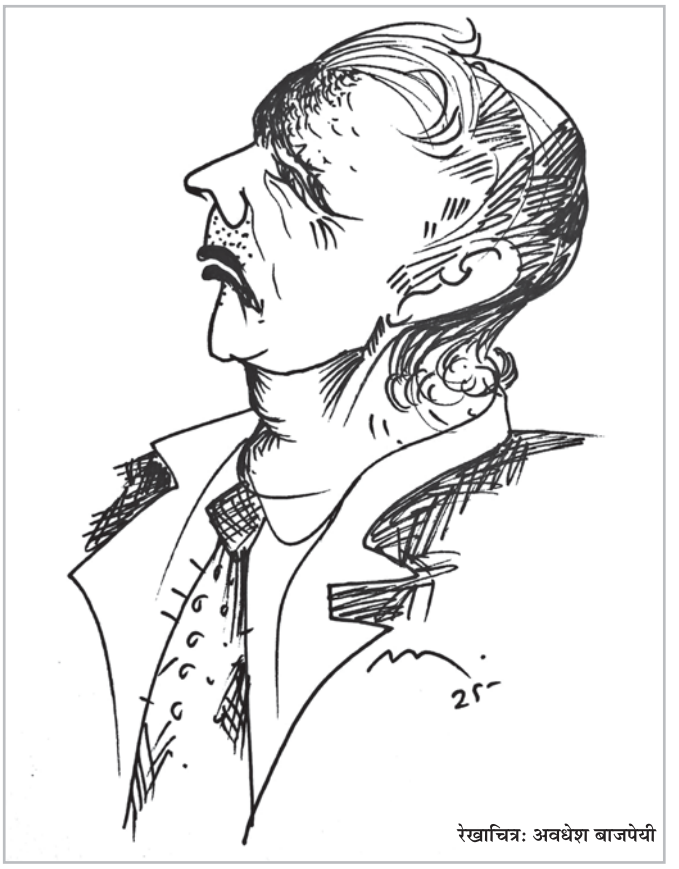

रेखाचित्र: अवधेश बाजपेयी

आस है। शायद नाक के इसी महत्व को देखते हुए ही हमारे पूर्वजों ने नाक को केंद्र में रखकर इतने मुहावरे बनाए हैं। यथा– 'नाक का बाल होना', 'नाक में दम करना', 'नाक मुंह फुलाना', 'नाक कटना'... आदि। किन्तु फिर परसाई जी का ये अजूबा स्टेटमेंट...! 'दो नाक वाले लोग'...यह कैसा विरोधाभास ! दरअसल इसमें कुछ अजूबा नहीं ...बल्कि आज के युग में तो कई–कई नाक वाले लोग देखने में आ रहे हैं। यह व्यंग्य वास्तव में संकेत रूप है, जहाँ दो नाक से आशय उनका प्रथम वास्तविक प्रतिष्ठा और स्वाभिमान से है दूसरी नाक दिखावे की। विशेषकर भारत में तो नाक के सांस लेने के अतिरिक्त और भी प्रयोजन है, सभी को बड़ी नाक बहुत पसंद है। बात–बात पर लोग अपनी नाक को बीच में ले आते हैं। अजी बीच में ही नहीं लाते... इस नाक की वजह से मरने–मारने पर उतारु हो जाते हैं। किसी ने कहावत कही है, अगर नाक न हो तो इन्सान को गुड़ और

जब चुनाव आता है, तब हमारे नेताओं को गोमाता सपने में दर्शन देती है। कहती है, बेटा चुनाव आ रहा है अब मेरी रक्षा का आंदोलन करो।

गोबर का अंतर भी समझ न आए।

इतिहास गवाह है राजा-महाराजाओं ने अपनी नाक बड़ी रखने के लिए कितने नरसंहार किए। सूर्पनखां की नाक न काटते लक्ष्मण तो भला राम-रावण युद्ध होता ...? यही क्यों महाभारत भी तो इस नाक का ही परिणाम है। अगर द्रोपदी के कथन से दुर्योधन की नाक न कटती तो सम्भवत: वह पांडवों को पांच गाँव देने को तैयार भी हो जाता। यह नाक का चक्कर भी बड़ा अजीब है। परसाई जी का दो नाक वाला फार्मूला यदि पहले आ गया होता तो ये सब हादसे टल भी सकते थे। एक नाक चोटिल होने पर लोग दूसरी नाक से काम चला लेते। मगर तब तो लोगों के पास एक ही नाक थी। यह थी प्रतिष्ठा की, मान मर्यादा की। इसलिए जब-जब नाक कटी तो तांडव हुआ ...आज के वर्तमान शासक दो क्या दो से अधिक नाक लिए घूमते हैं। जितनी बार काटो केक्टस की तरह अपनी कई शाखाओं संग फिर हाजिर हो जाती है। जिन्हें परसाई जी 'गुलाब के फूल वाली नाक' कहते हैं। उसकी एक कलम काट देने पर कई शाखाएं उसमें से फूट पड़ती है। इस केटेगिरी की नाक में नेताओं-अभिनेताओं को रखा जा सकता है। ये जितनी बार जेल जायेंगे, उन पर अपराधिक प्रकरण लगेंगे, उनके भ्रष्टाचार, जालसाजी का ग्राफ जितना ऊंचा होगा उतने ही उनकी नाक बढ़ती चली जाती है, उन्हें राजनीति में ऊंचा मुकाम हासिल होगा। गोया नाक न कटी राजनीति में स्थायी प्रवेश की सर्टिफिकेट परीक्षा पास कर ली। जब भी उन्हें लगता है टीआरपी गिर रही है नेता-अभिनेता समाचार की सुर्खियों में बनने के लिए कोई ना कोई कांड कर बैठते हैं।

आज तो जमाना उससे भी आगे पहुँच चुका है। प्लास्टिक सर्जरी का जमाना है, लोग जेब में कई-कई नाक रखकर घूमते हैं। एक कट गई तो दूसरी, दूसरी कट गई तो तीसरी, गोया नाक ना हुई पतंग हो गई। वे कहते हैं कि- 'नाक बहुत नरम होती है या छुरा बहुत तेज... ऐसे में आदमी नाक को छुपा कर क्यों नहीं रखता?' भला नाक भी छुपाने की चीज होती है, यह तो चाहे न चाहे चेहरे पर पहले ही दिखाई दे जाती है। किन्तु ये वो नाक नहीं ...यह है लोगों से आपकी वाह-वाही का खाद-पानी पीकर उपजी नाक है। अच्छा, ऐसी नाक महिलाओं की भी बहुत बड़ी और नाजुक होती है, पड़ोसन की साड़ी ज्यादा उजली दिखते ही उनकी नाक कट जाती है, उसके पति के पास नई कार हमारे पति के पास सैकेंड हेंड कार ...लो भई कट गई नाक. नाक न हुई तरकारी हो गई। फिर हैं बच्चे, वो और दो कदम आगे हैं। एक छोटे से बच्चे के हाथ से मोबाईल ले लो...उफ़! कट गई नाक, और बड़े बच्चे के साथी के पास हजार रूपये की ड्रेस है मेरी 900 की हो गया बखेड़ा ...ये नाक भी ससुरी केक की तरह खचाक-खचाक कटती है। एक दम सही नस पकड़ी है परसाई जी ने मनुष्य की। इसीलिए तो मैंने कहा कि व्यंग्यकार शिक्षित, विद्वान व्यक्ति होता है। ऐसे लोग परसाई जी का फार्मूला याद रखें, दो नाक रखें।

आगे वे कहते हैं -'छोटे लोगों की नाक कटती है' ये छोटे लोग

"व्यंग्य स्वतंत्रता के बाद पूर्ण रूप से अपने अस्तित्व में आया, कारण स्वतंत्रता के पश्चात घटित राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक, धार्मिक विसंगतियां बुध्दिजीवी साहित्यकारों के निशाने पर रही। उस दौर के व्यंग्यकारों में हरिशंकर परसाई का नाम अग्रणी है। उन्होंने अपने लेखन में समाज के विभिन्न विषयों से राजनीति, समाज, मनोविज्ञान, साहित्य, शैक्षणिक आदि क्षेत्रों को सही दिशा देने के साथ उसे सशक्त बनाने पर बल दिया है। परसाई जी के व्यंग्य कई महत्वपूर्ण पत्रिकाओं में स्तंभ के रूप में प्रकाशित होते रहे। कई व्यंग्य संग्रह उनके प्रकाशित हुए यथा-सदाचार का ताबीज, पगडंडियों का जमाना, ठिठुरता हुआ गणतंत्र, विकलांग श्रद्धा का दौर, तुलसीदास चंदन घिसे, पाखंड का अध्यात्म आदि। उनके कुछ व्यंग्य उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रमों में शामिल किए गए।"

कौन हैं? यहाँ उनका तात्पर्य जाति धर्म से नहीं, समाज के उस तपके से है जो अपने सीमित समाज के क्षेत्र में जीते है जिनके लिए उनका मान सम्मान ही सब कुछ होता है। मानो समाज में मान प्रतिष्ठा का बीड़ा वे ही उठाये हैं। यही कारण है कि बेटी या बेटा अगर नीची जात में ब्याह कर ले, लड़की किसी लड़के के साथ भाग जाए तो इनकी नाक फौरन कट जाती है। इसके विपरीत समाज का एक वर्ग वह भी है जो तथाकथित बड़े लोगों में गिना जाता है। और 'कई अपराधिक प्रवृत्ति में संलग्न हैं, स्मगलिंग करते हुए पकड़े जाते हैं, सरेआम सड़कों पर जूते खाते हैं, दूसरों की बहू बेटियों को छेड़ते हैं, उनकी पत्नियाँ लव अफेयर करती पकड़ी जाती हैं, बेटियाँ कुंवारी गर्भपात कराती हैं।' इस पंक्ति के माध्यम से वे प्रश्न उठाते हैं कि उनकी नाक क्यों नहीं कटती ? आखिर वह भी तो इसी समाज का हिस्सा हैं। यही उनके व्यंग्य का विषय है। संभवत: उन्होंने इस्पात की नाक लगा रखी है, समाज उनके सम्मान की धज्जियाँ ही क्यों न उड़ा दे उन पर कोई असर नहीं होता। इस्पात की नाक भी भला काटे कटी है। कई ऐसे लोग भी हैं जो नाक तिजोरी में रखकर खुलेआम घूमते हैं, अर्थात उन्हें नाक कटने का कोई खतरा ही नहीं होता। चाहे आप कितने ही हथकंडे अपना लो।

ये भाँति - भाँति की नाक वाले लोग हैं, जिनसे व्यंग्यकार पाठकों से रु -ब -रु करवा रहे हैं। जिनमें एक प्रजाति है जो नाक को तलवे में रखती है अर्थात उन्हें नाक से कोई लेना- देना नहीं। ये वर्ग बिंदास-बेखौंफ़ समाज में जीता है, क्योंकि ये अपने को डिक्लेयर कर चुका है बिना नाक का। आशय आप समझ ही गये होंगे कि समाज को इनसे किसी भी प्रकार के स्वाभिमान की उम्मीद नहीं है, उन्होंने इन्हें बदकार मान लिया है। ये वो लोग हैं जो निम्न से निम्न अपराधों में संलग्न रहते हैं। 'ऐसे लोग अपनी नातिन की उम्र की लड़कियों से बलात्कार

गिरने के बड़े फायदे हैं। पतन से न मोच आती, न फ्रैक्चर होता। कितने ही लोग मैंने कितने ही क्षेत्रों में देखे हैं, जो मौका देखकर एकदम आड़े हो जाते हैं। न उन्हें मोच आती, न उनकी हड्डी टूटती। सिर्फ़ धूल लग जाती है, पर यह धूल कपड़ों में लगती है, आत्मा में नहीं।

करते हैं।' जालसाजी, धोखाधड़ी इनके स्वभाव में शामिल है। दूसरे शब्दों में इनकी नाक स्वयं इनके तलवे तले दबी है, तो कोई क्या बिगाड़ सकता है इनका या कह लें चिकनी मिट्टी की बनी है।

एक और प्रकार है नाक का, सत्ता में टिकट न मिलने पर जो नाक कट जाती है, ऐसे पार्टी से बेदखल नेता को 'छिनकी हुई नाक' की उपमा दी है। आप समझ सकते हैं इस वीभत्स संज्ञा से कोई कैसे पार पायेगा। आगे वे कहते हैं-' बिगड़ा रईस और बिगड़ा घोड़ा दोनों से दूर रहना चाहिए। दोनों बौखलाए हुए होते हैं. रईस कब आपका उधार खा जाए, बिगड़ा घोड़ा कब कुचल दे।' कहा नहीं जा सकता. ऐसे लोगों से बचना चाहिए। दूसरे शब्दों में अगर आपको अपनी इकलौती नाक बचाना है तो इनसे (दो नाक वाले लोगों) सावधान रहो। यही फार्मूला वे भी अपनाते है जब, 'मस्ती में डोलते आते सांड को देख सड़क के किनारे की इमारत के बरामदे पर चढ़ जाता हूँ बड़े भाई साहब आ रहे हैं इनका आदर करना चाहिए।' इसे कहते हैं अपनी नाक अपने हाथ। क्योंकि नाक का कोई पैमाना नहीं होता, यह समाज की क्रिया-प्रतिक्रिया अनुसार कटती-जुड़ती रहती है। अगर बेटी ने विजातीय विवाह कर लिया और समाज ने हाहाकार मचा दिया तो नाक कट गई, मगर उसी समाज ने तारीफ कर दी कि लड़की ने सही कदम उठाया तो वही कटी नाक वापस आकर जुड़ गई। यहाँ परसाई जी समाज में चेतना का संचार करना चाहते हैं कि किसी के कहने भर से आपकी नाक नहीं कटती है।

आगे वे दहेज़ प्रथा पर अपना तंज कसते हैं - 'लड़के शादी के बाजार में मवेशी की तरह बिकते हैं, अच्छा मालवी बैल और हरियाणा की भैंस ऊंची कीमत पर बिकती है।' जब ऐसे बैलों का मोल चुकाने वधु के परिजन असमर्थ होते हैं तो उनकी नाक कट जाती है। अपनी नाक बचाने वे कर्ज के समुन्द्र में उतर जाते हैं। जाति-धर्म, रीति-रिवाज, मुहूर्त, लग्न इन सबके चक्कर में आज भी फंसा हैं आम भारतीय नागरिक, इस सम्बन्ध में उनका सवाल है, जो सम्भवत: धर्म के ठेकेदारों को अशोभनीय लगे - 'ईसाई और मुसलमान में जब बिना लग्न शादी होती है तो क्या वर-वधु मर जाते हैं?' ...किसी के पास कोई उत्तर नहीं है. विवाह के नाम पर अनावश्यक खर्च, फिर कर्ज का चक्रव्यूह। जितनी चादर उतने पैर पसारने चाहिए। निबंध का शानदार अंत कर्ज लेकर घी पीने वालों के लिए है। परिजनों (जो पटियाला में हैं), समाज के सामने अपनी नाक ऊंची रखने व्यक्ति यह सब तामझाम करता है। सारे परिजन, समाज विवाह के बाद अपने घर चला जाता है, रह जाते हो आप अकेले अपने कर्ज के साथ और फिर रोज-रोज महाजन के तकाजे से कर्जदार की नाक रोज थोड़ी-थोड़ी कटते ऐसी स्थिति आ जाती है कि नाक बचती ही नहीं, जब नाक नहीं बचती तो उसे काटने का कोई भय नहीं ...जब भय नहीं तो कर्ज की वसूली भी नहीं। नंगा नहाए क्या निचोड़े क्या ...ऐसे में परेशान महाजन को लेखक की सलाह, जिसके कारगर होने के पूरे चांस हैं कि 'उसकी दूसरी नाक पटियाला में पूरी रखी है वहाँ जाकर काट लो।' पूरे व्यंग्य में मुझे ये पंक्ति सबसे शानदार और खुफ़िया लगी।

निष्कर्ष के रूप में कहूंगी, कोई भी रचना अपने विषय की प्रासंगिकता को जितनी लम्बी अवधि तक जिलाए रखती है वह उतनी ही कालजयी होती है उस दृष्टि से 'दो नाक वाले लोग' परसाई जी का ऐसा व्यंग्य है जो वर्तमान में अधिक प्रासंगिक है। आज हर व्यक्ति दो धारी नाक लिए जी रहा है। अवसरवाद के अनुसार वह अपनी नाक का इस्तेमाल कर स्वयं को स्थापित किये हुए है। कहने को एक नाक है मगर अपने प्रयोगवाद की फैक्ट्री में वह आवश्यकतानुसार अपने लिए एक नई नाक इजाद कर लेता है. व्यंग्य की भाषा, कहन की शैली, शब्दों की मारक क्षमता, कहन का सलीका सभी आलोचनाशास्त्र की कसौटी पर खरी उतरती है।

लेखिका : वरिष्ठ साहित्यकार हैं।
संपर्क : 30 एमआइजी, अप्सरा काम्प्लेक्स,
A-सेक्टर , इन्द्रपुरी, भेल क्षेत्र
भोपाल - 462022 मो.- 9926481878

जब हम अच्छा खाने, अच्छा पहनने और अच्छा दिखने में खर्च करते हैं
तो अच्छा पढ़ने-लिखने और सोचने-समझने की खुराक में खर्च क्यों न करें !

कला समय

प्रबंध संपादक

सम्पर्क- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058

ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com

bhanwarlalshrivas@gmail.com

निष्क्रिय ईमानदार और सक्रिय बेईमान मिलकर एक षड्यंत्र-सा बना लेते हैं।

आत्म कथन

गर्दिश के दिन

– हरिशंकर परसाई

लिखने बैठ गया हूं पर नहीं जानता संपादक की मंशा क्या है और पाठक क्या चाहते हैं, क्यों आखिर वे उन दिनों में झांकना चाहते हैं, जो लेखक के अपने हैं और जिन पर शायद वह परदा डाल चुका है। अपने गर्दिश के दिनों को, जो मेरे नामधारी एक आदमी के थे, मैं किस हैसियत से फिर जीऊँ ? उस आदमी की हैसियल से या लेखक की हैसियत से? लेखक की हैसियत से गर्दिश को फिर जी लेने और अभिव्यक्त कर देने में मनुष्य और लेखक, दोनों की मुक्ति है। इसमें मैं कोई 'भोक्ता' और 'सर्जक' की नि:संगता की बात नहीं दुहरा रहा हूं। पर गर्दिश को फिर याद करने, उसे जीने में दारुण कष्ट है। समय के सींगों को मैंने मोड़ दिया था। अब फिर सींगों को सीधा करके कहूं – आ बैल, मुझे मार।

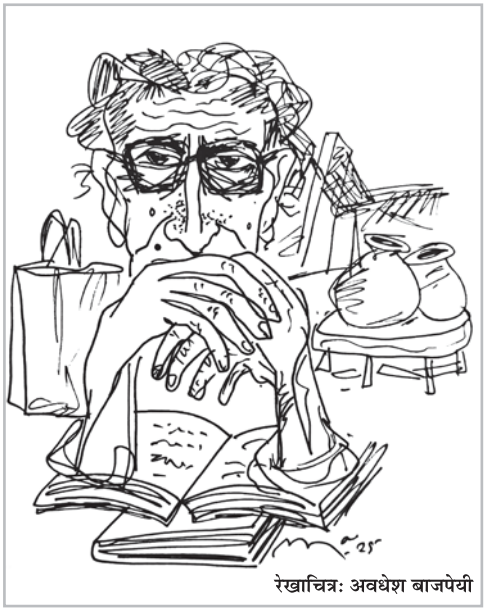

रेखाचित्र: अवधेश बाजपेयी

गर्दिश कभी थी अब नहीं है, आगे नहीं होगी–यह गलत है। गर्दिश का सिलसिला बदस्तूर है, मैं निहायत बेचैन मन का संवेदनशील आदमी हूं। मुझे चैन कभी मिल ही नहीं सकता। इसलिए गर्दिश नियति है।

हाँ, यादें बहुत हैं। पाठक को शायद इसमें दिलचस्पी हो कि यह जो हरिशंकर परसाई नाम का आदमी है, जो हँसता है, जिसमें मस्ती है, जो ऐसा तीखा है, कटु है– इसकी अपनी जिंदगी कैसी रही है? यह कब गिरा फिर कब उठा? कैसे टूटा? कैसे फिर से जुड़ा? यह एक निहायत कटु, निर्मम और घोबी पछाड़ आदमी है।

संयोग कि बचपन की सबसे तीखी याद 'प्लेग' की है। 1936 या 37 होगा। मैं शायद आठवीं का छात्र था। कस्बे में प्लेग पड़ी थी। आबादी घर छोड़ जंगल में टपरे बना कर रहने चली गयी थी। हम नहीं गये थे। माँ सशक्त बीमार थी। उन्हें लेकर जंगल नहीं जाया जा सकता था। भाँय–भाँय करके पूरे आस–पास में हमारे घर ही चहल–पहल थी। काली रातें। इनमें हमारे घर जलने वाले कंदील। मुझे इन कंदीलों से डर लगता था। कुत्ते तक बस्ती छोड़ गये थे, रात के सन्नाटे में हमारी आवाजें हमें ही डरावनी लगती थी। रात को मरणासन्न माँ के सामने हम लोग आरती गाते–जय जगदीश हरे, भक्त जनों के संकट पल में दूर करे। गाते–गाते पिताजी सिसकने लगते, माँ बिलख कर हम बच्चों को हृदय से चिपटा लेती और हम भी रोने लगते। रोज का यह नियम था। फिर रात को पिताजी, चाचा और दो–एक रिश्तेदार लाठी–बल्लम लेकर घर के चारों तरफ घूम–घूम कर पहरा देते। ऐसे भयकारी, त्रासदायक वातावरण में एक रात तीसरे पहर माँ की मृत्यु हो गयी। कोलाहल और विलाप शुरू हो गया। कुछ कुत्ते भी सिमट कर आ गये और योग देने लगे।

पाँच भाई–बहनों में माँ की मृत्यु का अर्थ मैं ही समझता था–सबसे बड़ा था।

प्लेग की वे रातें मेरे मन में गहरे उतरी हैं। जिस आतंक, अनिश्चय, निराशा और भय के बीच हम जी रहे थे, उसके सही अकंन के लिए बहुत पन्ने चाहिए। यह भी पिता के सिवा हम कोई टूटे नहीं थे। वह टूट गये थे। वह इसके बाद भी 5–6 साल जिये, लेकिन लगातार बीमार, हताश, निष्क्रिय और अपने से ही डरते हुए। धंधा ठप्प। जमा–पूँजी खाने लगे। मेरे मैट्रिक पास होने की राह देखी जाने लगी। समझने लगा था कि पिताजी भी अब जाते ही हैं। बीमारी की हालत में उन्होंने एक बहन की शादी कर ही दी थी–बहुत मनहूस उत्सव था वह। मैं बराबर समझ रहा था कि मेरा बोझ कम किया जा रहा है। पर अभी दो छोटी बहनें और एक भाई थे।

मैं तैयार होने लगा। खूब पढ़ने वाला, खूब खेलने वाला और खूब खाने वाला मैं शुरू से था। पढ़ने और खेलने में मैं सब भूल जाता। मैट्रिक हुआ, जंगल विभाग में नौकरी मिली। जंगल में सरकारी टपरे में रहता। ईंटें रखकर, उन पर पटिये जमा कर बिस्तर लगाता, नीचे जमीन चूहों ने पोली कर दी थी। रात भर नीचे चूहे धमाचौकड़ी करते रहते और मैं सोता रहता। कभी चूहे ऊपर आ जाते तो नींद टूट जाती पर मैं फिर सो जाता। छह महीने धमाचौकड़ी करते । चूहों पर मैं सोया।

बेचारा परसाई ?

नहीं, नहीं मैं खूब मस्त था। दिन भर काम। शाम को जंगल में

जिन्हें पसीना सिर्फ गर्मी और भय से आता है, वे श्रम के पसीने से बहुत डरते हैं.

घुमाई। फिर हाथ से बना कर खाया गया भर पेट भोजन–शुद्ध घी और दूध। और चूहों ने बड़ा उपकार किया। ऐसी आदत डाली कि आगे की जिन्दगी में भी तरह–तरह के चूहे मेरे नीचे उधम करते रहे हैं, साँप तक सर्राते रहे हैं, मगर मैं पटिये बिछाकर पटिये पर सोता रहा हूं। चूहों ने ही नहीं, मनुष्यनुमा बिच्छुओं और साँपों ने भी मुझे बहुत काटा है–पर 'जहर मोहरा' मुझे शुरू में ही मिल गया। इसलिए बेचारा परसाई का मौका ही नहीं आने दिया। उसी उम्र से दिखाऊ सहानुभूति से मुझे बेहद नफरत है। अभी दिखाऊ सहानुभूति वालों को चाँटा मार देने की इच्छा होती है, जब्त कर जाता हूँ, वरना कई शुभचिंतक पिट जाते।

फिर स्कूल मास्टरी। फिर टीचर्स ट्रेनिंग और नौकरी की तलाश–उधर पिताजी मृत्यु के नजदीक। भाई पढ़ाई रोककर उनकी सेवा में। बहनें बड़ी बहन के साथ, हम शिक्षण की शिक्षा ले रहे हैं।

फिर नौकरी की तलाश। एक विद्या मुझे और आ गयी थी–बिना टिकट सफर करना। जबलपुर से इटारसी, टिमरनी, खंडवा, इंदौर, देवास बार–बार चक्कर लगाने पड़ते। पैसे थे नहीं। मैं बिना टिकट बेखटके गाड़ी में बैठ जाता। तरकीबें बचने की बहुत आ गयी थीं। पकड़ा जाता तो अच्छी अंग्रेजी में अपनी मुसीबत का बखान करता। अंग्रेजी के माध्यम से मुसीबत बाबुओं को प्रभावित कर देती और वे कहते–लेट्स हेल्प दि पूअर बॉय।

दूसरी विद्या सीखी–उधार माँगने की। मैं बिल्कुल नि:संकोच भाव से किसी से भी उधार माँग लेता। अभी भी इस विद्या में सिद्ध हूं।

"यहीं कहीं व्यंग्य–लेखक का जन्म हुआ। मैंने सोचा होगा–रोना नहीं है लड़ना है। जो हथियार हाथ में है, उसी से लड़ना है। मैंने तब ढंग से इतिहास, समाज, राजनीति और संस्कृति का अध्ययन शुरू किया। साथ ही एक औघड़ व्यक्तित्व बनाया। और बहुत गंभीरता से व्यंग्य लिखना शुरू कर दिया।"

तीसरी चीज सीखी बेफिक्री। जो होना होगा, होगा, क्या होगा? ठीक ही होगा। मेरी एक बुआ थी। गरीब, जिन्दगी गर्दिश भरी, मगर अपार जीवन–शक्ति थी उसमें। खाना बनने लगता तो उनकी बहु कहती बाई, न दाल ही है न तरकारी। बुआ कहती–चल, चिन्ता नहीं। राह–मोहल्ले में निकलती और जहां उसे छप्पर पर सब्जी दिख जाती, वहीं अपनी हम उम्र मालकिन से कहती–ए कौशल्या, तेरी तोरई अच्छी आ गयी है। जरा दो मुझे तोड़ के दे। और खुद तोड़ लेती। बहू से कहती–ले बना डाल, जरा पानी जादा डाल देना। मैं यहां–वहां से मारा हुआ। उसके पास जाता तो वह कहती–चल, कोई चिन्ता नहीं, कुछ खा ले। उनका यह वाक्य मेरे लिए ताकत बना–कोई चिन्ता नहीं।

गर्दिश, फिर गर्दिश!

होशंगाबाद शिक्षा अधिकारी से नौकरी माँगने गये। निराश हुए। स्टेशन पर इटारसी के लिए गाड़ी पकड़ने के लिए बैठ गया था, पास में एक रुपया था, जो कहीं गिर गया था। इटारसी तो बिना टिकट चला जाता। पर खाऊँ क्या? दूसरे महायुद्ध का जमाना। गाड़ियाँ बहुत लेट होती थीं। पेट खाली। पानी से बार–बार भरता। आखिर बेंच पर लेट गया। 14 घंटे हो गये। एक किसान परिवार पास आकर बैठ गया। टोकरे में अपने खेत के खरबूजे थे, मैं उस वक्त चोरी भी कर सकता था। किसान खरबूजा काटने लगा। मैंने कहा–तुम्हारे ही खेत के होंगे। बड़े अच्छे हैं। किसान ने कहा–सब नर्मदा मैया की किरपा है भैया! शक्कर की तरह हैं। लो खाके देखो। उसने दो बड़ी फाँकें दीं। मैंने कम–से–कम छिलका छोड़ कर खा लिया। पानी पिया। तभी गाड़ी आयी और हम खिड़की से घुस गये।

नौकरी मिली जबलपुर के सरकारी स्कूल में। किराये तक के पैसे नहीं। अध्यापक महोदय ने दरी में कपड़े बाँधे और बिना टिकट चढ़ गये गाड़ी में। सामान के कारण इस बार थोड़ा खटका था। पास में कलेक्टर का खनसामा बैठा था। बातचीत चलने लगी। आदमी मुझे अच्छा लगा। जबलपुर आने लगा तो मैंने उसे अपनी समस्या बतायी। उसने कहा–चिन्ता मत करो। ।समान मुझे दो। मैं बाहर राह देखूँगा। तुम कहीं पानी पीने के बहाने सींखचों के पास पहुँच जाना। नल सींखचों के पास ही है। वहाँ सींखचों को उखाड़ कर निकलने की जगह बनी हुई है। खिसक लेना। मैंने वैसा ही किया। बाहर खानसामा मेरा सामान लिये खड़ा था। मैंने सामान लिया और चल दिया शहर की तरफ। कोई मिल ही जायेगा, जो कुछ दिन पनाह दे देगा, अनिश्चय में जी लेना मुझे तभी आ गया था।

पहले दिन जब बाकायदा 'मास्साब' बने तो अच्छा लगा। पहली तनख्वाह मिली ही थी कि पिताजी की मृत्यु की खबर आ गयी। माँ के बचे जेवर बेच कर पिता का श्राद्ध किया और अध्यापकी के भरोसे बड़ी जिम्मेदारियाँ लेकर जिन्दगी के सफर पर निकल पड़े।

उस अवस्था की इन गर्दिशों का जिक्र मैं आखिर क्यों इस विस्तार से कर गया? गर्दिशें बाद में भी आयीं, अब भी आती हैं, आगे भी आयेंगी पर उस उम्र की गर्दिशों की अपनी अहमियत है। लेखक की मानसिकता और व्यक्तित्व–निर्माण से इनका गहरा संबंध है।

मैंने कहा है–मैं बहुत भावुक, संवेदनशील और बेचैन तबीयत का आदमी हूँ। सामान्य स्वभाव का आदमी ठंडे–ठंडे जिम्मेदारियाँ भी निभा लेता, रोते–गाते दुनिया से तालमेल भी बिठा लेता और एक व्यक्तित्वहीन नौकरीपेशा आदमी की तरह जिन्दगी साधारण संतोष से भी गुजार लेता।

मेरे साथ ऐसा नहीं हुआ, जिम्मेदारियाँ, दुखों की वैसी पृष्ठभूमि और अब चारों तरफ से दुनिया के हमले–इस सबके बीच सबसे बड़ा

जब शर्म की बात गर्व की बात बन जाए, तब समझो कि जनतंत्र बढ़िया चल रहा है।

सवाल था अपने व्यक्तित्व और चेतना की रक्षा। तब सोचा भी नहीं था कि लेखक बनूँगा। पर मैं अपने विशिष्ट व्यक्तित्व की रक्षा तब भी करना चाहता था।

जिम्मेदारी को गैर-जिम्मेदारी की तरह निभाओ!

मैंने तय किया-परसाई, डरो किसी से मत। डरे कि मरे। सीने को ऊपर-ऊपर कड़ा कर लो। भीतर तुम जो भी हो, जिम्मेदारी को गैर-जिम्मेदारी के साथ निभाओ। जिम्मेदारी को अगर जिम्मेदारी के साथ निभाओगे तो नष्ट हो जाओगे। और अपने से बाहर निकल कर सब में मिल जाने से व्यक्तित्व और विशिष्टता की हानि नहीं होती। लाभ ही होता है। अपने से बाहर निकलो। देखो, समझो और हँसो!

मैं डरा नहीं। बेईमानी करने में भी नहीं डरा। लोगों से नहीं डरा, तो नौकरियाँ गयीं। लाभ गये, पद गये, इनाम गये। गैर-जिम्मेदार इतना कि बहन की शादी करने जा रहा हूँ। रेल में जेब कट गयी मगर अगल स्टेशन पर पूड़ी-साग खा कर मजे में बैठा हूँ कि चिन्ता नहीं। कुछ हो ही जायेगा। और हो गया। मेहनत और परेशनी जरूर पड़ी। यों कि बेहद बिजली-पानी के बीच एक पुजारी के साथ बिजली की चमक से रास्ता खोजते हुए रात भर में अपनी बड़ी बहन के गाँव पहुँचना और कुछ घंटे रहकर फिर वापसी यात्रा। फिर दौड़-धूप। मगर मदद आ गयी और शादी भी हो गयी।

इन्हीं सब परिस्थितियों के बीच मेरे भीतर लेखक कैसे जन्मा, यह सोचता हूँ। पहले अपने दुखों के प्रति सम्मोहन था। अपने को दुखी मान कर और मनवा कर आदमी राहत भी पा लेता है। बहुत लोग अपने लिए बेचारा सुनकर संतोष का अनुभव करते हैं। मुझे भी पहले ऐसा लगा। पर मैंने देखा, इतने ज्यादा बेचारों में मैं क्या बेचारा! इतने विकट संघर्षों में मेरा क्या संघर्ष।

मेरा अनुमान है मैंने लेखन को दुनिया से लड़ने के लिए एक हथियार के रूप में अपनाया होगा। दूसरे, इसी में मैंने अपने व्यक्तित्व की रक्षा का रास्ता देखा। तीसरे, अपने को अविशिष्ट होने से बचाने के लिए मैंने लिखना शुरू कर दिया। यह तब की बात है, मेरा खयाल है, तब ऐसी ही बात होगी।

पर जल्दी ही मैं व्यक्तिगत दु:ख के इस सम्मोहन-जाल से निकल गया। मैंने अपने को विस्तार दे दिया। दुखी और भी हैं। अन्याय-पीड़ित और भी हैं। अनगिनत शोषित हैं। मैं उनमें से एक हूँ। पर मेरे हाथ में कलम है और मैं चेतना-सम्पन्न हूँ।

यहीं कहीं व्यंग्य-लेखक का जन्म हुआ। मैंने सोचा होगा-रोना नहीं है लड़ना है। जो हथियार हाथ में है, उसी से लड़ना है। मैंने तब ढंग से इतिहास, समाज, राजनीति और संस्कृति का अध्ययन शुरू किया। साथ ही एक औघड़ व्यक्तित्व बनाया। और बहुत गंभीरता से व्यंग्य लिखना शुरू कर दिया।

मुक्ति अकेले की नहीं होती। अलग से अपना भला नहीं हो सकता। मनुष्य की छटपटाहट है मुक्ति के लिए, सुख के लिए, न्याय के लिए। पर यह बड़ी लड़ाई अकेले नहीं लड़ी जा सकती है। अकेले वही सुखी है, जिन्हें कोई लड़ाई नहीं लड़नी। उनकी बात अलग है। अनगिनत लोगों को सुखी देखता हूँ और अचरज करता हूँ कि ये सुखी कैसे हैं। न उनके मन में सवाल उठते, न शंका उठती है। ये जब-तब सिर्फ शिकायत कर लेते हैं। शिकायत भी सुख देती है। और वे ज्यादा सुखी हो जाते हैं। कबीर ने कहा है -

सुखिया सब संसार है, खावै और सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै और रोवै।।

जागने वाले का रोना कभी खत्म नहीं होता। व्यंग्य-लेखक की गर्दिश भी खत्म नहीं होगी।

ताजा गर्दिश यह है कि पिछले दिनों राजनीतिक पद के लिए पापड़ बेलते रहे। कहीं से उम्मीद दिला दी गयी कि राज्य सभा में हो जायेगा। एक महीना बड़ी गर्दिश में बीता। घुसपैठ की आदत नहीं है चिट भीतर भेज कर बाहर बैठे रहने में हर क्षण मृत्यु, पीड़ा होती है। बहादुर लोग तो महीनों चिट भेज कर बाहर बैठे रहते हैं, मगर मरते नहीं। अपने से नहीं बनता। पिछले कुछ महीने ऐसी गर्दिश के थे। कोई लाभ खुद चल कर दरवाजे पर नहीं आता। उसे मनाना पड़ता है। चिरौरी करनी पड़ती है। लाभ थूकता है तो उसे हथेली पर लेना पड़ता है। इस कोशिश में बड़ी तकलीफ हुई। बड़ी गर्दिश भोगी।

मेरे जैसे लेखक की एक और गर्दिश है। भीतर जितना बवंडर महसूस कर रहे हैं, उतना शब्दों में नहीं आ रहा है, तो रात-दिन बेचैन हैं। यह बड़ी गर्दिश का वक्त होता है, जिसे सर्जक ही समझ सकता है।
यों गर्दिशों की एक याद है। पर सही बात यह है कि कोई दिन गर्दिश से खाली नहीं है। और न कभी गर्दिश का अन्त होना है। यह और बात है कि शोभा के लिए कुछ अच्छे किस्म की गर्दिशें चुन ली जायें। उनका मेकअप कर दिया जाये, उन्हें अदाएँ सिखा दी जायें-थोड़ी चुलबुली गर्दिश हो तो और अच्छा-और पाठक से कहा जाये-ले भाई, देख मेरी गर्दिश।

मूल पाण्डुलिपि 24 पृष्ठों में अवलोकन पृष्ठ क्र. 50 से 55 तक

■

इस देश के बुद्धिजीवी शेर हैं पर वे सियारों की बारात में बैंड बजाते हैं।

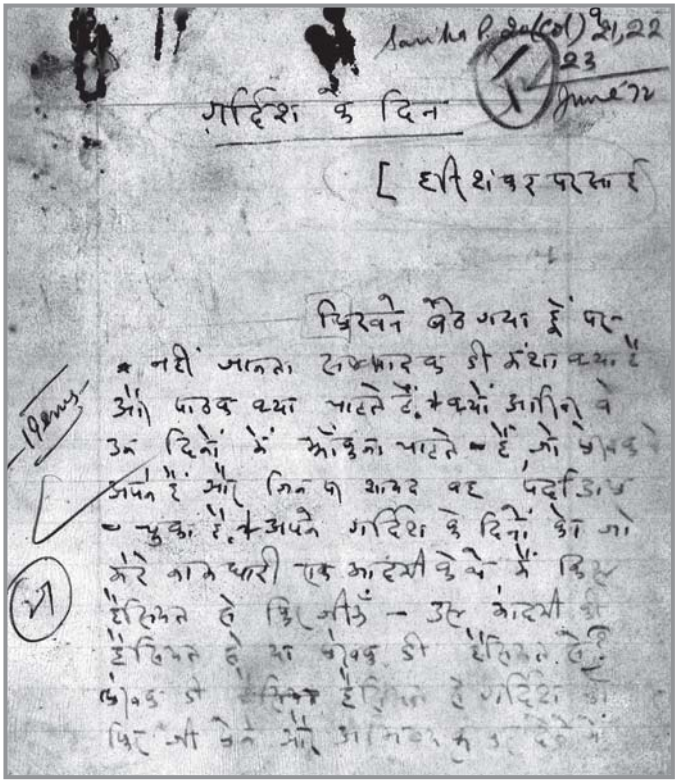

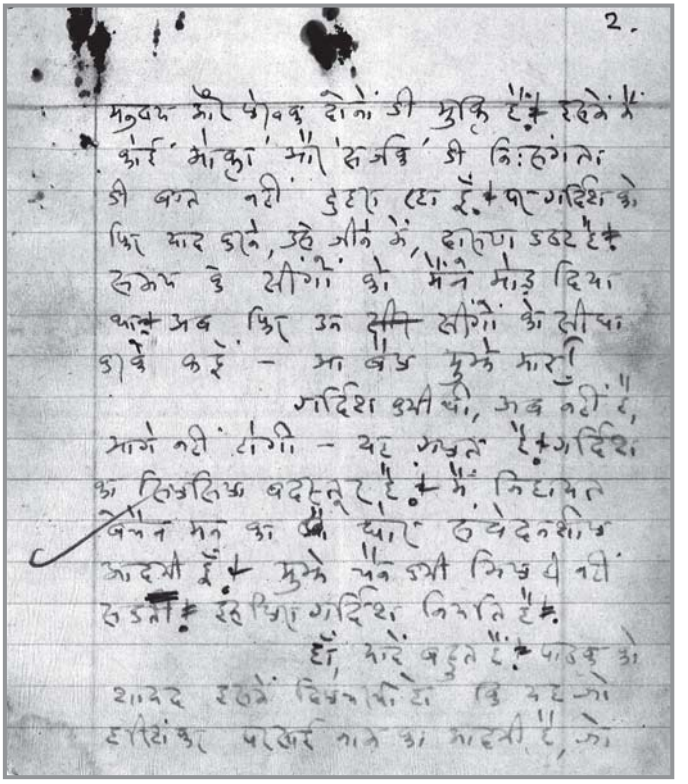

हरिशंकर परसाई द्वारा हस्तलिखित पांडुलिपि सौजन्य: रामराव वामनकर, करूणा राजुरकर
दुष्यंत कुमार स्मारक पांडुलिपि संग्रहालय भोपाल म.प्र.

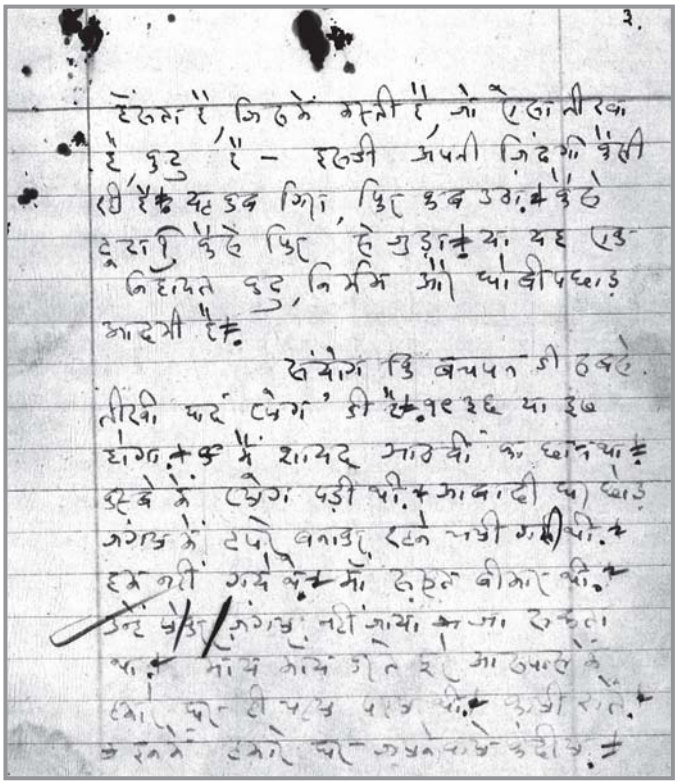

गर्दिश के दिन

[हरिशंकर परसाई

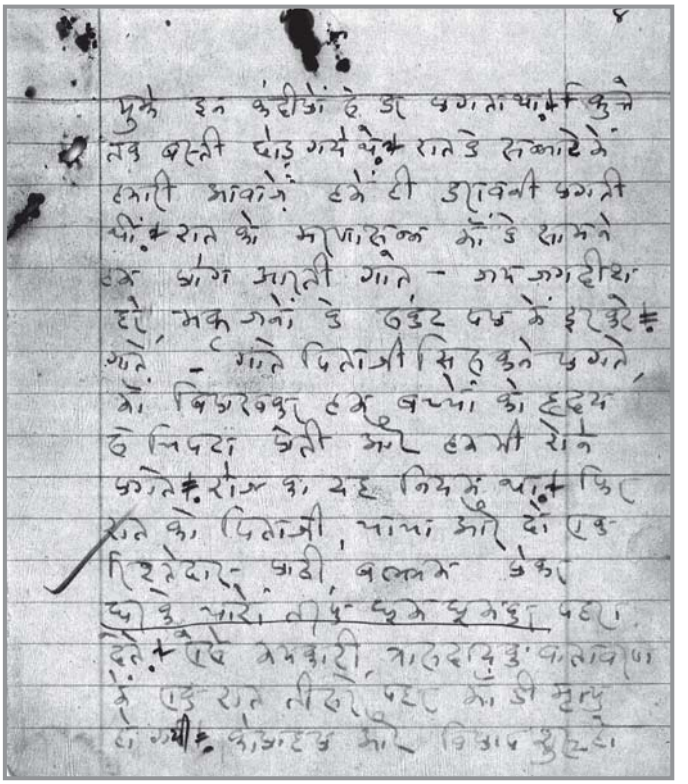

व्यस्त आदमी को काम करने में जितने अक्ल की जरूरत पड़ती है, उससे ज़्यादा अक्ल बेकार आदमी को समय काटने में लगती है.

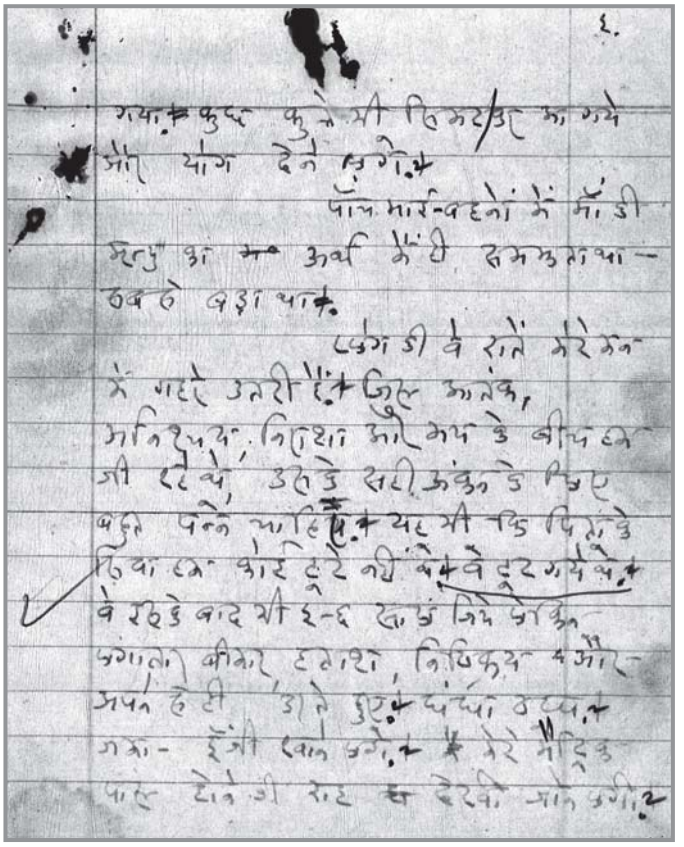

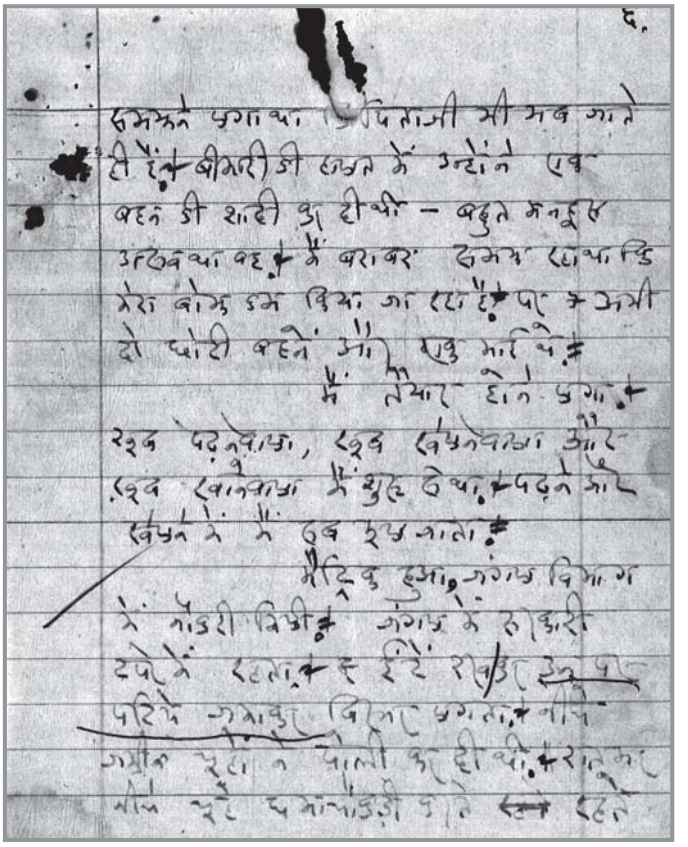

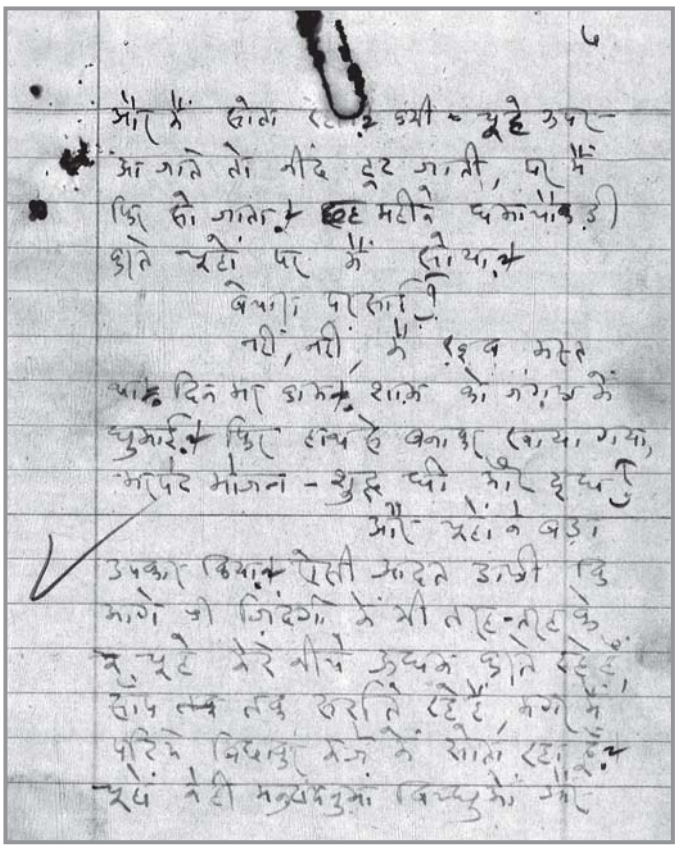

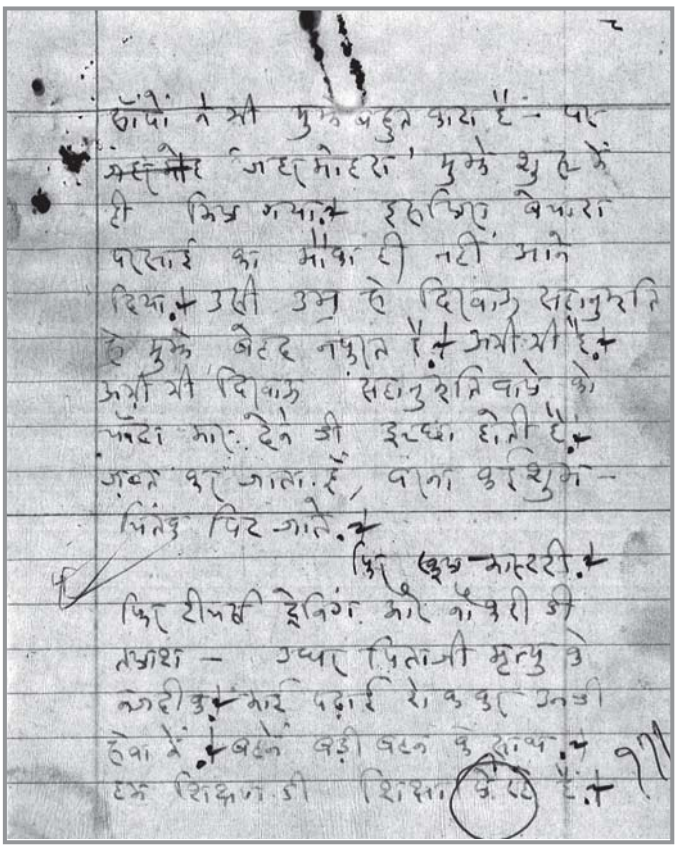

६.

गया। कुछ कुत्ते भी निकटतर आ गये और खांग देने लगे।

पाँच भाई-बहनों में माँ की मृत्यु का अर्थ मैं ही समझता था — सब से बड़ा था।

बचपन की वे रातें मेरे मन में गहरे उतरी हैं। जिसमें आतंक, अनिश्चय, निराशा और भय के बीच हम जी रहे थे, उनके सही अंकन के लिए बहुत पन्ने चाहिए। यह भी कि पिता के सिवा हम का कोई दूर नहीं थे। वे दूर गये थे। वे रहने के बाद भी ६-६ साल जिये लेकिन लगातार बीमार, हताशा, निष्क्रिय और अपने से ही डरते हुए। धंधा उजड़ गया — ऐसी हालत में। मेरे मैट्रिक पास होने की राह सब देखने लगे।

७.

समझने लगा था। पिताजी भी मान जाते ही हैं। बीमारी की हालत में उन्होंने एक बहन की शादी कर दी थी — बहुत मजबूर अवस्था थी वह। मैं बराबर समझ रहा था कि मेरा बोझ कम किया जा रहा है। पर अभी दो छोटी बहनें और एक भाई थे।

मैं तैयार होने लगा। खूब पढ़नेवाला, खूब खेलनेवाला और खूब खानेवाला मैं शुरू से था। पढ़ने और खेलने में मैं डूब जाता।

मैट्रिक हुआ, जंगल विभाग में नौकरी मिली। जंगल के सरकारी टप्पे में रहता। ~~[illegible]~~ परिवार [illegible] लगता। नीचे जमीन चूहों ने पोली कर दी थी। रात भर नीचे चूहे धमाचौकड़ी करते रहते

८

और मैं सोता रहता। कभी चूहे ऊपर आ जाते तो नींद टूट जाती, पर मैं फिर सो जाता। छह महीने धमाचौकड़ी करते चूहों पर मैं सोया।

बेचारा परसाई!

नहीं, नहीं, मैं इस महत्त्व आठ दिन भर काम, शाम को जंगल में घुमाई। फिर हाथ से बनाकर खाया गया, भरपेट भोजन — शुद्ध घी और दूध!

और चूहों ने बड़ा उपकार किया। ऐसी आदत डाली कि आगे की जिंदगी में भी तरह-तरह के चूहे मेरे नीचे ऊधम करते रहे हैं, सांप तक सरसराते रहे हैं, मगर मैं पड़े निश्चिंत मजे से सोता रहा हूँ। चूहे मेरी मनुष्यता बिच्छुओं और

९

सांपों ने भी मुझे बहुत काटा है — पर ~~सब और~~ 'जहरमोहरा' मुझे शुरू में ही मिल गया। इसलिए बेचारा परसाई का मौका ही नहीं आने दिया। उसी उम्र से दिखाऊ सहानुभूति से मुझे बेहद नफरत है। अभी भी है। अभी भी दिखाऊ सहानुभूति वाले को चांटा मार देने की इच्छा होती है। जब्त कर जाता हूँ, वरना कई शुभचिंतक पिट जाते।

फिर ~~स्कूल~~ मास्टरी। फिर टीचर्स ट्रेनिंग और नौकरी की तलाश — उधर पिताजी मृत्यु के नजदीक। भाई पढ़ाई रोककर उनकी सेवा में। बहनें बड़ी बहन के साथ। हम शिक्षण की शिक्षा ले रहे हैं।

बेइज्जती में अगर दूसरे को भी शामिल कर लो तो आधी इज्जत बच जाती है।

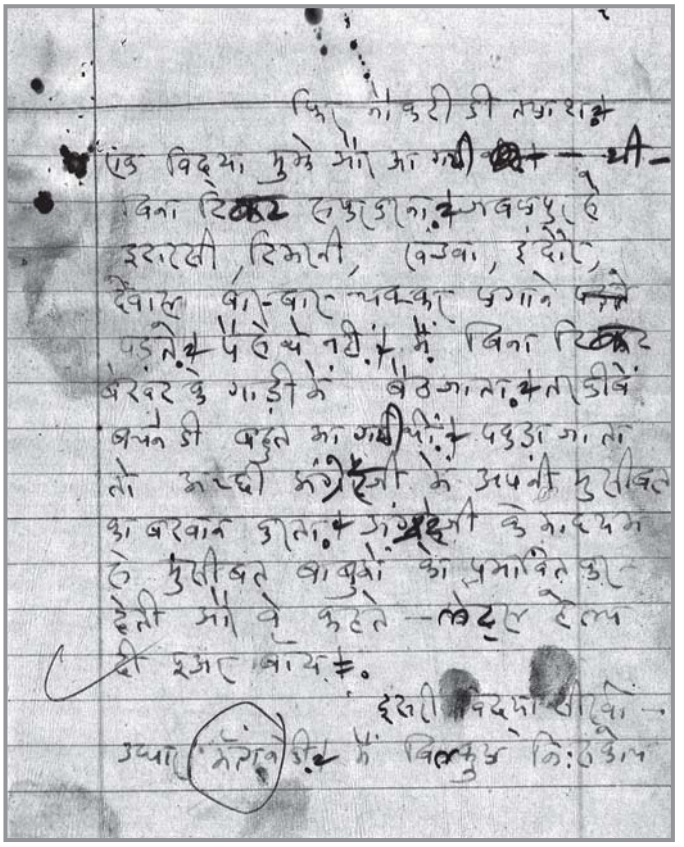

९

फिर नौकरी की तलाश।

एक विद्या मुझे और आ गयी थी —
बिना टिकट सफर करना। जबलपुर से
इटारसी, टिमरनी, खण्डवा, इंदौर,
देवास बार-बार चक्कर लगाने पड़ते।
पैसे थे नहीं। मैं बिना टिकट
बेखटके गाड़ी में बैठ जाता। तरकीबें
बचने की बहुत आ गयी थीं। पकड़ा जाता
तो अच्छी अंग्रेजी में अपनी मुसीबत
का बखान करता। अंग्रेजी के माध्यम
से मुसीबत बाबुओं को प्रभावित कर
देती और वे कहते — [illegible]
[illegible]।

इसी विद्या ने सिखाया —
उधार मांगने में बिलकुल निःसंकोच

१०

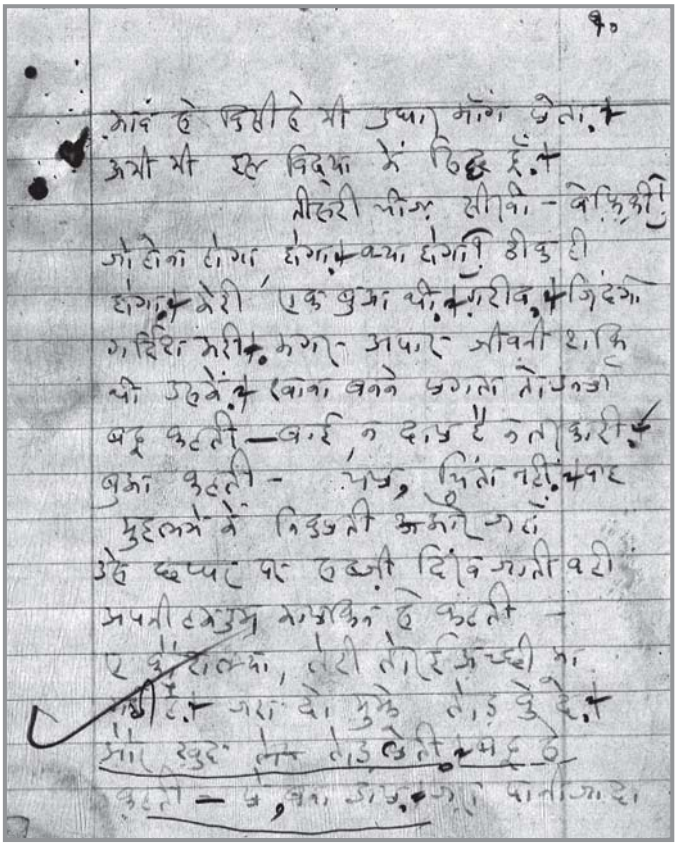

आदमी से किसी से भी उधार मांग लेता।
अभी भी इस विद्या में सिद्ध हूँ।

तीसरी चीज़ सीखी — बेफ़िक्री!

जो होना होगा, होगा। क्या होगा? ठीक ही
होगा। मेरी एक बुआ थी। गरीब। जिंदगी
गर्दिश भरी। मगर अपार जीवनी शक्ति
थी उनमें। खाना बनाने लगतीं तो पता चलता,
बहू कहती — बाई, न दाल है न तरकारी।
बुआ कहती — चल, चिंता नहीं। वह
मोहल्ले में निकल जातीं और
किसी के छप्पर पर से कद्दू तोड़ लाती या
अपनी हमउम्र पड़ोसिन से कहती —
ए दुलहिन, तेरी तोरई अच्छी आ
गयी है। ज़रा दो मुझे तोड़ दे।
और खुद तोड़ लेती। बहू से
कहती — ले, बना डाल। [illegible]

११

उम्र देखा मैं यहाँ-वहाँ से मारा हुआ
उनके पास जाता तो वह कहती — चल,
कोई चिंता नहीं। कुछ खा ले।

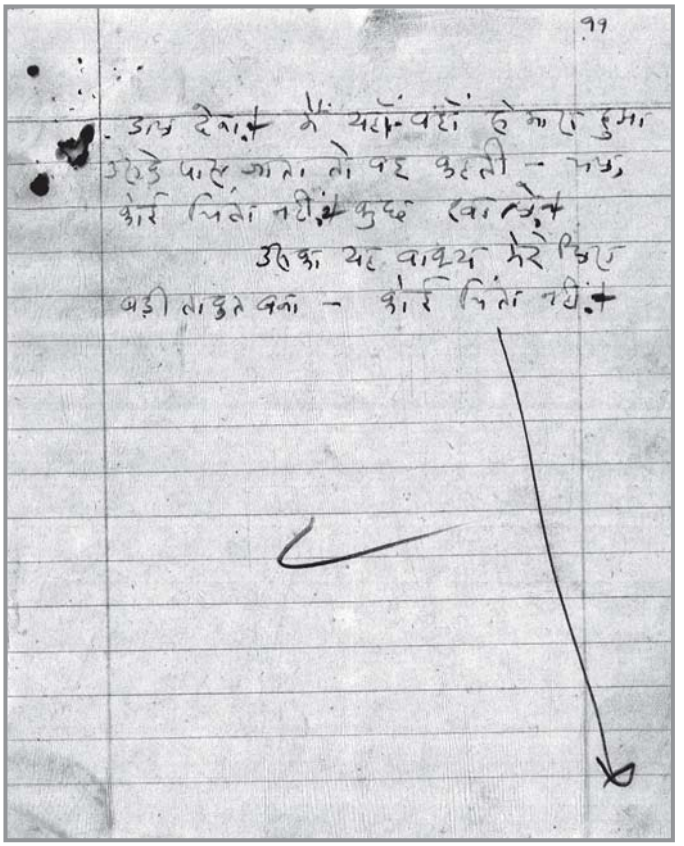

उनका यह वाक्य मेरे लिए
बड़ी ताकत बना — कोई चिंता नहीं।

गर्दिश के दिन (शेषांश) १२.

added para 6 ...12.73 —

गर्दिश, फिर गर्दिश!

होशंगाबाद शिक्षा

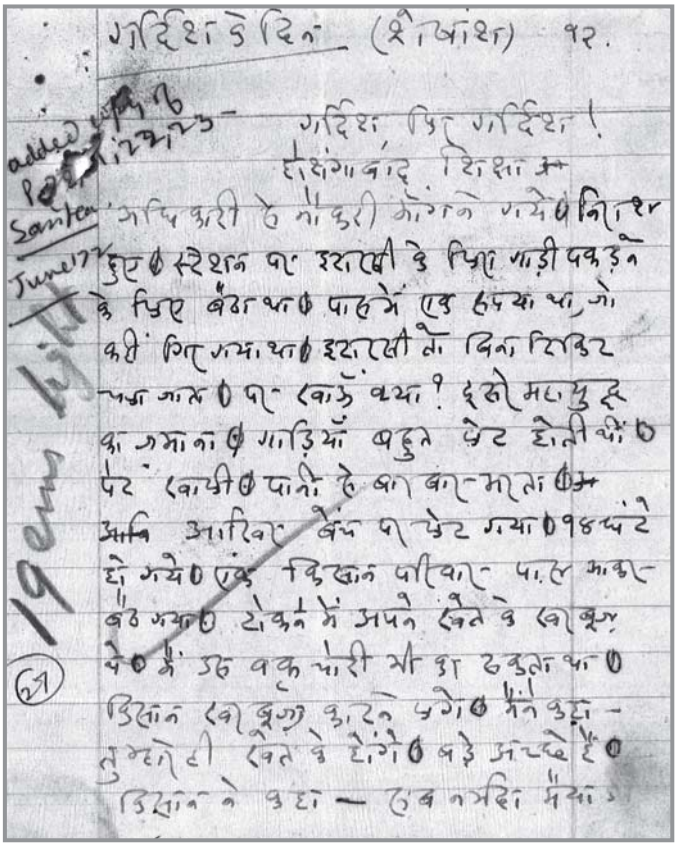

Santosh June '77

अधिकारी से नौकरी मांगने गये। निराश
हुए। स्टेशन पर इटारसी के लिए गाड़ी पकड़ने
के लिए बैठा था। पास में एक रुपया था, जो
कहीं गिर गया था। इटारसी तो बिना टिकट
चला जाता। पर खाऊँ क्या? दूसरे महायुद्ध
का ज़माना। गाड़ियाँ बहुत लेट होती थीं।
पेट खाली। पानी से बार-बार भरता।
और आखिर बेंच पर लेट गया। १४ घंटे
हो गये। एक किसान परिवार पास आकर
बैठ गया। टोकने में अपने खेत के खरबूज
थे। मैं उस वक्त चोरी भी कर सकता था।
किसान खरबूज काटने लगे। मैंने कहा —
तुम्हारे ही खेत के होंगे। बड़े अच्छे हैं।
किसान ने कहा — हव नरदा भैया।

19 ems light

27

यश ही परमार्थ है. हमें एक काम ऐसा जरूर करना चाहिए, जिससे नाम अमर रहे.

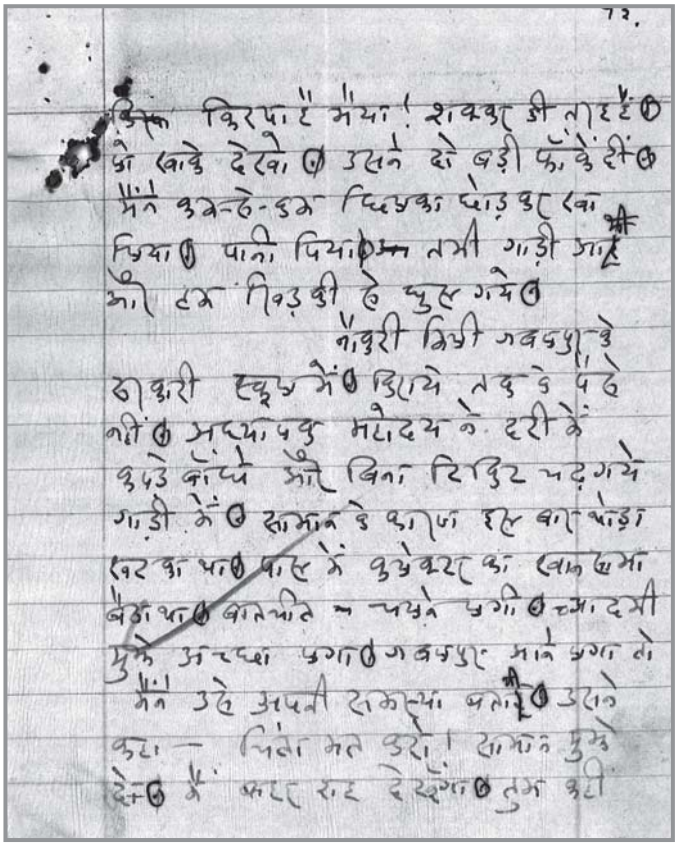

१३.

ठीक किरपा है भैया! शक्कर की तरह है।
फाँक खाके देखो। उसने दो बड़ी फाँकें दीं।
मैंने उन्हें-उन्हें छिलका छोड़कर खा
लिया। पानी पिया। तभी गाड़ी आई
और हम खिड़की से घुस गये।
नौकरी मिली जबलपुर के
सरकारी स्कूल में। छोटे तबके के पढ़े
नहीं। अध्यापक महोदय के हरी के
कपड़े काँपे और बिना टिकिट चढ़ गये
गाड़ी में। सामान के नाम इस बार थोड़ा
ज़्यादा था। पास में कुबेरदास का खानसामा
बैठा था। बातचीत चल पड़ी। आदमी
मुझे अच्छा लगा। जबलपुर आने लगा तो
मैंने उसे अपनी समस्या बताई। उसने
कहा — चिंता मत करो! सामान मुझे
दे दो। मैं बाहर रख दूँगा। तुम भी

१४

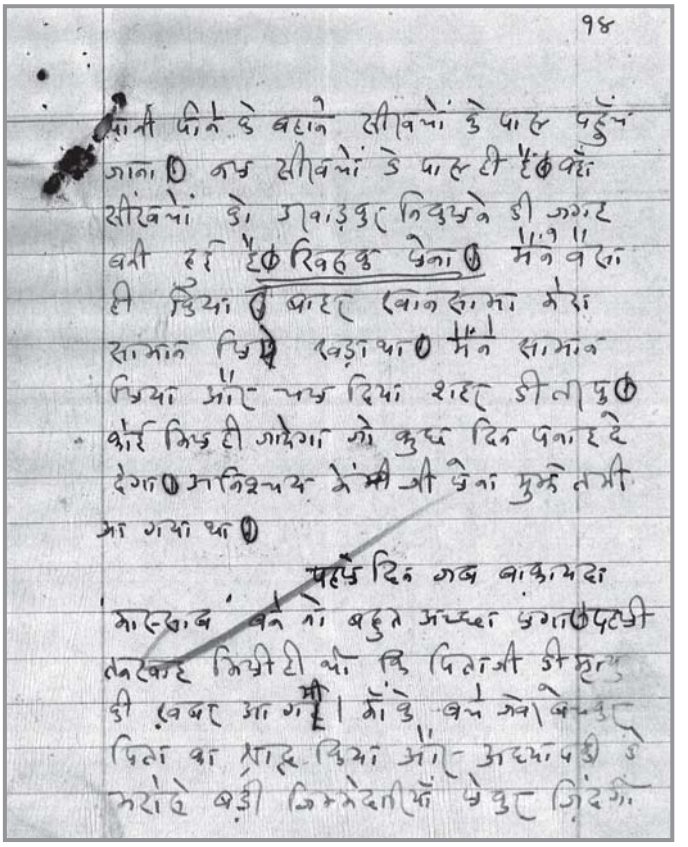

पानी पीने के बहाने सीखचों के पास पहुँच
जाना। जब सीखचों के पास ही है, वहाँ
सीखचों को उखाड़कर निकलने की जगह
बनी हुई है। निकल लेना। मैंने वैसा
ही किया। बाहर खानसामा मेरा
सामान लिये खड़ा था। मैंने सामान
लिया और चल दिया शहर की तरफ़।
कोई मिल ही जायेगा जो कुछ दिन पनाह दे
देगा। अनिश्चय में भी जीना मुझे तभी
आ गया था।
पहले दिन जब बाकायदा
मास्टरजी बने तो बहुत अच्छा लगा। पहली
तनख्वाह मिली ही थी कि पिताजी की मृत्यु
की खबर आ गई। माँ के बने गेहूँ बेचकर
पिता का श्राद्ध किया और अध्यापकी के
सहारे बड़ी जिम्मेदारियाँ लेकर ज़िंदगी

१५.

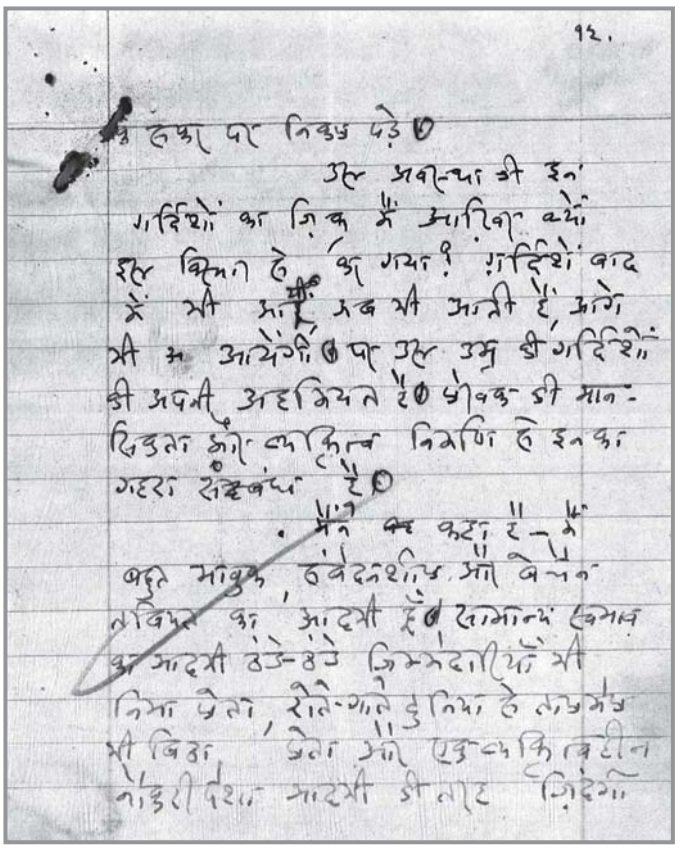

के रास्ते पर निकल पड़े।
उस अवस्था की इन
गर्दिशों का ज़िक्र मैं आखिर क्यों
इस किस्से से कर गया? गर्दिशें बाद
में भी आईं, अब भी आती हैं, आगे
भी आयेंगी। पर उस उम्र की गर्दिशों
की अपनी अहमियत है। लेखक की मान-
सिकता और व्यक्तित्व निर्माण से इनका
गहरा संबंध है।
मैं कहता हूँ — मैं
बहुत भावुक, संवेदनशील और बेचैन
तबियत का आदमी हूँ। सामान्य स्वभाव
का आदमी ऐसे-ऐसे जिम्मेदारियाँ भी
निभा लेता, रोते-गाते दुनिया से तालमेल
भी बिठा लेता और एक व्यक्तित्वहीन
नौकरीपेशा आदमी की तरह ज़िंदगी

१६.

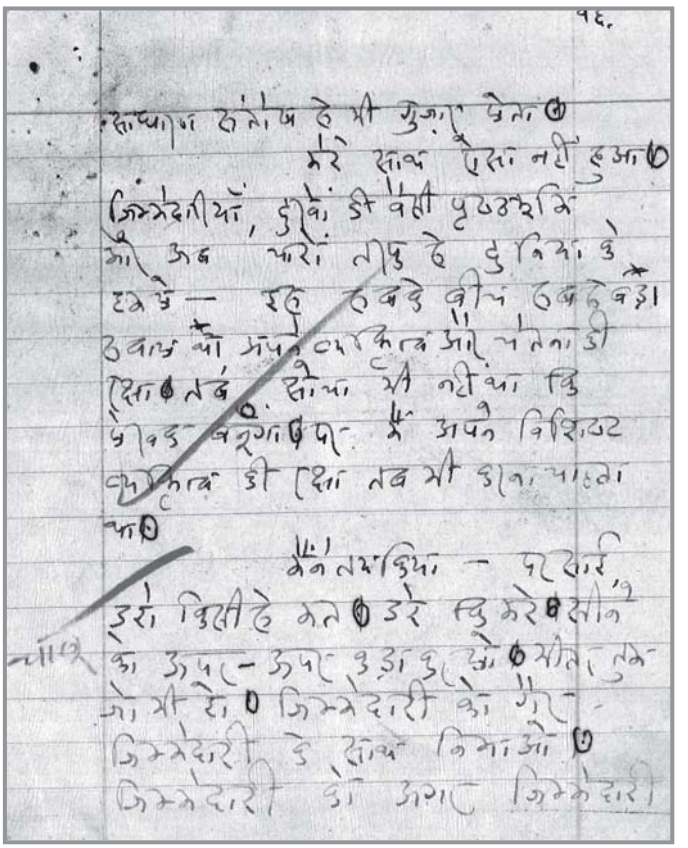

साधारण संतोष से भी गुज़ार लेता।
मेरे साथ ऐसा नहीं हुआ।
जिम्मेदारियाँ, दुखों की वही पृष्ठभूमि
और अब चारों तरफ से दुनिया के
हमले — इस सबके बीच सबसे बड़ा
सवाल था अपने व्यक्तित्व और चेतना की
रक्षा। तब सोचा भी नहीं था कि
लेखक बनूँगा। पर मैं अपने विशिष्ट
व्यक्तित्व की रक्षा तब भी करना चाहता
था।
मैंने तय किया — परसाई,
डरो किसी से मत। डरे कि मरे। सीने
को ऊपर-ऊपर कड़ा कर लो। भीतर तुम
जो भी हो। जिम्मेदारी को गैर-
जिम्मेदारी के साथ निभाओ।
जिम्मेदारी को अगर जिम्मेदारी

चश्मदीद वह नहीं है, जो देखे; बल्कि वह है, जो कहे कि मैंने देखा।

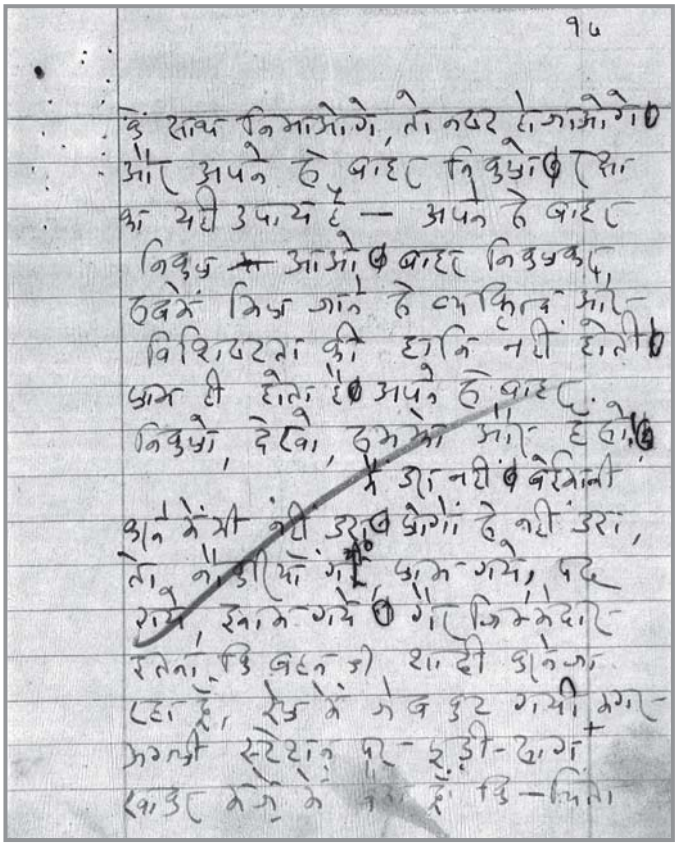

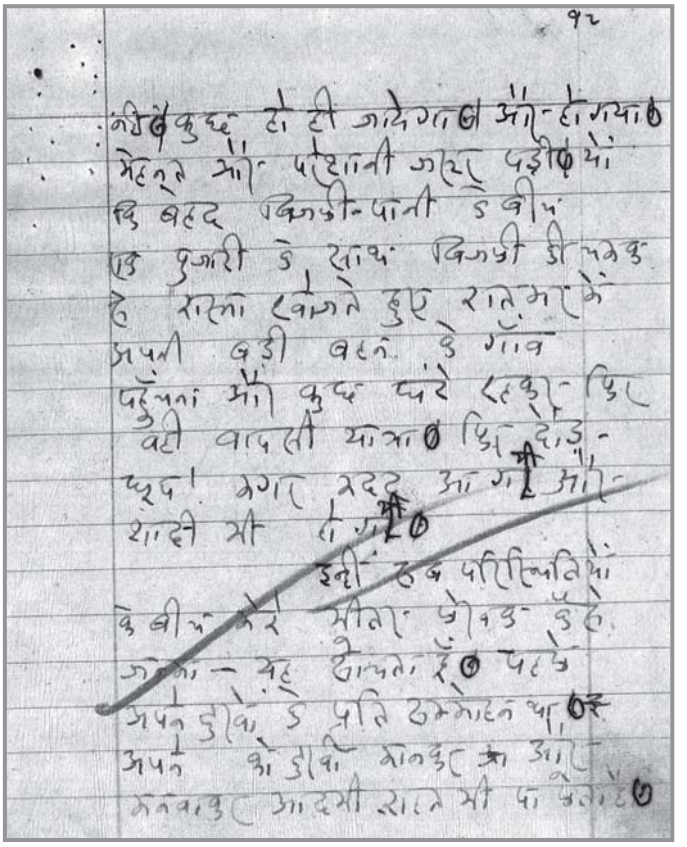

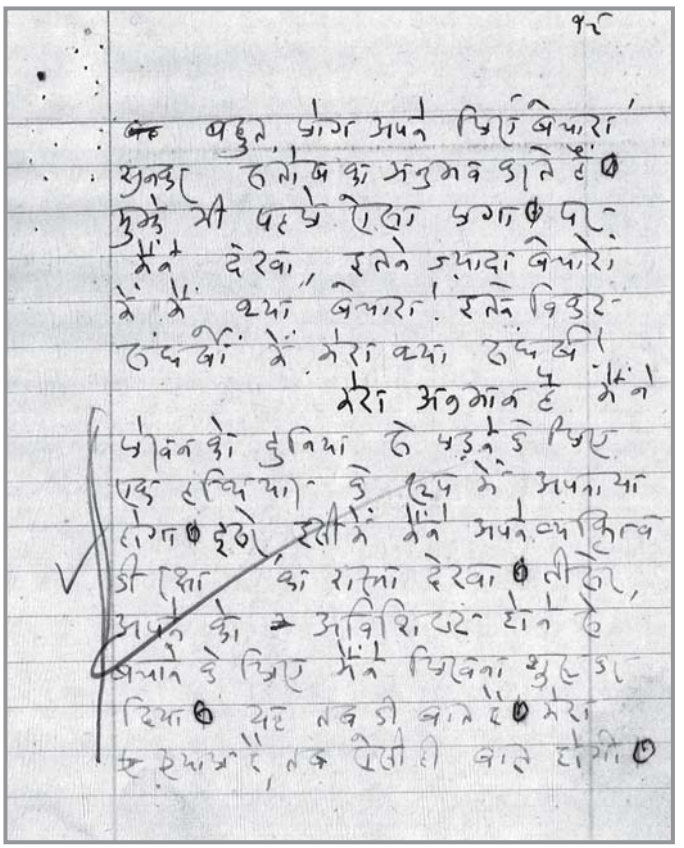

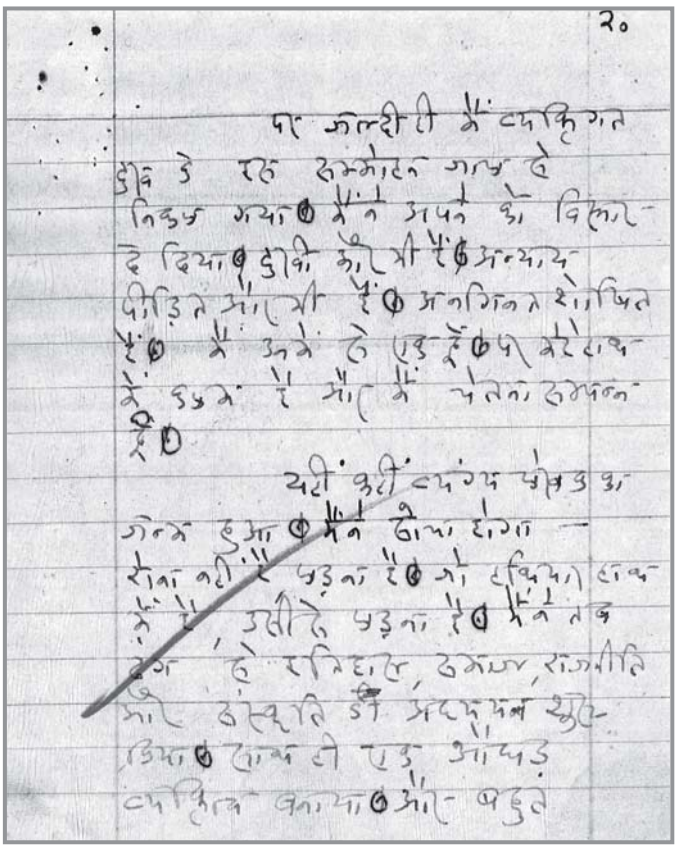

१६

के साथ निभाओगे, तो बदतर हो जाओगे। और अपने से बाहर निकलो। इसका यही उपाय है — अपने से बाहर निकल आओ। बाहर निकलकर, उसमें मिल जाने से व्यक्तित्व और विशिष्टता की हानि नहीं होती। लाभ ही होता है। अपने से बाहर निकलो, देखो, समझो और सहो।
मैं ऐसा नहीं। बेटियाँ ... मैंने भी नहीं उठाया लोगों से कहीं उठा, तो कौड़ियाँ गईं, काम गये, पद गये, इनाम गये। गैर जिम्मेदार इतना कि बहन की शादी करने जा रहा है, रेल में जेब कट गयी मगर अगले स्टेशन पर कुड़ी-ढांग खाकर बैठे के ... हैं कि — चिंता

१७

नहीं। कुछ हो ही जायेगा। और हो गया। मेहनत और परेशानी जरूर पड़ी। यों कि बेहद बिजली-पानी के बीच एक पुजारी के साथ बिजली की चमक से रास्ता खोजते हुए रात भर में अपनी बड़ी बहन के गाँव पहुँचना और कुछ रुपये लेकर फिर वही वापसी यात्रा। फिर दौड़-धूप! मगर मदद आ गयी और शादी भी हो गयी।
इन्हीं सब परिस्थितियों के बीच मेरे भीतर जोकर के जन्मा — यह मानता हूँ। पहले अपने दुःखों के प्रति सम्मोहन था। अपने को दुःखी मानकर और मनवाकर आदमी राहत भी पा लेता है।

१९

बहुत लोग अपने लिए बेचारा सुनकर हीनता का अनुभव करते हैं। मुझे भी पहले ऐसा लगा था। पर मैंने देखा, इतने ज्यादा बेचारों में मैं क्या बेचारा! इतने विकट हादसों में मेरा क्या हादसा!
मेरा अनुमान है मैंने जीवन की दुनिया से लड़ने के लिए एक हथियार के रूप में अपनाया होगा। दूसरे, इसी में मैंने अपने व्यक्तित्व की रक्षा का रास्ता देखा। तीसरे, अपने को अविशिष्ट होने से बचाने के लिए मैंने लिखना शुरू कर दिया। यह तब की बातें हैं। मेरा ख्याल है, तब ऐसी ही बातें होंगी।

२०

पर जल्दी ही मैं व्यक्तिगत दुःख के इस सम्मोहन जाल से निकल गया। मैंने अपने को विस्तार दे दिया। दुःखी और भी हैं। अन्याय पीड़ित और भी हैं। अनगिनत शोषित हैं। मैं उनमें से एक हूँ। पर मेरे हाथ में कलम है और मैं चेतना सम्पन्न हूँ।
यहीं कहीं व्यंग्य लेखक का जन्म हुआ। मैंने सोचा होगा — रोना नहीं है, लड़ना है। जो हथियार हाथ में है, उसी से लड़ना है। मैंने तब ढंग से इतिहास, समाज, राजनीति और संस्कृति का अध्ययन शुरू किया। साथ ही एक औघड़ व्यक्तित्व बनाया और बहुत

नाक की हिफ़ाज़त सबसे ज़्यादा इसी देश में होती है...

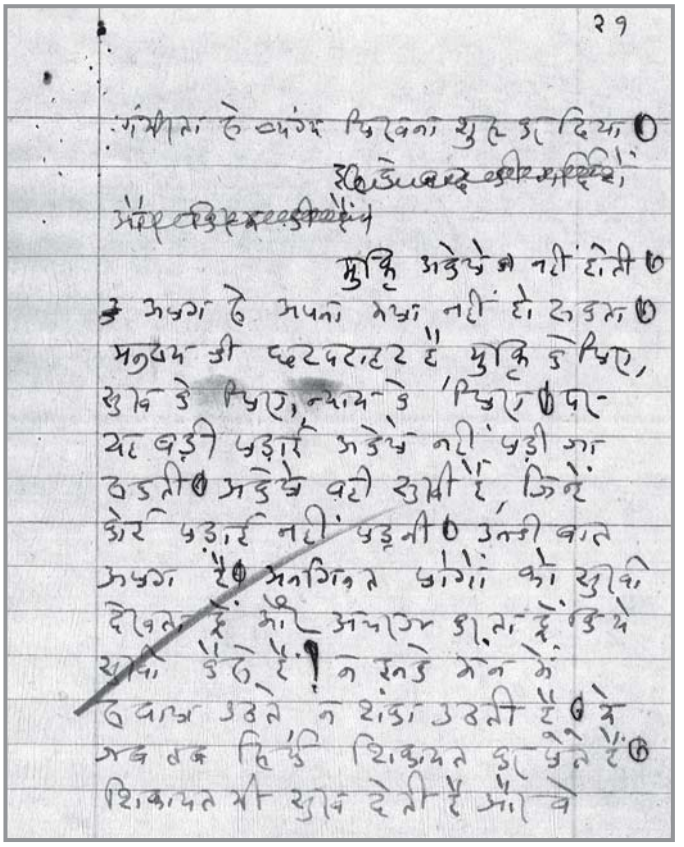

२१

गंभीरता से व्यंग्य लिखना शुरू कर दिया।

मुक्ति अकेले की नहीं होती। अलग से अपना भला नहीं हो सकता। मनुष्य की छटपटाहट है मुक्ति के लिए, सुख के लिए, न्याय के लिए। पर यह बड़ी लड़ाई अकेले नहीं लड़ी जा सकती। अकेले वही सुखी हैं, जिन्हें कोई लड़ाई नहीं लड़नी। उनकी बात अलग है। अनगिनत लोगों को सुखी देखता हूँ और अचरज करता हूँ कि ये सुखी कैसे हैं! न उनके मन में सवाल उठते न शंका उठती है। ये जब तक सिर्फ शिकायत कर लेते हैं। शिकायत भी सुख देती है और वे

२२

ज्यादा सुखी हो जाते हैं। कबीर ने कहा है —

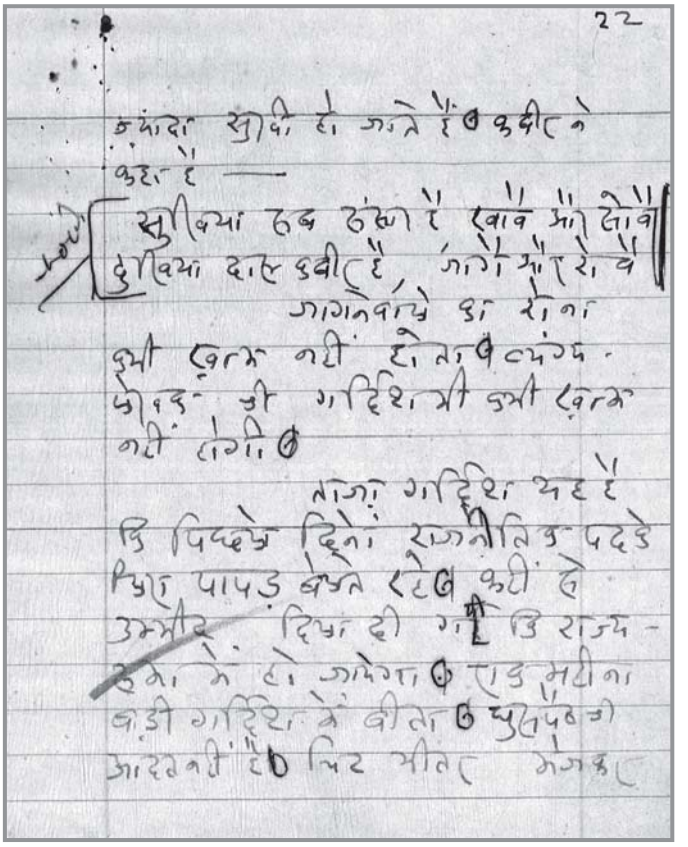

सुखिया सब संसार है, खावै और सोवै
दुखिया दास कबीर है, जागै और रोवै

जागनेवाले का रोना कभी खत्म नहीं होता। व्यंग्य-लेखक की गर्दिश भी कभी खत्म नहीं होगी।

ताजा गर्दिश यह है कि पिछले दिनों राजनैतिक पद के लिए पापड़ बेलते रहे। कहीं से उम्मीद दिला दी गई कि राज्य-सभा में हो जायेगा। एक महीना बड़ी गर्दिश में बीता। [illegible] आदत नहीं है। फिर भीतर [illegible]

२३

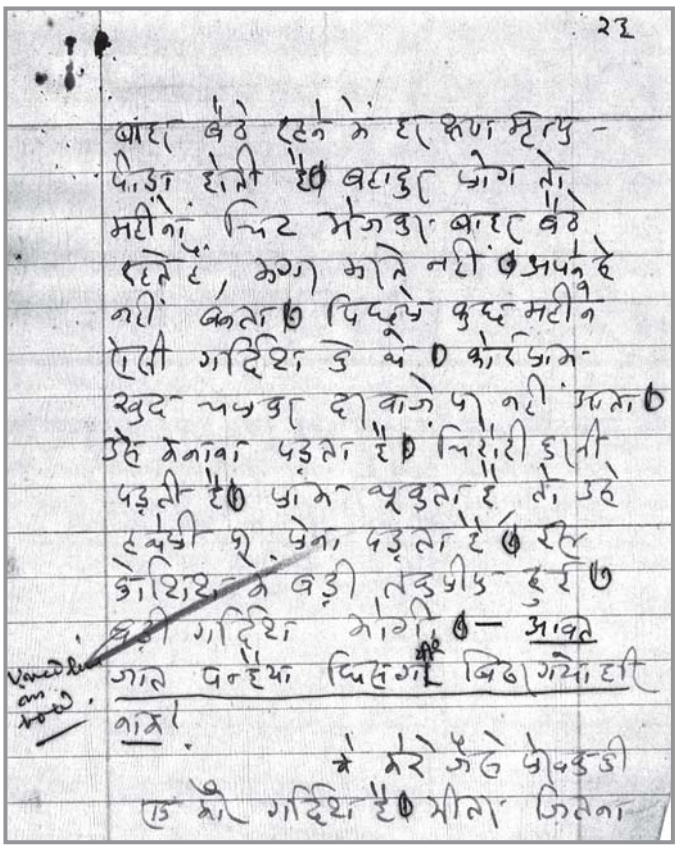

बाहर बैठे रहने में हर क्षण मृत्यु-पीड़ा होती है। बहादुर लोग तो महीनों, फिर [illegible] बाहर बैठे रहते हैं, ऊब जाते नहीं। अपने से नहीं बनता। पिछले कुछ महीने ऐसी गर्दिश के थे। कोई काम खुद चलकर दरवाजे पर नहीं आता। उसे मनाना पड़ता है। सिफारिश करानी पड़ती है। काम रुकता है तो उसे रिश्वत दे देना पड़ता है। इस कोशिश में बड़ी तकलीफ हुई। बड़ी गर्दिश भोगी। — आवत जात पन्हैया घिस गईं बिसर गयो हरि नाम!

ये मेरे जैसे लोगों की एक और गर्दिश है। भीतर जितना

२४

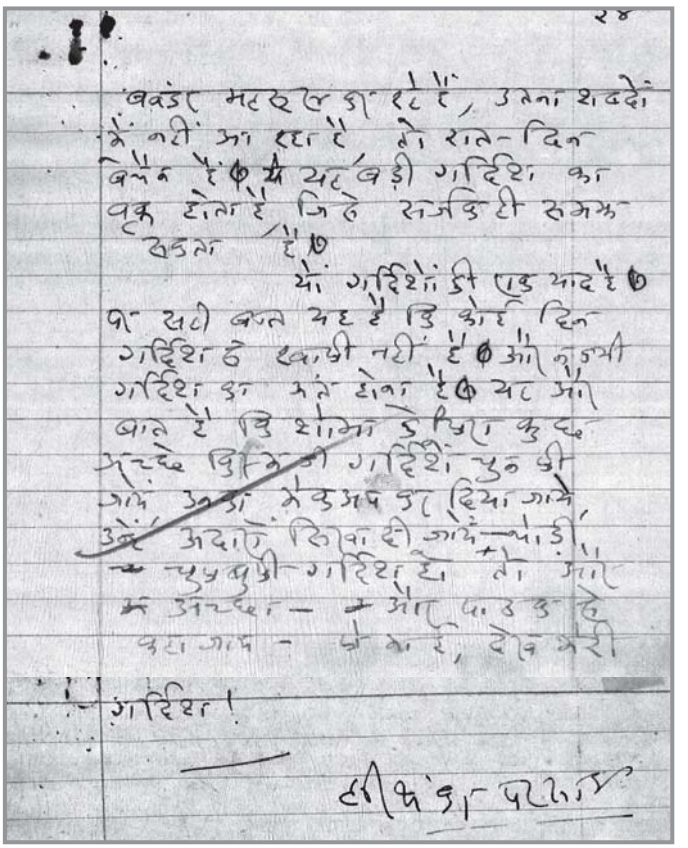

बवंडर मचा रहता है, उतना शब्दों में नहीं आ रहा है तो रात-दिन बेचैन हैं। यह बड़ी गर्दिश का वक्त होता है जिसे सर्जक ही समझ सकता है।

यों गर्दिशों की एक याद है। पर सही बात यह है कि कोई दिन गर्दिश से खाली नहीं है। और न इसी गर्दिश का अंत होना है। यह और बात है कि शोभा के लिए कुछ अच्छे किस्म की गर्दिशें चुन ली जायें उनका मेकअप कर दिया जाये, उन्हें अदाएं सिखा दी जायें — थोड़ी चुलबुली गर्दिश हो तो और अच्छा — और पाठक से कहा जाये — ले भाई, देख मेरी गर्दिश!

हरिशंकर परसाई

जो आदमी स्वार्थ का बिल्कुल विसर्जन कर दे, वह बहुत खतरनाक हो जाता है. वह दूसरे के प्राण तक ले लेना अपना नैतिक अधिकार समझता है.

व्यंग्य आलेख

अफसर के रिटायरमेंट का दर्द

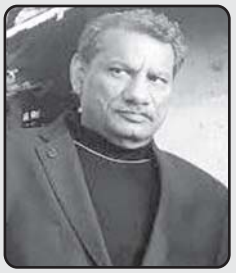

उमेश कुमार गुप्ता

अफसर के रिटायरमेंट के जैसा दूसरा दर्द दुनिया में कोई नहीं है। इस दर्द की तुलना उस मंत्री के गम से भी नहीं कर सकते हैं जो सत्ता में होते हुए, सब सरकारी साजो-सामान के बावजूद भी चुनाव हार जाता है और घर का न घाट का की कहावत को चरितार्थ करता है।

अगर इस दर्द का स्वाद लेना है तो किसी रिटायर्ड अफसर से उसका नाम पूछिये। वह सेवानिवृत्त अधिकारी बतायेगा और इस सेवानिवृत्त शब्द के साथ इतना दर्द उलट देगा कि आप इसके रिटायरमेंट के दुख से अवश्य परिचित हो जायेंगे।

रिटायरमेंट के नाम से ही अफसरों को बेहोशी आने लगती है। उनके सुकोमल पांवों में, जिन्होंने कभी धरती माता के कदम न चूमे हों, और सारी नौकरी जीप में बैठे-बैठे गुजार दी हो, कपकंपी छूट जाती है।

सारी जिन्दगी वातानुकूल कमरे में गुजारने के बाद बाहर की भीषण गर्मी, कठोर ठंड, तेज बरसात की कल्पना करते ही उनके सुकोमल शरीर में सिरहन दौड़ जाती है।

चपरासी द्वारा घर का काम करना, राशन लाना, मिट्टी के तेल की लाइन में लगना, गैस लाना, बिजली, पानी, टेलीफोन के बिल जमा करना, मेमसाहब के कपड़े व बर्तन साफ करना, बाबा को स्कूल छोड़ना, घर लाना आदि दुर्गम कार्यों के करने के दु:स्वप्न के नाम से भी नींद खराब हो जाती है।

रिटायरमेंट के बाद रुआब कम हो जाता है, मिलने वाले नमस्ते की संख्या कम हो जाती है।

पहले जहां हाथ नमस्ते करने के कारण थक जाते थे, अब वही हाथ अपनी पुरानी आदतानुसार कदम-कदम पर नमस्ते न करने के कारण थक जाते हैं। मार्केट वैल्यू घटकर दस प्रतिशत रह जाती है। अगर अफसर समाजवादी, शिष्टाचारी, जमाने के साथ चलने वाला रहा है, तो समझ लो उसके रिटायरमेंट के बाद बिलकुल भी पूछ नहीं होने वाली है।

ऐसे अफसरों को रिटायरमेंट के बाद वे लोग ही सबसे ज्यादा दुख पहुंचाते हैं जो कभी उनके सामने जी हुजूरी करके अपना काम निकलवाते थे।

वे लोग ही उसे सरे आम बहुत बड़ा घूसखोर का सर्टिफिकेट देने से नहीं चूकते हैं, भले ही वह अफसर स्विस बैंक धारियों की तरह बहुत बड़ा न हो, लेकिन फिर भी उसे बढ़ाचढ़ाकर बताना ये लोग अपना परम धर्म समझते हैं।

उनकी महिमा में ये लोग एक से बढ़कर एक श्लोक मंडित करते हैं। ये लोग कहते हैं कि बहुत अड़ियल साहब है, बिना लिये दिये कलम ही नहीं उठाता था, पहले पैसे की बात करता था, बाद में काम करता था।

अगर वह रिटायरमेंट के बाद आराम करता है तो लोग कहेंगे कि खूब कमाया है, अब बुढ़ापे में ऐश नहीं करेगा, तो क्या करेगा। अगर वह प्रतिभा का सदुपयोग करके कुछ काम करेगा, तो लोग कहेंगे कि 'नौकरी में तो खूब कमाया, क्या उससे भी पेट नहीं भरा, अब क्या ताजमहल बनाने का विचार है, जो आराम के समय काम कर रहा है।'

रेखाचित्र: अवधेश बाजपेयी

न्याय को अंधा कहाँ गया है मै समझता हूँ न्याय अन्धा नही काना है वह एक ही तरफ देख पाता है ।

‘इस बीच उन्होंने कितने कमजोरों को दबाया, लाचारों को परेशान किया, मजदूरों को लूटा, गरीबों को सताया, गुनहगारों को आश्रय दिया, बेगुनाहों को सजा दी, चोरों को छोड़ा, साहूकारों की चौकसी की, ताकतवरों का साथ दिया, ईमानदारों को परेशान किया, बेईमानों को आशीर्वाद दिया, भ्रष्टाचार को पनाह दी, भाई-भतीजावाद को बढ़ावा दिया, लालफीताशाही को संरक्षण दिया, चमचागिरी को फलने-फूलने दिया, अधीनस्थ को गुलाम समझा, चपरासी को पैरों की जूती, बाबू को कोल्हू का बैल, ड्राइवर को घर का नौकर समझा, अफसरशाही की अमर बेल कायम की आदि कुछ भी बिलकुल याद नहीं रहता है।’

इस प्रकार के तीखे, जहरीले व्यंग्य बाणों से कदम-कदम पर रिटायरमेंट के बाद भेदा जाता है।

रिटायरमेंट के बाद एक से बढ़कर एक गिरगिटान की तरह रंग बदलते लोगों का सामना करना पड़ता है।

रिटायरमेंट के पहले ऐंठू गैस वाला, अकडू राशन वाला, घर सामान भिजवा दिया करता था। धोबी बिना चाय पिलाये जाने नहीं देता था।

दर्जी ठंडा-गरम पूछे बिना आने नहीं देता था। नाऊ भरी दुकान साहब के नाम से छोड़कर घर चला आता था। सब रिटायरमेंट के बाद अपना-अपना असली रूप दिखाने लग जाते हैं। अफसरी की बची-खुची सारी हवा तो उस समय निकल जाती है, जब सामने से मुंह दबाता आता पुराना चपरासी नमस्ते करना तो दूर एक नजर देखना भी गंवारा नहीं समझता है और पीछे से आने वाले चपरासी से कहता है ‘जरा संभल कर जाना, पुराने साहब आ रहे हैं, सठिया गये हैं, कहीं कोई काम वगैरह न बता दें इस प्रकार अधीनस्थ कर्मचारी तो उन्हें पहचानने से इन्कार कर देते हैं।

साथ ही साथ उनकी जगह आया नया अफसर भी उन्हें कुछ नहीं समझता हैं वह उनके साथ वैसे ही रूखा-सूखा व्यवहार करता है, जैसा पहले कभी वे आम जनता से किया करते थे।

उन्हें भी उस आफिस में काम करवाने में उतनी ही दिक्कत का सामना करना पड़ता है, जितना पहले कभी उनके जमाने में दूसरों को करना पड़ता था।

रिटायरमेंट के बाद समाज में पूछ तो कम हो ही जाती है साथ ही घर पर बेशुमार निमंत्रण कार्ड, आमंत्रण पत्र, डायरियां, कलैंडर भी आना बंद हो जाते है।

डिनर और पार्टियां सपनों की बात हो जाती है। घर पर काम करवाने वालों का मेला लगना बंद हो जाता है। रोज-रोज बनने वाले नये-नये रिश्तेदारों का मिलना भी बंद हो जाता है।

पहले जरा सा काम निकलवाने सात पीढ़ियों की रिश्तेदारी निकल जाना आम बात थी। अब साहबी जाने के बाद जब सगे संबंधी ही आंखें फेर लेते हैं, तब इन झूठे काम निकलवाऊ रिश्तेदारों की बात करना बेकार हैं।

रिटायरमेंट के बाद जब-तब घन जैसे आघात वृद्ध काया पर पड़ते रहते हैं। आमदनी कम, पेंशन से जब घर का गुजारा चलाना पड़ता है तब मेज के नीचे से आने वाले ‘पत्रम पुष्पम’ की याद आती है। तब समझ में आता है कि ऊपरी कमाई से कितने आराम से घर चल जाता था, गेहूं, दाल, चावल के दामों को तो पता ही नहीं चलता था, पानी बिजली, फोन के बिल तो ऐसे ही जमा हो जाया करते थे।

रिटायरमेंट के बाद ही सही तरीके से महंगाई की आग और सरकारी टैक्सों के कोहरे का पता चलता है।

घर जो सरकारी साजो-सामान, रंग-रोगन, चपरासी, जीप से मोहल्ले के सौरमंडल में उपग्रहों के बीच ‘ग्रह’ नजर आता था।

रिटायरमेंट के बाद उसका प्रकाश भी धुंधला जाता है। दो-चार दीवाली से साफ-सफाई न होने के कारण अलग से सेवानिवृत्त मालिक की तस्वीर पेश करता है।

रिटायरमेंट के बाद के हादसों के झेलने के बाद सारी अफसरी गुल हो जाती है। उसके बाद हाथ में छड़ी लेकर सुबह मार्निंग वाक करने के सिवाय कुछ करने का मन नहीं रह जाता है।

पुराने किस्से कारनामे सब भूल जाते हैं, सिर्फ भर्ती कैसे हुए, रिटायर कब हो गये ही याद रहता है।

इस बीच उन्होंने कितने कमजोरों को दबाया, लाचारों को परेशान किया, मजदूरों को लूटा, गरीबों को सताया, गुनहगारों को आश्रय दिया, बेगुनाहों को सजा दी, चोरों को छोड़ा, साहूकारों की चौकसी की, ताकतवरों का साथ दिया, ईमानदारों को परेशान किया, बेईमानों को आशीर्वाद दिया, भ्रष्टाचार को पनाह दी, भाई-भतीजावाद को बढ़ावा दिया, लालफीताशाही को संरक्षण दिया, चमचागिरी को फलने-फूलने दिया, अधीनस्थ को गुलाम समझा, चपरासी को पैरों की जूती, बाबू को कोल्हू का बैल, ड्राइवर को घर का नौकर समझा, अफसरशाही की अमर बेल कायम की आदि कुछ भी बिलकुल याद नहीं रहता है।

वे याद करते हुए पश्चाताप करना भी चाहते है, तब भी उन्हें कुछ याद नहीं आता है, क्योंकि रिटायरमेंट के बाद उसका प्रायश्चित नहीं हो सकता है।

■

मूर्खता के सिवाय कोई भी मान्यता शाश्वत नहीं है। मूर्खता अमर है। यह बार-बार मरकर फिर जीवित हो जाती है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई

योगेश कुमार गुप्ता

श्री हरिशंकर परसाई व्यंग्यकार का जन्म मध्यप्रदेश के होशंगाबाद (वर्तमान नर्मदापुरम) जिले के इटारसी तहसील के जमानी गांव में 22 अगस्त 1924 को हुआ था। उनके द्वारा नागपुर विश्वविद्यालय से हिंदी में एम.ए. और डिप्लोमा इन टीचिंग का कोर्स किया गया था। उनके द्वारा कहानी, उपन्यास, व्यंग्य, निबंध, स्तंभ लेखन, संस्मरण, रेखाचित्र, और साक्षात्कार और पाठकों के प्रश्नों के उत्तर के माध्यम से सामाजिक एवं राजनीतिक दिन-प्रतिदिन के घटनाक्रम पर व्यंग्य किया था। उनके द्वारा मानवीय मूल्यों को अपने व्यंग्य के माध्यम से आम लोगों को परिचित कराया गया था। तात्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक घटनाओं पर उनका व्यंग्य लेखन उन्हें अन्य व्यंग्यकारों से पृथक करता था। उनकी व्यंग्य शैली विशिष्ट थी आम बोलचाल की भाषा में उपयोगी शब्दों का प्रयोग रहता था। कभी-कभी असाहित्यिक शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। कथात्मक शब्दों के प्रयोग में सहजता और सरलता रहती थी।

श्री हरिशंकर परसाई को केन्द्रीय साहित्य अकादमी पुरस्कार और मध्यप्रदेश शासन का हिंदी भाषा का सर्वोच्च शिखर सम्मान से सम्मानित किया गया है। उनकी रचनाओं का लगभग सभी भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी में अनुवाद हुआ है। परसाई रचनावली शीर्षक से छह खंडों में उनकी सभी रचनाएं संकलित की गई है। आपका निधन 10 अगस्त 1995 को हुआ था। वाणी प्रकशन नई दिल्ली द्वारा 'चुनी हुई रचनाएं' शीर्षक से उनके व्यंग्यों के संग्रह को दो वाल्यूम में प्रकाशित कराया गया है।

'कल्पना' में और मासिक पत्रिका 'सारिका' में 'कबिरा खडा बजार में', 'तीसरी आजादी का जांच कमीशन', और 'तुलसीदास चन्दन घिसें लिखे शीर्षक में स्तंभ लेखन किया गया। 1956 में 'परिवर्तन' जबलपुर में 'अरस्तु की चिट्ठी' स्तंभ लिखा गया। 'करेंट' में - 'माटी कहे कुम्हार से' तथा 'जनयुग' में 'ये माजरा क्या है', स्तंभ लिखे।

जबलपुर और रायपुर से प्रकाशित सांध्य दैनिक समाचार पत्र देशबंधु में साप्ताहिक स्तंभ 'पुछे परसाई से' में पाठकों के प्रश्नों के उत्तर दिया करते थे। जबलपुर से प्रकाशित नवीन दुनिया दैनिक समाचार पत्रों में साप्ताहिक स्तंभ 'सुनो भई साधो' शीर्षक से प्रकाशित होता था। जिसका संकलन 'कहत कबीर' पुस्तक में किया गया है जिसका प्रकाशन राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली द्वारा किया गया है।

आपकी रचनाओं में आपकी प्रकाशित कृतियां कहानी संग्रह- 'हंसते है रोते है', 'जैसे उनके दिन फिरे', 'भोलाराम का जीव'।

उपन्यास:- 'रानी नागफनी की कहानी', 'तट की खोज', 'ज्वाला और जल'।

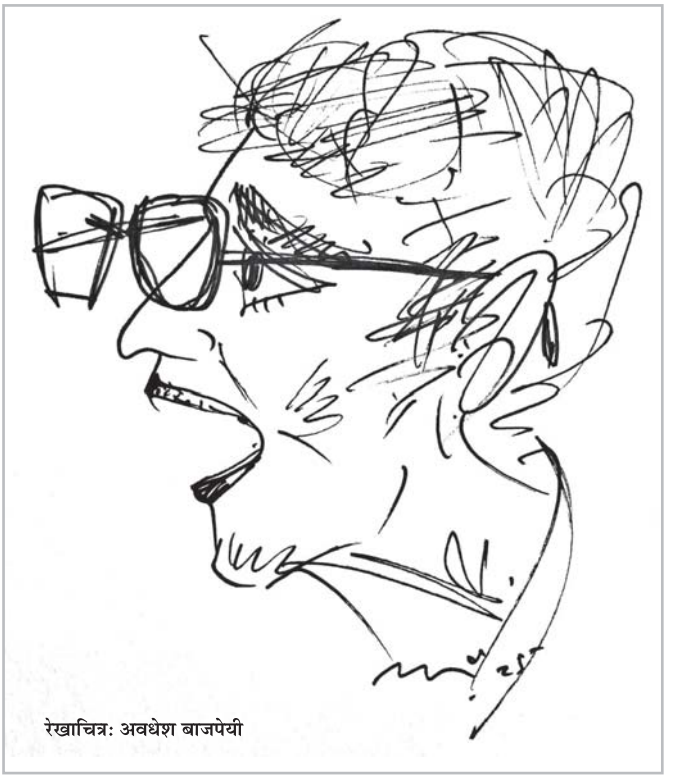

रेखाचित्र: अवधेश बाजपेयी

व्यंग्य निबंध संग्रह:- 'तब की बात और थी', 'भूत के पांव पीछे', 'बेईमानी की परत', 'वैष्ण का फिसलन', 'पगडंडियों का जमाना', 'शिकायत मुझे भी है', 'सदाचार का ताबीज', 'विकलांग श्रद्धा का दौर', 'हम इक उम्र से वाकिफ है', 'निठल्ले की डायरी', 'आवारा भीड़ के खतरे', 'जाने-पहचाने लोग', 'कहत कबीर', 'ठिठुरता हुआ गणतंत्र', साक्षात्कार- 'पूछो परसाई से'।

तारीफ़ करके आदमी से कोई भी बेवकूफ़ी करायी जा सकती है...

हरिशंकर परसाई द्वारा लिखित 'बारात की वापसी' और 'प्रेमचंद के फटे जुते' जैसी कई कहानियां और निबंध केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा मंडल बोर्ड के स्कूली पाठ्यक्रम में सम्मिलित किये गये थे। उनके व्यंग्य में बोलचाल के शब्दों का प्रयोग होता था। वर्ष 1976 में उनकी टांग में फ्रेक्चर हो गया था जिस पर उन्होंने विकलांग श्रद्धा का दौर, व्यंग्य रचनाएं लिखी थी। 'विकलांग श्रद्धा का दौर' नाम से वर्ष 1975 से 1979 की अवधि सामाजिक एवं राजनीतिक घटनाक्रम पर उनके द्वारा लिखित व्यंग्य रचनाओं पर पुस्तक का प्रकाशन राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली द्वारा किया गया था।

प्रसिद्ध पत्रकार श्री विष्णु नागर द्वारा परसाई जी द्वारा दिये गये साक्षात्कारों पर संकलन किया था जो कि 'परसाई का मन' शीर्षक पुस्तक में राजपाल एंड सन्स में नई दिल्ली द्वारा प्रकाशन किया गया। श्री प्रकाश चंद्र दुबे द्वारा भी उनके साक्षात्कारों का संकलन किया गया है जो कि 'किस्सा कुर्सी का' शीर्षक से पुस्तक का राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली द्वारा वर्ष 2024 में प्रकाशन किया गया है।

हरिशंकर परसाई के अनुसार 'व्यंग्य लेखन एक गंभीर कार्य है। व्यंग्य वह करारी चोट है जो चेतना पर होती है कि पाठक पहले तो भोचक रह जाता है और फिर सोचने लगता है। सच्चा व्यंग्य जीवन की समीक्षा है, वह मनुष्य को सोचने के लिए बाध्य करता है, अपनो से साक्षात्कार करता है, चेतना में हलचल पैदा करता है, और जीवन व्याप्त मिथ्याचार, पाखंड, असमंजस्य और अन्याय से लड़ने के लिए उसे तैयार करता है। अच्छे व्यंग्य में करूणा की अंतर्धारा होती है।' (श्री हरिशंकर परसाई द्वारा हस्तलिपि पाण्डुलिपि से संदर्भित)

"मेरी संपूर्ण स्कूल एवं कॉलेज की शिक्षा जबलपुर शहर में हुई है। जबलपुर और रायपुर से प्रकाशित दैनिक सांध्य समाचार देशबंधु में श्री हरिशंकर परसाई के साप्ताहिक स्तंभ व्यंग्य लेख प्रकाशित होते थे और जबलपुर से प्रकाशित दैनिक समाचार पत्र नवीन दुनिया, नवभारत, धर्मयुग आदि समाचार पत्रों में श्री हरिशंकर परसाई के व्यंग्य लेखन का प्रकाशन होता था जिनका मेरे द्वारा नियमित पठन पाठन और चिंतन किया जाता था शायद उसी का प्रभाव जीवन शैली में है इसलिये मुझे लाग लपेट कर बात करना पसंद नहीं है सीधी बात करने की आदत है। श्री हरिशंकर परसाई के लेखन सामग्री से उस समय के समाज के लोग प्रभावित थे। स्कूल कॉलेज के विद्यार्थी, राजनीतिक, साहित्यकार और आलोचक उनके नियमित प्रकाशित व्यंग्य लेखों की प्रतीक्षा करते थे और उनके प्रकाशित व्यंग्य लेखों का सार्वजानिक स्थलों जैसे कॉफी हाउस आदि में लोगों के मध्य चर्चा होती थी।"

उनका प्रारंभिक जीवन कठिन संघर्ष का रहा है। वर्ष 1937-38 में जब वह आठवी कक्षा के छात्र थे। गांव में प्लैग की बीमारी फैली थी गांव के लोग घर छोड़कर जंगल में रहने चले गये थे परंतु उनका परिवार नहीं गया था। क्योंकि उनकी माँ गंभीर रूप से बीमार थी उन्हें जंगल लेकर नहीं जाया जा सकता था। और उस दौरान उनकी माँ की मृत्यु हो गई थी उनका पांच भाई-बहनों का भरा पूरा परिवार था आर्थिक संकट में उन्हें अपना जीवन यापन करना पड़ा था। मैट्रिक पास करने के बाद जंगल विभाग में अस्थाई नौकरी मिली थी वहां सरकारी टपरे में रहना पडता था। ईंट रखकर उस पर पटिया जमाकर उस पर बिस्तर लगाना पड़ता था। उन्हें जबलपुर में स्कूल में अध्यापक की नौकरी मिली थी उस दौरान आर्थिक अभाव में कभी-कभी बिना टिकिट उनके द्वारा सफर जबलपुर से ईटारसी टिमरनी, खंडवा, इंदौर और देवास में किया जाता था। जीवन में किये गये उनके संघर्षों मे ही उन्हें व्यंग्य लेखन की प्रेरणा दी थी। 'उनके शब्दों में मेरा अनुमान है कि मैंने लेखन को दुनिया से लड़ने के लिए एक हथियार के रूप में अपनाया होगा। अपने को अविशिष्टि होने से बचाने के लिए मैंने लिखना शुरू कर दिया। मेरे हाथ में कलम है और मैं चेतना संपन्न हूं जो हथियार हाथ में है उसी से लड़ना है और एक ओधड़ व्यक्तित्व बनाया, और बहुत गंभीरता से व्यंग्य लिखना शुरू कर दिया।' (श्री हरिशंकर परसाई द्वारा हस्तलिपि पाण्डुलिपि से संदर्भित)

श्री हरिशंकर परसाई की व्यंग्य रचनाओं के शीर्षक से ही व्यंग्य टपकता था जैसे एक मध्यमवर्गीय कुत्ता, आजादी की घास, पुलिस मंत्री का पुतला, बाप-बदल, अयोध्या में खाताबही, कबीर की बकरी, विकलांग श्रद्धा का दौर, चर्बी गंगाजल और एकात्मता यज्ञ, बूटासिंह धर्मवीर हो गए, आदि।

उनके द्वारा मैट्रिक पास होने के बाद वर्ष 1940 में उन्हें खंडवा के न्यू हाई स्कूल में अध्यापक की नौकरी की गई थी। जुलाई 1941 में टीचर्स ट्रेनिंग के लिए जबलपुर गए थे उस दौरान स्नातक की शिक्षा पूर्ण की थी और वर्ष 1943 में ट्रेनिंग पूर्ण होने पर जबलपुर के प्रसिद्ध स्कूल मॉडल हाई स्कूल में अध्यापक के पद पर नियुक्ति हुई थी।

वर्ष 1947 में लिखना प्रांरभ किया था सरकार को उनकी रचनाओं से तकलीफ होती थी इसलिये उनका स्थानांतरण जानबुझकर जबलपुर से हरसूद कर दिया गया था। वर्ष 1952 में सरकारी नौकरी छोड़ दी थी और कुछ समय के लिए जबलपुर के नवीन विद्या भवन तथा जैन प्राइवेट स्कूल में अध्यापक का कार्य किया था। वर्ष 1957 में प्राईवेट नौकरी छोड़ दी थी और स्वतंत्र लेखन (फीलांसिंग) करने लगे थे। पहली कहानी वर्ष 1948 में उदार उपनाम से लिखी गई थी। जो कि जबलपुर के साप्ताहिक पत्र 'प्रहरी' जिसके संपादक प्रसिद्ध हिंदी लेखक पंडित भवानी प्रसाद तिवारी और रामेश्वर गुरु थे, में 'दूसरों की चमक दमक' शीर्षक के नाम से प्रकाशित हुई थी उक्त कहानी उनके द्वारा देखी गई सत्य घटना पर आधारित थी। उनके द्वारा

मार्क ट्वेन ने लिखा है - यदि आप भूखे मरते कुत्ते को रोटी खिला दें, तो वह आपको नहीं काटेगा। कुत्ते में और आदमी में यही मूल अंतर है।

'प्रहरी' पत्र में 'अघोर भैरव' और 'नर्मदा के तट से' स्तंभ लेखन भी किया गया था।

अपने मित्रों, शुभचिंतकों जबलपुर की साहित्यिक कला और सांस्कृति परंपरा के कारण जबलपुर स्थित नेपियर टाउन में अपनी बहन और भांजो के साथ निवास करने लगे, पारिवारिक जिम्मेदारी होने के कारण वह अविवाहित रहे थे। उनके द्वारा जबलपुर से वसुधा नामक साहित्यिक पत्रिका भी निकाली गई थी जिसका प्रकाशन आर्थिक संकट होने के कारण तीन वर्ष बाद बंद हो गया था। उनकी जीविका लेखन कार्य से चलती थी। उन्होंने अपने साक्षात्कार में कहां था कि व्यंग्य उनका रोजगार है। उनके द्वारा प्रकाशित पुस्तक कभी किसी को समर्पित नहीं की गई थी।

प्रारंभ में प्रगतिशील समाजवादी विचारधारा से प्रभावित थे बाद में मार्क्सवादी हो गये थे। उनकी दो कहानियां 'भोलाराम का जीव' और 'इंस्पेक्टर मातादीन चांद पर' का अनुवाद अंग्रेजी में ब्रिटेन, कनाडा और अमेरिका की पत्रिकाओं में छपा था। वह भारतीय लेखक प्रेमचंद, कबीर और विदेशी लेखक चेखव, मोपांसा, ओ-हेनरी, की कहानियों से प्रभावित थे। वह मुक्तिबोध को अपना सच्चा गुरु मानते थे। उनके द्वारा लिखित रानी नागफनी की कहानी पर दूरदर्शन नई दिल्ली द्वारा सीरियल बनाया गया था जो कि दर्शकों के मध्य लोकप्रिय नहीं हुआ था।

मेरी संपूर्ण स्कूल एवं कॉलेज की शिक्षा जबलपुर शहर में हुई है। जबलपुर और रायपुर से प्रकाशित दैनिक सांध्य समाचार देशबंधु में श्री हरिशंकर परसाई के साप्ताहिक स्तंभ व्यंग्य लेख प्रकाशित होते थे और जबलपुर से प्रकाशित दैनिक समाचार पत्र नवीन दुनिया, नवभारत, धर्मयुग आदि समाचार पत्रों में श्री हरिशंकर परसाई के व्यंग्य लेखन का प्रकाशन होता था जिनका मेरे द्वारा नियमित पठन पाठन और चिंतन किया जाता था शायद उसी का प्रभाव जीवन शैली में है इसलिये मुझे राग लपेट कर बात करना पसंद नहीं है सीधी बात करने की आदत है। श्री हरिशंकर परसाई के लेखन सामग्री से उस समय के समाज के लोग प्रभावित थे। स्कूल कॉलेज के विद्यार्थी, राजनीतिक, साहित्यकार और आलोचक उनके नियमित प्रकाशित व्यंग्य लेखों की प्रतीक्षा करते थे और उनके प्रकाशित व्यंग्य लेखों का सार्वजानिक स्थलों जैसे कॉफी हाउस आदि में लोगों के मध्य चर्चा होती थी।

लेखकः सेवानिवृत्त प्रधान जिला न्यायाधीश
वर्तमान पद स्थापना (न्यायनिर्णायक अधिकारी)
मध्यप्रदेश भू-संपदा विनियामक प्राधिकरण (रेरा) भोपाल
मोबाईल नंबर-8839605881

माया देवी गुप्ता आर्ट गैलरी भोपाल में 3 दिवसीय कार्यशाला 24/1/25 गौड़ आर्ट की सम्पन्न हुई

मगरमच्छ शेर, शेरनी का जोड़ा गौड़ आर्ट मे 15/8 फीट 120. फीट मे बनाया जा रहा है। जो रिकॉर्ड है। पहली बार गौड़ आर्ट में पहाड़ी मुगल राजस्थानी पेंटिंग से प्रभावित होकर आर्ट बनाया जा रहा हैं जिसमें मगरमच्छ के अंदर पानी के जीव मछली, कछुआ, केकड़ा, प्रान् घोंघा, हारस सी, आकटोपस, बतख आदि बनाये जा रहे है। स्वामीनाथन के बाद पहली बार गौड़ कलाकारों को नई दिशा माया देवी गुप्ता आर्ट गैलरी भोपाल के उमेश कुमार गुप्ता द्वारा दिखाई दी जा रही हैं। गौड़ आर्टिस्ट संतोष कुमार श्याम, सिया श्याम ने मार्गदर्शन में कार्य किया, बच्चों को निःशुल्क सिखाया।

अवधेश बाजपेयी की नदी पर कविता

मैं एक नदी हूँ,
मेरे भीतर 'बाँध' कब बन गया,
मुझे पता ही नहीं चला-
और अपनी नहर को ही 'नदी'
'समझता' रहा
जब मुझे अपने भीतर के 'बाँध'
के बारे में अहसास हुआ
तो मैंने बाँध तोड़ दिया
'नहरें' नदी में तब्दील हो रही हैं
अभी सागर बहुत दूर है
इतना कि उम्र कम पड़ेगी और
मुझे बहने और संघर्ष के लिये
ज्यादा 'समय' मिलेगा।
बाँध का पता चलना ही रूपांतरण है।
यह मेरा सपना है- कि
इस बात पर
एक अधूरी सी कविता बोल सकूँ।
— [signature]
6.1.2025

जो पानी छानकर पीते हैं, वो आदमी का खून बिना छाने पी जाते हैं..।

व्यंग्य आलेख

साहित्य के एक नए सौंदर्यशास्त्र की ज़रूरत का एहसास कराते हुए परसाई के कालम

डा. धनंजय वर्मा

फ्रांसीसी और अंग्रेजी लेखकों के एक बुनियादी फ़र्क का जिक्र करते हुए जॉन क्रूकशेन्क ने इसकी वजह बताई है–'भाषा और साहित्य की परंपराओं का अंतर'। अलावा इसके एक बड़ा कारण यह भी है कि फ्रांसीसी लेखक की अपने देश और समाज में एक खास हैसियत और दर्जा है। फ्रांस में लेखक खासी लोकप्रियता और इज्जत का मालिक होता है। लेखक और बुद्धिजीवी होने के नाते अपनी जनता से उसके रिश्ते कुछ इतने नजदीक के होते हैं कि सामाजिक और राजनीतिक मसलों पर उसकी राय की क़द्र की जाती है। वह न सिर्फ़ अखबार में कालम लिखता है बल्कि घोषणापत्र भी जारी करता है, और आम सभाओं में जनमत तैयार करता या बदलता है। उससे इस सबकी न सिर्फ उम्मीद की जाती है, बल्कि सामाजिक और नागरिक ज़िम्मेदारियों के जौनिब, उसकी भूमिका से उसकी हैसियत और दर्जा भी तय होता है।...

हिंदी की हमारी जातीय परंपरा में भी लेखक–कवि की सामाजिक और मानवीय ज़िम्मेदारियों के प्रति एक गहरी चेतना रही है। मध्यकाल के संत कवियों, कबीर और तुलसी से लेकर आधुनिक युग में भारतेंदु हरिश्चंद्र और बालकृष्ण भट्ट, महावीरप्रसाद द्विवेदी और निराला, प्रेमचंद और मुक्तिबोध तक इस चेतना का निरंतर प्रवाह देखा जा सकता है। इस चेतना ने ही लेखन और सृजन को रचनात्मकता के नाम पर न तो 'अंधेरे बंद कमरे' से क़ैद किया और न उसे चंद चुनिन्दा लोगों के मानसिक विलास तक महदूद किया। इस चेतना की वजह से उनके रचनात्मक लेखन की समृद्धि मुमकिन हुई।

लेकिन आधुनिकवाद के चक्कर में हमारे यहां ऐसे मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों की जमात भी बढ़ी जिन पर अंग्रेजी मानसिकता इस क़दर हावी है कि वे अपनी जड़ें भूलकर सारी दुनिया के साथ–साथ खुद को भी उसी अंग्रेजी चश्मे से देखने–समझने और कूतने के आदी हो गए हैं। साहित्य पर वे विचार करेंगे तो 'लिट्रेचर के पर्याय' के रूप में और फिर अपनी भारतीयता की तलाश में लेखन को या तो 'अंधेरे में चीख' बनाएंगे या फिर उसमें आदमी के तथाकथित 'बुनियादी अकेलेपन' का सन्नाटा बुनेंगे।

*

एक तरण पुष्कर में एक आदमी डूब गया। पुलिस ने मौके पर मौजूद एक अंग्रेज से पूछताछ की–

हां, मैंने उसे देखा। उसने ऊपर से छलांग लगाई और वह पानी के भीतर चला गया। वह चीखा–चिल्लाया भी, उसने हाथ–पांव भी मारे लेकिन...

उस अंग्रेज ने अपना सिर आसमान की ओर उठाया और उसका निचला होंठ आगे की ओर लटक गया।

मगर आप तो सब कुछ देख रहे थे। आपने उसकी मदद क्यों नहीं की? पुलिस का सवाल था। खेद है। हम लोग एक–दूसरे से परिचित नहीं थे। अंग्रेज ने अपने खास नकचढ़ेपन में जवाब दिया।

*

और इस नकचढ़ेपन के चलते ही हमारे यहां भी अपरिचय और अकेलेपन, अजनबीयत और संत्रास के आधुनिकवाद का बुखार लेखकों–कवियों पर चढ़ा और खूब चढ़ा। साहित्य को मनुष्य की व्यापक जीवनचर्या से काटकर, समाज के सदस्य और नागरिक की हैसियत से आयद जिम्मेदारियों से किनाराकशी करते हुए, इस तथाकथित आधुनिकवादी लेखक ने उसे रहस्यवादी भूलभूलैयों में भटकाया। उसने साहित्य की स्वायत्तता इतनी शुद्धतावादी, ऐकांतिक और कलावादी बना दी कि किसी लेखक के द्वारा ज्वलंत प्रश्नों पर आम नागरिक को जागरूक और चेतन बनाने का नागरिक–कर्म, लेखकीय–कर्म से बाहर और गैर–साहित्यिक क़रार दिया जाने लगा। वो भूल गया कि सृजनात्मक लेखन की दुनिया भी इसी दुनिया का हिस्सा और नतीजा होती है और जब तक लेखक का संपर्क

अंधभक्त होने के लिए प्रचंड मूर्ख होना अनिवार्य शर्त है!

पूरे जीवन के विस्तार से न हो तब तक उसका अनुभव-बोध समग्र नहीं होता; कि संस्कृति, कला और साहित्य के इलाके में पवित्रता और शुद्धता की गुहार अब इतिहास-विरोधी हो चुकी है।

ठीक ऐसे ही माहौल में हरिशंकर परसाई का प्रवेश होता है। उन्होंने निबंध, कहानियां, रेखाचित्र और उपन्यास के अलावा और साथ-साथ अखबार के कालमों के ज़रिए उस नागरिक जड़ता और सामाजिक उदासीनता को भी तोड़ा, जो पूरे समाज और खासकर उसके बुद्धिजीवी वर्ग में फैल चुकी है और एक खास कलावादी प्रवृत्ति के तहत जहां साहित्य-ही-साहित्य का स्रोत बचा रह गया है। परसाई का यह लेखन हमारी बेहद तात्कालिक और ज़रूरी दुनिया के रू-ब-रू है और हमें उससे मुठभेड़ की ताक़त देता है। वह लेखन को एक ऐसा माध्यम बनाता है जो समकालीन मनुष्य के सुंदर और उदात्त के साथ उसके विकृत और हास्यास्पद को भी उघाड़ता है तथा साहित्य को सजीव और प्रबोधक बनाता है। यहां शब्दों के जरिए पूरी दुनिया से लेखक के रिश्तों की पहचान की जाए तो दोनों को जोड़ने वाले रगों-रेशों की आंगिक संश्लिष्टता समझी जा सकती है। समकालीन मनुष्य और उसको घेरे हुए इस चौतरफा संसार के बारे में इस जगचेता लेखक का कितना गहरा और सूक्ष्म पर्यवेक्षण है और अपने समय के यथार्थ की आलोचनात्मक अवधारणा वहां कितनी समृद्ध हैं इसका सबूत है इस लेखन के प्रति आम पाठक की संवेदनात्मक प्रतिक्रिया और इसकी लोकप्रियता। इस लेखन को औपचारिक विधाओं के सांचे में फिट नहीं किया जा सकता। वह तो विधाओं के बाड़ों को तोड़ता हुआ एक ऐसे आलोचनात्मक यथार्थवाद से संपन्न हैं, जिसमें बेहतर दुनिया के निर्माण की सृजनात्मक कल्पना सक्रिय है। यह महज संयोग नहीं है कि लेखन के समकालीन परिदृश्य में हरिशंकर परसाई उन चंद लेखकों में से हैं, जो एक सामाजिक और नागरिक शक्ति के रूप में स्वीकृत और सम्मानित हैं। समकालीन साहित्य में हम ऐसे किसी दूसरे लेखक की मौजूदगी का एहसास ही नहीं कर पाते, जिसने अपने पाठकों को इस हद तक सामाजिक जागरूकता और राजनीतिक चेतना से संपन्न बनाया हो और उसकी मानवीय संवेदनशीलता को इतना उत्तेजित किया हो।

परसाई के इस लेखन की सबसे बड़ी ख़ासियत यह है कि यह साहित्य के ज्ञानात्मक और संवेदनात्मक विभाजन को नकारता है, और दोनों के संश्लेष से साहित्य की ताक़त और असर को बढ़ाता है। पता नहीं उस अंग्रेज़ अफीमची डी. क्विन्सी-ने किस पिनक में साहित्य को ज्ञान और शक्ति के खानों में बांट दिया और वह विभाजक रेखा बर्लिन की दीवार की मानिन्द आज भी साहित्य को दो अलग-अलग शिविरों में बांटे हुए है। परसाई के लेखन में ऐसी कोई दीवार नहीं है। वह संवेदनात्मक उद्वेलन के साथ-ही-साथ हमें प्रबुद्ध भी करता है। उसमें अपने आस-पास और दुनिया जहान के बारे में जानकारियों के साथ ही नैतिक अवधारणाएं पैदा करने की जो सिफ़त है उसी ने उसे एक ऐसी अंतर्निहित ताक़त दी है, जो हमारे ज़माने के बहुत सारे तथाकथित रचनात्मक और कलात्मक लेखन से गायब हैं। क्या परसाई के लेखन की यह ताक़त उसी रचनात्मकता और कलात्मकता की भी सबूत नहीं है?...

बीसवीं शताब्दी सामान्यत: स्वीकृत सीमाओं को तोड़ने के लिए उल्लेखनीय रही है। आज दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक संघटनाओं को भौतिक शब्दावली में समझ रहे हैं, भौतिक शास्त्री प्राकृतिक संघटनाओं की दार्शनिक व्याख्याएं पेश कर रहे हैं। भावी इतिहासकार न तो विज्ञान और दर्शन को अलग-अलग ख़ानों में बांटकर देख सकेगा और न संज्ञान और संवेदना के इलाक़ों को इतनी कट्टरता से विभाजित कर पाएगा। जहां वैचारिक संवादों में सौंदर्यात्मक संरचनाएं होती हों, इतिहास लेखन में जहां विज्ञान और कला की विशेषताएं घुली-मिली हों, और कविता, विचार और सिद्धांत प्रसवा होती हों, वहां साहित्य की उच्चतर अन्विति को मंजूर करके ही कलाओं के विभिन्न माध्यमों में से अभिव्यक्त मानव-सार की एकता का बोध हो सकता है। खासतौर पर जबकि कलाओं में अंतर्निर्भरता और समानधर्मिता का शोर हो, साहित्य में विधाओं की जकड़बंदी ही नहीं, साहित्य का ज्ञानात्मक और संवेदनात्मक विभाजन भी बेमानी है। आज ज्ञानात्मक संवेदना और संवेदनात्मक ज्ञान के अंतर्लयन के बिना किसी वयस्क लेखन की उम्मीद ही नामुमकिन है। चुनांचे (तथाकथित) साहित्यिक-रचनात्मक लेखन और परसाई के (इस तथाकथित) अखबारी-कालम लेखन के बीच का आरोपित अंतर क्या उसी अंग्रेज अफीमची की पिनक की निरंतरता का प्रमाण नहीं है जिसके नतीजतन साहित्य के जानिब एक कलावादी और रूपवादी रवैया पनपता है।...

परसाई के इस लेखन से साहित्य के एक ऐसे नए सौंदर्यशास्त्र की जरूरत का एहसास होता है जिसमें तथ्यों और तर्कों की भी उतनी ही अहमियत और स्वीकृति हो जितनी कि कलात्मक कल्पना और सौंदर्य संवेदना की, बल्कि उसकी कलात्मक कल्पना और सौंदर्य संवेदना की बुनियाद भी तथ्य और तर्क हो, यथार्थ और वास्तविकता हो। क्योंकि ऐसा तो नहीं ही है कि तथ्य और सत्य, तर्क और ज्ञान की दुनिया एक है और कला और कल्पना या सौंदर्य संवेदना की दुनिया अलहदा: दुनिया-वास्तविक दुनिया, तो एक ही है महज़ उसे ग्रहण करने, उसका अनुभव-बोध संचित करने के तरीके अलग-अलग हैं और सच पूछिए तो तरीके भी कहां अलग-अलग हैं? क्या दोनों ही मिलकर इस दुनिया को, उसकी समग्रता में देखने के स्तर नहीं बन जाते?... यही वजह है कि परसाई का यह लेखन दुनिया की मौजूदा समकालीन जटिलता में एक साहसिक सफ़र, एक हरावल दस्ता और एक कुतुबनुमा की शक्ल एक साथ

सरकार कहती है कि हमने चूहे पकड़ने के लिये चूहेदानियां रखी हैं।
एकाध चूहेदानी की हमने भी जांच की. उसमें घुसने के छेद से बडा छेद पीछे से निकलने के लिये है. चूहा इधर फंसता है और उधर से निकल जाता है.

अख्तियार कर लेता है। उसमें सतर्क बोध और आत्यंतिक मानव सह-अनुभूति से उत्पन्न संवेदनात्मक आघातों की तल्ख और तात्कालिक सक्रियता होती है। वह ऐसा रचनात्मक साहित्य है जिसे ज्ञानात्मक साहित्य की सही और ग़लत की कसौटी पर भी परखा जा सकता है और ईमानदारी और प्रामाणिकता की अंतक्रिया की आधुनिक अवधारणा पर भी जो खरा उत्तरता है। उसमें रचनात्मक लेखन की अंतवर्ती भावात्मक और भावनात्मक सच्चाई और ऊर्जा के साथ ज्ञानात्मक लेखन की प्रखर वैचारिकता और बौद्धिक सतर्कता का संश्लेष है। वह महज सहजज्ञान, कल्पना और सौंदर्यानुभव तक नहीं रुकता, तार्किक विश्वसनीयता के लिए वह यथार्थ, वास्तविक और तथ्यात्मक दुनिया से भी उन्हें संयुक्त करता है। यहां सहजानुभूति और मूल्यनिर्णय अंतर्लयित हो जाते हैं।

'परसाई सिर्फ यह नहीं कहते कि दुनिया मुझे ऐसी दिखाई पड़ती है, वो एक कदम आगे बढ़कर यह भी कहते हैं कि चीज़ों, प्रसंगों और लोगों-यानी कि मौजूदा यथार्थ के बारे में मेरा निर्णय यह है। इस लेखन की अपनी एक संश्लिष्ट संरचना है। उसमें चंद बिम्ब, प्रमुख रूप से उभरते हैं और चंद सामान्यीकृत प्रतिबिम्ब उनमें अनुस्यूत होते हैं। ये बिम्ब होते हैं-प्रवृत्तियों और रीतियों के, व्यक्तियों और घटनाओं के, प्रतिक्रियाओं और संवेदनाओं के। यहां प्रतिबिम्बित चीज़ों, लोगों और प्रसंगों की एक अंतर्निहित अन्विति होती है और यह अन्विति चीजों, लोगों और प्रसंगों को प्रतीकों में रूपांतरित कर देती है। प्रेमचंद के बाद अकेले परसाई हैं जिन्होंने सपाट गद्य की अखबारी तात्कालिकता को इतनी रचनात्मक उत्तेजना दी है'

परसाई लेखकों की उस बिरादरी के हैं जिसे महज़ साहित्यिक और कलात्मक ही नहीं, वैज्ञानिक और ऐतिहासिक, समाजशास्त्री, मानव-बोधी संज्ञान के नुक्त-ए-नज़र से भी देखा-परखा जाता रहा है, और जो कालांतर में अपने समय के दस्तावेज बन गए हैं, जहां लेखन महज गवाह और दर्शक नहीं होता, वरन इतिहास की निर्णायक शक्तियों का पक्षधर और परिदृश्य में सक्रिय हस्तक्षेप होता है। यह साहित्य और लेखन का वह इलाक़ा है जहां वैज्ञानिक दृष्टि लगातार एक कलाकार की कल्पना और सृजनात्मकता से स्फूर्त होती है और इतिहास-चेतना, तथ्यों को संतरित करती हुई तात्कालिक घटनाओं के नाटकीय विन्यास में जिंदा पात्रों से समकालीन इतिहास के मानव अनुभवों की पुनर्रचना करती है। ऐसे लेखन से सामाजिक परिवर्तन भी होता है (जी हां) कि वह सामाजिक बदलाव का हथियार हो जाता है। आखिर वो चार्ल्स डिकेन्स ही थे जो सामाजिक बदलाव की प्रेरणा देनेवाले लेखक के रूप में मशहूर हुए और जिनकी रचनाओं ने अंग्रेज़ जाति की सामाजिक संवेदनशीलता में न केवल इज़ाफ़ा किया, बल्कि उसे सामाजिक सुधार और परिवर्तन की जानिब सक्रिय भी किया। वाल्तेयर और रूसो, शा और रसेल, सार्त्र, कामू, गोर्की और मायाकोव्स्की सरीखे सामाजिक सक्रियतावादी लेखकों-कवियों की एक पूरी अंतर्राष्ट्रीय बिरादरी है जिसने लेखन को सामाजिक जिम्मेदारी का औज़ार और नागरिक कर्म की तरह अपनाया। आखिर क्यों मायाकोव्स्की ने खुद को 'कूड़ा साफ करनेवाला' कहा था और कविता की शुरुआत एक प्रयोजन से मानी थी? कविता और क्रांति उसके लिए एक रूप हो गई थीं, उसने पोस्टर्स और विज्ञापन तक लिखे और अपनी कविता लेकर वह मजदूरों और किसानों के बीच भी गया !...

मुनासिब होगा यहां यह याद कर लेना कि स्वच्छंदतावादी आंदोलन की लाक्षणिक विशेषता के रूप में जिस शैली, जिस मानसिकता और जिस उपलब्धि की सनद दी जाती है वह किसी (तथाकथित) रचनात्मक लेखन की नहीं, बल्कि रूसो की थी। उसने साहित्य को नहीं, बल्कि पूरे समाज और व्यवस्था को चुनौती दी थी। उसका जीवन, व्यक्तित्व और लेखन दुनिया की रूढ़ व्यवस्था के खिलाफ जेहाद था। वह महज़ लेखक की स्वतंत्रता की मांग नहीं करता, वह तो मनुष्य मात्र को स्वतंत्र करना चाहता है कि वह स्वतंत्र पैदा हुआ है लेकिन सब ओर बंधनों से जकड़ा है। उसका स्वच्छंदतावाद समाज के उन सारे पहलुओं-सरकार, क़ानून, धर्म और रीति-रिवाज को चुनौती देता है, जो यथास्थिति को बरकरार रखना चाहते हैं। उसके आदर्शों ने सारे फ्रांस को प्रभावित किया और क्रांति की मानसिकता तैयार की। फ्रांस की राज्यक्रांति और स्वच्छंदतावाद उसी की बौद्धिक खमीर से पैदा हुए। परसाई के इस लेखन का मानसिक संवेग भी यही है।

ऐसा लेखन अपने युग की साहित्यिक अभिरुचि को ही नहीं, सामाजिक अभिवृति को बदलता है। यों भी साहित्यिक अभिरुचि का बदलाव पूरी सामाजिक संस्कृति और उसके सरोकारों का बदलाव होता है। इस लिहाज़ से परसाई के इस अखबारी-कालम-लेखन से न केवल समकालीन साहित्यिक परिदृश्य में सांस्कृतिक और बौद्धिक चेष्टाओं के प्रति हमारी रुचि में तब्दीली आई है, बल्कि वह परिष्कृत और गहन रूप से मानवीय और सामाजिक हुई है। सौंदर्यशास्त्रवादी और कलावादी रुझानों से हटकर वह नए सिरे से परिवर्तनकामी और क्रांतिकारी हुई है। वो मसले और मुद्दे, वो लोग और इलाके, वो घटनाएं और प्रसंग, वो मामले और और सवालात, और जिन्हें कभी (और बाजवक्त तो अभी भी) साहित्य की चिंता और परिधि से बाहर मानने का रिवाज-सा रहा है, उन पर परसाई न केवल हमारा ध्यान खींचते हैं बल्कि उन्हें अपने जमाने के मुद्दों से भी संयुक्त करते हैं और इस तरह साहित्य की जमीन और परिसर को व्यापक एवं विस्तृत करते हैं। हम ऐसे ही साहित्य को श्लेगल के शब्दों में 'जाति के बौद्धिक जीवन का व्यापक सार' कह सकते हैं। ऊपरी नजर में वक्ती,

नाक की हिफ़ाज़त सबसे ज़्यादा इसी देश में होती है... ।

फौरी और स्थानीय मामलों पर एक अखबारी सपाटता और सरलता से लिखे गए इस लेखन के अंतरतम में कॉलरिज के उसी कवि का सधा हुआ रचनाकर्म अंतर्निहित है जो पहले धैर्य से अध्ययन करता है, गहनता से मनन करता है, सूक्ष्मता से समझता है और इस पूरी प्रक्रिया में उसका संज्ञान उसकी सहजानुभूति और आदत में शुमार हो जाता है।

अपने इस लेखन में परसाई सिर्फ यह नहीं कहते कि दुनिया मुझे ऐसी दिखाई पड़ती है, वो एक कदम आगे बढ़कर यह भी कहते हैं कि चीज़ों, प्रसंगों और लोगों–यानी कि मौजूदा यथार्थ के बारे में मेरा निर्णय यह है। इस लेखन की अपनी एक संश्लिष्ट संरचना है। उसमें चंद बिम्ब, प्रमुख रूप से उभरते हैं और चंद सामान्यीकृत प्रतिबिम्ब उनमें अनुस्यूत होते हैं। ये बिम्ब होते हैं–प्रवृत्तियों और रीतियों के, व्यक्तियों और घटनाओं के, प्रतिक्रियाओं और संवेदनाओं के। यहां प्रतिबिम्बित चीज़ों, लोगों और प्रसंगों की एक अंतर्निहित अन्विति होती है और यह अन्विति चीजों, लोगों और प्रसंगों को प्रतीकों में रूपांतरित कर देती है। प्रेमचंद के बाद अकेले परसाई हैं जिन्होंने सपाट गद्य की अखबारी तात्कालिकता को इतनी रचनात्मक उत्तेजना दी है कि उनके अनुभव, चरित्र और घटनाएं अनायास प्रतीक और बिम्ब का दर्जा अख्तियार कर लेते हैं और समकालीन इतिहास के अनिवार्य प्रसंग बन जाते हैं। इन सबके ऊपर है उनकी समावेशी रचनात्मकता, जिसके अंतर्गत सब कुछ एक विश्वदृष्टि और जीवन दर्शन से देखा, सुना, सोचा और समझा जाता है।

इस लेखन की काव्यात्मक–अन्विति समझने के लिए उसकी ऊपरी सरल और आसान–सी लगने वाली सतह के नीचे के उद्वेलन और आंदोलन की प्रकृति को जानना जरूरी है जिसमें परसाई की मानवीय करुणा और उनका सामाजिक और पवित्र और सुंदर गुस्सा सक्रिय है। यह करुणा और गुस्सा हमारे समकालीन समाज के विद्रूप और व्यवस्था द्वारा किए गए व्यापक अमानवीयकरण से उपजा है। उनके लेखन की संश्लिष्ट संरचना में भावना, विचार और नैतिक सरोकार एक सहजानुभूति में अंतर्लयित हो जाते हैं। यहां यथार्थ की समग्रता को रचनात्मक आवेग से अनुभूत किया जाता है और उसके ज़रिए वो जिसे उद्घाटित करना चाहते हैं उसके प्रति वो हमारी आंखें ही नहीं खोलते, हमारे दिमाग के बंद दरवाजों पर भी लगातार दस्तक देते हैं। वो उस ओर देखने के लिए हमें उकसाते हैं, उसके प्रति हमारी संवेदनात्मक प्रतिक्रिया की धार को भी सान पर चढ़ाते हैं। वो एक समाजवैज्ञानिक की तरह बताते हैं कि सच्चाई यह है, वो एक नैतिक नागरिक की तरह प्रेरित करते हैं और एक कलाकार की तरह रहस्योद्घाटन करते हैं। इस उद्घाटन में उनकी दृष्टि अंतर्भूत है, दृष्टि में अंतर्भूत है–दृश्य और दोनों में अंतर्भूत है–वह रोशनी, जिसके बिना दृष्टि और दृश्य दोनों निष्क्रिय संघटनाएं भर रह जाते हैं। यही वजह है कि परसाई जिस व्यक्ति और वस्तु को उघाड़ते हैं वह सामान्य का माध्यम बन जाता है। उनके यहां गेटे की यह सीख सबसे अधिक सक्रिय है कि व्यक्ति को पकड़ो क्योंकि उसी के माध्यम से सामान्य को दिखाया और प्रस्तुत किया जा सकता है।

अपनी बेहद परिचित और जानी–पहचानी चौतरफा दुनिया को परसाई की नजर से देखने में यहां जिस रोमांच का एहसास होता है वह अचंभे का होता है, उस नज़ारे का जो दिखता हुआ भी सामान्यत: अनदेखा रह जाता है। यह रोमांच अपने भीतर एहसास के इस स्पंदन को भी समाए होता है कि यथार्थ और वास्तविकता कैसी दिखाई देती है जब कोई खोजी आंख उनकी ओर और उनकी तह में देखती है। यह रोमांच सत्य के इस अनायास उद्घाटन का भी होता है जो अपने विन्यास में सहज–अनुभूति और तार्किकता से संपन्न होता है। कला की यही अन्वेषक–दृष्टि है जो वास्तविक जीवन की हमारी लापरवाही, बेरुखी और भोथरेपन से हमें बचाती है। परसाई हमें अपनी अर्द्धजागृति ओर अर्द्धचेतना की उस लगभग सुन्न स्थिति से भी उबारते हैं जिसमें हमारी रोजमर्रा तल्ख प्रतिक्रियाएं और प्रभाव हमारी ही लापरवाही से गायब हो जाते हैं और हम अपने सामाजिक अनुभव की ऊर्जा और उसकी चारित्रिक विशेषता को नजरंदाज कर जाते हैं। सच्चाई यह है और ऐसी है, यह एक ऐसा फैसला है जो जिंदगी को लगातार चौकसी और समग्रता में देखने से ही मुमकिन है और परसाई को पढ़ते हुए आप ऐसे तमाम फैसलों तक पहुंच जाते हैं। हम उनसे मुतास्सिर भी इसीलिए होते हैं कि अपने लेखन के ज़रिए वो अपने ही उन अनुभव बिम्बों से हमें गुजारते हैं; जो सोते–जागते अपनी जिंदगी के दौरान हर पल और हर सिम्त संचित होते रहते हैं लेकिन यहां उनका एक ऐसा रूपांतरण पेश होता है जो न केवल अधिक सहज, बल्कि अधिक परिपक्व और वयस्क भी होता है कि उन्हें यहां एक पसमंजर, एक संदर्भ और एक परिप्रेक्ष्य मिल जाता है। यह लेखन हमें अपने चारों तरफ़ के नज़ारे और स्वांग के प्रति जागरुक भी बनाता है। वह हमें अपनी ही संवेदनात्मक प्रतिक्रिया और अनुभव को देखने–समझने के क़ाबिल तो बनाता ही है, अपनी और अपनी चौतरफ़ा दुनिया के अंधेरे कोनों से बाहर निकालकर सारी मानवता की व्यापक दुनिया तक भी उठा देता है और पूरे इस दृश्य विस्तार की चिंता और सरोकारों से जोड़ देता है। इसकी वजह यह भी है कि परसाई चीज़ों, घटनाओं और लोगों के अभिनय और मुखौटों को जिस तरह उघाड़ते हैं, उसमें वो हमें हमेशा अपने साथ लिए चलते हैं–अपने अनुभव और संवेदनात्मक प्रतिक्रियाओं में शरीक करते हुए, उस दंश में भागीदार बनाते हुए जो उन्हें होता है क्योंकि उनकी नियति भी उस कबीर की तरह है जिसने कहा था–

'सुखिया सब संसार है, खावे अरु सोवै,
दुखिया दास कबीर है, जागे अरु रोवे...।'

स्त्रोत : परिभाषित परसाई से साभार

■

जब तान छिड़ी, मैं बोल उठा जब थाप पड़ी, पग डोल उठा औरों के स्वर में स्वर भर कर अब तक गाया तो क्या गाया?

व्यंग्य आलेख

व्यंग्य विधा के हिमालय-पुरुष हरिशंकर परसाई जी:

श्रवण कुमार उर्मलिया

व्यंग्य के पितामह, शब्दों के जादूगर, वक्रोक्ति के शिखर पुरुष, व्यक्ति एवं समाज की प्रवित्तियों के चितेरे, छल और कपट के उद्घोषक, विसंगतियों के अन्वेषक, आडम्बरों एवं मिथ्याचारों के द्रष्टा, दोमुंहेपन एवं पाखंड के संहारकर्ता, सामाजिक एवं राजनीतिक भ्रष्टाचार के नियोजन-कर्ता, अन्याय एवं शोषण के प्रकाशक एवं प्रतिवाद-समर्थक, राजनीतिक दोगलेपन पर निर्मम प्रहारक और सड़ी-गली व्यवस्था के शब्द-चिकित्सक इत्यादि भूमिकाओं को मद्देनजर रखा जाय तो जेहन में बस एक ही नाम उभरता है-और वह नाम है हरिशंकर परसाई। लेखन में परसाई जी का आना एक नक्षत्र के उदय होने जैसा था जिसने अपनी चकाचौंध से साहित्य-जगत को चमत्कृत कर दिया था। अधिकांश लोग इस धरती पर रहने के लिए आते हैं। पर गिने-चुने लोग होते हैं जो इस धरा पर बदलाव करने के लिए जन्म ग्रहण करते हैं। हरिशंकर परसाई जी ऐसी ही विभूतियों में से एक थे।

हम हमेशा से सुनते आये हैं कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। पर कालांतर में श्रृंगार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, अद्भुत और शांत रसों में सिर्फ़ अनुराग, प्रणय, लालित्य, प्रशंसा, क्रोध, आत्मश्लाघा, वात्सल्य, अध्यात्म इत्यादि से परिपूर्ण लेखन ने उस दर्पण को पालतू सा बना दिया था। एक प्रकार से दर्पण ने अपनी मर्यादा छोड़ दी थी और समाज को सभी कुछ वही अच्छा-अच्छा ही दिखाता था जो वास्तव में समाज देखना चाहता था। साहित्य का दर्पण अपना स्वभाव भूलकर 'जो जैसा है उसको वैसा' दिखाने से परहेज करने लगा था। वह समाज की विकृतियों, वीभत्स होती प्रवित्तियों और भयानक परिणामों की आशंकाओं को छिपाने लग गया था। जहां व्यक्ति और समाज की मनोवृत्तियां दूषित हो रही हों वहां समाज कैसे बचता और जब समाज ही नहीं बचता तो साहित्य का क्या अर्थ रह जाता। इसलिए समाज को एक ऐसे दर्पण की जरूरत थी जो समाज का भयानक और वीभत्स रूप भी दिखाए। और समाज को ऐसा दर्पण दिया था हरिशंकर परसाई जी ने। सही मायनों में उनके लेखन ने समाज को ऐसा आईना दिखाना शुरू किया था जिसमें व्यक्ति और समाज का वीभत्स चेहरा दिख सके।

ऐसा दावा नहीं किया जा सकता कि हरिशंकर परसाई जी ने ही साहित्य में व्यंग्य की धारा को स्थापित किया। पद्य और गद्य खासकर नाट्य-लेखन में हास्य एवं व्यंग्य के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। कबीर के दोहों और साखियों में हर जाति, धर्म और सम्प्रदाय के आडम्बरों को वेनकाब किया गया है। भारतेंदु युग में नाटकों में वक्रोक्तियों और कटाक्षों का भरपूर उपयोग किया जाता था। भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, महावीर प्रसाद द्विवेदी इत्यादि साहित्यकारों ने विपुल साहित्य रचा जिनमें व्यंग्य के दर्शन होते हैं। अन्य श्रेष्ठ लेखकों जैसे प्रेमचंद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, अमृतलाल नागर, भगवती चरण वर्मा इत्यादि साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में जमकर हास्य और व्यंग्य के प्रयोग किये। पर साहित्य में हास्य और व्यंग्य यथास्थान अनायास ही सृजित होता था। परसाई जी का महत्व इसलिए व्यापक और सर्वमान्य हो गया क्योंकि जहां पहले साहित्य में हास्य या व्यंग्य के प्रसंगों का प्रयोग एक फिलर के रूप में हुआ करता था, वह मुख्य थीम या कथानक का हिस्सा भर हुआ करता था, वहां परसाई जी ने व्यंग्य को ही मुख्य थीम या कथानक बनाकर प्रस्तुत किया।

परसाई जी के पहले भी समाज में विसंगतियां थीं, भ्रष्ट आचरण थे, झूठ-फरेब और आडम्बर थे, हर तरह की विकृतियां थीं पर हरिशंकर परसाई के रूप में उन्हें देखने की सूक्ष्म दृष्टि, उन्हें विश्लेषित करने की समझ और उनके प्रस्तुतिकरण की प्रभावशाली शैली साहित्य को प्राप्त हुई। अपने लेखन से उन्होंने लोगों में यह अहसास जगाया की यदि हम समाज में रह रहे हैं और यदि हमारे भीतर इतनी चेतना सम्पन्नता नहीं है कि हम सामाजिक सरोकारों के प्रति सजग हो सकें तो हमारा जीवन मृतप्राय सा है। परसाई जी ने देश को आज़ाद होते हुए देखा था और वे आज़ाद भारत में लोगों के अधिकारों, उनकी आकांक्षाओं, सुखद भविष्य

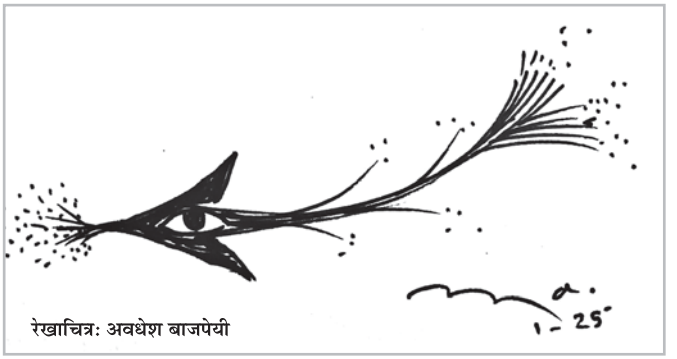

रेखाचित्र: अवधेश बाजपेयी

सब लुटा विश्व को रंक हुआ रीता तब मेरा अंक हुआ दाता से फिर याचक बनकर कण-कण पाया तो क्या पाया?

के सपनों इत्यादि को लेकर निरंतर चिंतनशील रहते थे एवं उनके परिप्रेक्ष्य में ज़मीनी हक़ीक़तों की समीक्षा करते रहते थे। उन्होंने इन क्षेत्रों से जुड़ी विसंगतियों पर जमकर लिखा और उनके लेखन से यह स्पष्ट होता है कि वे एक आदर्श भारत का सपना देखते थे जहां सभी को उनके वांछित अधिकार मिलें और सभी सुखी रहें। उनके लेखन को लेकर यह भी कहा गया कि वे वामपंथी विचारधारा के समर्थक हैं। पर मेरी नज़र में वे कम्युनिस्ट कतई नहीं थे। क्योंकि जितना मैं अपने देश के कम्युनिस्टों को जान पाया हूँ, वे देश के खराब हालातों से चिंतित नहीं होते, बल्कि चिंताजनक हालातों की सृष्टि करने से हिचकते नहीं हैं। और यदि हरिशंकर परसाईं जी ने पूँजीपतियों के खिलाफ लिखा है तो यह उनके काम्युनिष्ट विचारधारा का होने का सम्पूर्ण प्रमाण नहीं है।

परसाई जी ने व्यंग्य को सस्ते और मनोरंजक अर्थहीन हास्य से ऊपर उठाया और उसे इतनी गरिमा प्रदान की कि वह लोगों को गुदगुदाए नहीं बल्कि उन्हें तिलमिलाए और उन्हें सोचने पर विवश करे। अपनी रचनाओं के माध्यम से उन्होंने एक ऐसी चेतना का विस्तार किया जिसके माध्यम से लोग हर क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों का नोटिस ले सकें। देश और समाज यह माने बैठा था कि सभी कुछ ठीक चल रहा है, सारी व्यवस्थाएं परफेक्ट हैं, भ्रष्टाचार का कहीं नामोनिशान नहीं है, झूठ, आडम्बर, पाखंड वगैरह समाज से तड़ीपार कर दिए गए हैं, सामाजिक एकता एवं सौहार्द्र चरम पर है, चोरी-चमारी का कहीं कोई स्कोप ही नहीं है। एक प्रकार से पूरे देश में रामराज्य छाया हुआ है। परसाई जी ने अपनी रचनाओं से इस मिथ को तोड़ा, लोगों के मन मे बनी झूठी प्रतिमाओं को टुकड़े-टुकड़े कर दिया। उन्होंने लोगों की आंखों के आगे लगे भ्रम के चश्मे को तार-तार किया। उनकी रचनाओं ने लोगों की चेतना को झकझोरा और उन्हें अहसास दिलाया कि सभी बहुत बड़ी गलतफहमी में जी रहे थे।

रेखाचित्र: अवधेश बाजपेयी

परसाई जी एक लेखक, एक व्यंग्यकार के रूप में ही हमारे सामने नहीं आते हैं बल्कि उनका व्यक्तित्व बहुत व्यापक होकर उभरता है। वे सिर्फ़ बुराइयों और विसंगतियों को ही इंगित नहीं करते हैं बल्कि एक हिंट भी देते हैं कि कैसे उन पर विजय पाई जा सकती है। अपनी असंख्य रचनाओं में उनका आक्रोश उस सीमा तक मुखर होता हुआ दिखता है और जहां वे क्रांति की बात करते हैं, जनमानस के आंदोलन और विद्रोह की ओर इशारा करते हैं। शायद वे इस बात पर विश्वास करते थे कि जब तक देश और समाज की सड़ी-गली व्यवस्थाएं नेस्तनाबूद नहीं की जाएंगी तब तक पुनर्संरचना और पुनर्निर्माण संभव नहीं होगा।

अपने सृजन की सम्प्रेषणीयता बढ़ाने के लिए परसाई जी ने एक ऐसी शैली विकसित की जिसमें बिना लाग-लपेट की सरलतम भाषा का प्रयोग किया गया। उनका अध्ययन इतना विशाल था कि वे अपनी रचनाओं को आख्यानों, मुहावरों, उक्तियों, शेरो-शायरी इत्यादि से सटीक ढंग से सजाते थे जो उनके लेखन को और ज्यादा प्रभावी बनाता था। 'तुम्हारा परसाई' के लेखक कांति कुमार जैन ने परसाई ब्राह्मणों के बारे में लिखा है- 'लगता है परसाई लोग परसाई थे-अन्य धर्मधुरीण ब्राह्मण इन गंगाबीबी ब्राह्मणों के साथ पंक्ति में बैठने के लिए तैयार नहीं होते थे अत: पंगत के बाहर के इन ब्राह्मणों को परसों देकर बिदा करने की परंपरा थी। परसों यानि बुंदेलखंड में वह सीधा जो आहूत ब्राह्मण घर ले जा सके।' उन्होंने गंगाबीबी ब्राह्मणों के बारे में लिखा है कि गंगाबीबी ने किसी ब्रिटिश से विवाह कर लिया था और उनकी संतानें गंगाबीबी ब्राह्मण या गंग ब्राह्मण कहलाये। परसाई जी का विशाल व्यक्तित्व, ऊंची कद-काठी, गोरा-चिट्टा रंग गंग ब्राह्मण का प्रतिनिधित्व करता था पर परसाई जी खुद को पारम्परिक जाति-धर्म से परे मानते थे।

परसाई जी ने व्यंग्य लेखन के लिए मुख्यरूप से निबन्ध विधा को माध्यम बनाया पर उनका लेखन निबंध की पारंपरिक संरचना से हटकर हुआ करता था। उन्होंने निबंधों की अपनी ही एक परिमार्जित शैली विकसित की इसीलिए उनके निबंधों में परम्परागत पूर्वाग्रह नज़र नहीं आता है। और उनके निबंधों की खासियत यह है कि उनमें एकरसता का उबाऊपन हावी नहीं हो पाता है। उनका लेखन परिमार्जन और नूतन प्रयोगों की निरंतरता से होकर गुजरता है जिसके कारण पाठकों की रुचि बरकरार रहती है। उनके लेखन की विशेषता है कि एक छोटी सी बात जैसे 'आंगन में बैगन', 'पहिला सफेद बाल', 'सड़क बन रही है' इत्यादि शीर्षकों की ठहराव भरी शुरुआत से गति पकड़ती हुई रचना शब्द-दर-शब्द चमत्कारिक ढंग से व्यक्ति एवं समाज की प्रवित्तियों एवं विसंगतियों से जुड़ती चली जाती है। पाठक के सामने एक खाका खिंच जाता है, शब्द-चित्र का एक कैनवास तैयार होता जाता है और कथानक के चरम या निर्णायक मोड़ पर रचना अब्रप्टली समाप्त हो जाती है। परसाई जी से अक्सर पूछा जाता था कि आपकी रचनाओं का इतना अनायास अंत क्यों हो जाता है। वे स्पष्टीकरण देते थे कि मुख्य थीम या कथानक को पूरी तरह से अंकित करने के बाद ही रचना का अंत सुनिश्चित किया जाता है ताकि पाठक उस रचना से जुड़ा रहे और उसके दिलो-दिमाग में उथल-पुथल मचती रहे, गूंजती रहे।

परसाई जी ने ताउम्र संघर्ष झेला था, उन्हें आजीवन आर्थिक अभावों से जूझना पड़ा था। आदमी जब अंधेरों से जूझता है तभी उसे

जिस ओर उठी अंगुली जग की उस ओर मुड़ी गति भी पग की जग के अंचल से बंधा हुआ खिंचता आया तो क्या आया?

रोशनी की जुस्तजू होती है। संघर्ष ही आदमी के भीतर जिजीविषा का बीज रोपते हैं। आर्थिक संकट ही जीवन की राह तलाशते हैं। परसाई जी के लिए लेखन एक समर्पित पूजा की तरह था क्योंकि रचनाओं के पारिश्रमिक से उनका घर चलता था। और उस घर में सिर्फ उन्हें अपना ही नहीं बल्कि तीन-चार आश्रितों का पेट भी भरना पड़ता था। जीवन जब संघर्षों से जुड़ा हो तो इंसान साहसी होकर बिना हार माने परिस्थितियों से जूझने में विश्वास करता है। परसाई जी का जीवन इस बात की मिसाल है कि तमाम संघर्षों के बावजूद उन्होंने अपने लेखन से कभी समझौता नहीं किया। पूरी ईमानदारी और बेबाकी से वे वही लिखते रहे जो उनका जमीर गवारा करता था। वस्तुत: वे एकसाथ दो लड़ाइयां लड़ रहे थे। एक ओर उनकी लड़ाई उनके संघर्षों, उनकी अव्यवस्थित जिंदगी के प्रति थी तो दूसरी ओर वे लोगों के जीवनमूल्यों, देश और समाज के आदर्शों के लिए भी लड़ रहे थे।

परसाई जी ने अपने लेखन के लिए बहुत प्रभावी ढंग से पौराणिक पात्रों का भी उपयोग किया है जिसके कारण उनकी रचनाएं अतिविशिष्ट हो गई हैं। उन्होंने पुराने मिथकों और पौराणिक पात्रों एवं पौराणिक संदर्भों का अपनी कई रचनाओं में सफलतापूर्वक उपयोग किया है और उन्हें आधुनिक संदर्भों से जोड़कर भ्रष्टाचारों की पोल खोली है। 'भोलाराम का जीव' सरकारी भ्रष्टतंत्र का पर्दाफाश करने वाली ऐसी ही रचना है। उनकी रचनाओं में फैंटेसी का भी बहुत उपयोग हुआ है जिसके माध्यम से उन्होंने भ्रष्टाचार के तंत्रों का सफलतापूर्वक खुलासा किया है। 'इंस्पेक्टर मातादीन चाँद पर' उनकी ऐसी ही अद्भुत रचना है। परसाई जी के लेखन की एक और विशेषता है कि उन्होंने कहानी विधा का अनुसरण कर लिखी गई अपनी रचनाओं के कथोपकथन में कहानी के मुख्य कथानक से इतर भी विसंगतियों को इंगित करते हुए चलते हैं। उन्होंने अपने हर लेख में व्यवस्था पर कटाक्ष करते हुए जो विचार लिखे हैं वे एक प्रकार से सूक्ति वाक्य बन गए हैं। जैसे-'इस देश के बुद्धिजीवी शेर है। किंतु सियारों की बारात में बैंड बजाते है।' या 'अच्छी आत्मा फोल्डिंग कुर्सी की तरह होनी चाहिए। जरूरत पड़ी तब फैलाकर बैठ गए, नहीं तो मोड़कर कोने से टिका दिया।' या 'अर्थशास्त्र जब धर्मशास्त्र के ऊपर चढ़ बैठता है तब गोरक्षा आंदोलन के नेता जूतों की दुकान खोल लेते हैं।' इस तरह वे वन लाइनर व्यंग्य के जनक भी कहे जा सकते हैं।

उनका सृजन इतना विशाल है कि आश्चर्य होता है, कोई अपने जीवन मे इतना कैसे लिख सकता है। उन्होंने लंबे समय तक 'सुनो भाई साधो', 'कहत कबीर', 'तुलसीदास चंदन घिसें' जैसे नियमित कॉलम लिखे, असंख्य निबंध और कहानियों में व्यंग्य को पिरोया, तीन लघु उपन्यास लिखे- 'ज्वाला और जल', 'तट की खोज', 'रानी नागफनी की कहानी', 'और अंत में' शीर्षक से कल्पना नामक पत्रिका के संपादक को पत्र लिखे, ढेर सारे पत्र और संस्मरण लिखे, लघु व्यंग्य और बाल साहित्य भी रचा। उनके बैठे-ठाले का लेखन ही इतना है कि उन्हें लेखकों की अग्रिम पंक्ति में खड़ा करने के लिए पर्याप्त है। सारिका द्वारा चलाये गए कॉलम 'गर्दिश के दिन' में परसाई जी का आलेख इतना मार्मिक है कि सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। उन्हें देश ही नहीं बल्कि विश्व साहित्य और विश्व राजनीति का विषद ज्ञान था। उनके राजनीतिक लेखों का भण्डार देश-काल-परिस्थिति के जीवंत दस्तावेज हैं। मैक्सिम गोर्की की कहानी 'छब्बीस आदमी और एक लड़की' से प्रेरणा लेकर लिखी उनकी रचना 'एक लड़की और पांच दीवाने' का नाट्य रूपांतर बहुचर्चित हुआ है। राजकमल प्रकाशन ने छै खंडों में परसाई रचनावली का प्रकाशन किया है।

व्यंग्य के क्षेत्र में परसाई जी के समकालीनों में श्रीलाल शुक्ल, शरद जोशी और रवींद्रनाथ त्यागी जी का नाम लिया जाता है पर इन चारों में तुलना करना उचित नहीं होगा। चारो ही अपनी अपनी विशिष्टताओं के लिए जाने जाते हैं। श्रीलाल शुक्ल मुख्य रूप से उपन्यासकार थे और 'राग दरबारी' लिखकर उन्होंने अपार ख्याति अर्जित की। उनके इस उपन्यास को व्यंग्य उपन्यास का दर्ज़ा मिल गया और इसमें दो राय नहीं कि यह अनूठा एवं सबसे ज्यादा पढ़ा जाने वाला उपन्यास है। शरद जोशी के व्यंग्य लेखन का फलक और विषयों की विविधता बहुत व्यापक थी। विसंगतियों पर जहां एक ओर परसाई जी के प्रहार बहुत निर्मम होते हैं वहीं दूसरी ओर जोशी जी के प्रहार मखमली और नज़ाकत नफ़ासत वाले होते हैं। उदाहरण के लिए जोशी जी का कथन उपयुक्त होगा- 'थूक कर चाटना साहित्य में वीभत्स रस होता है पर राजनीति में यह श्रृंगार रस है'। जोशी जी का एक और बड़ा योगदान है कि उन्होंने मंचों से व्यंग्य पढ़ने की परम्परा स्थापित की।

रवींद्रनाथ त्यागी जी मुख्यत: एक स्थापित कवि थे और उनका संस्कृत, हिंदी, उर्दू और अंग्रेजी पर समान अधिकार था। उन्होंने चारो भाषाओं की कृतियों को पढ़ रख था। उनके व्यंग्यों का लालित्य और उनमें निहित चुटकियाँ अनोखी होती हैं इसलिए उनकी रचनाएं पाठकों को बांधे रखने में सक्षम होती हैं। वास्तव में अपनी रचनाओं से उन्होंने हास्य और व्यंग के बीच की एक धारा का सृजन किया और व्यंग्यकारों की त्रयी में अपने को शामिल करवा लिया। उनकी उक्तियाँ भी मारक होती थीं, जैसे- 'काम या तो आभार प्रदर्शन से होता है या उभार प्रदर्शन से'। हरिशंकर परसाई-शरद जोशी-रवींद्रनाथ त्यागी को ही व्यंग्य की प्रथम त्रयी होने का सम्मान प्राप्त है।

आज तीनों व्यंग्यकार हमारे बीच नहीं हैं पर जब भी व्यंग्य का इतिहास लिखा जाएगा, प्रथम व्यंग्य त्रयी का क्रम यही रहेगा। हरिशंकर परसाई जी हमेशा व्यंग्य के पितामह के रूप में जाने जाएंगे।

लेखक वरिष्ठ व्यंग्य साहित्यकार हैं।
संपर्क : 19/207 शिवम खंड, वसुंधरा
गाज़ियाबाद-201012.
मोब. 9999903035

जो वर्तमान ने उगल दिया उसको भविष्य ने निगल लिया है ज्ञान, सत्य ही श्रेष्ठ किंतु जूठन खाया तो क्या खाया?

इस विशेषांक के आवरण और रेखाचित्र के चित्रकार : अवधेश बाजपेयी

अवधेश बाजपेयी, (इस अंक के चित्रकार), भारतीय कला जगत के एक प्रतिष्ठित कलाकार, का जन्म 1965 में कटनी ,जबलपुर में हुआ था।

उनका कला प्रेम बचपन से ही विकसित हुआ था, जब उन्होंने प्राकृतिक सामग्रियों से चित्रकारी शुरू की थी। कलानिकेतन, जबलपुर से कला की औपचारिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद, उन्होंने विभिन्न माध्यमों जैसे सिरेमिक, फाइबरग्लास, और लकड़ी के साथ प्रयोग किए।

अवधेश बाजपेयी

उनकी कला भारतीय संस्कृति, पौराणिक कथाओं और समकालीन मुद्दों से प्रेरित होती है, जो भावनात्मक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक संरचनाओं की जटिलताओं को उजागर करती है।

बाजपेयी की कला में रंगों और रूपों का अनूठा उपयोग होता है, जो दर्शकों को एक रहस्यमय ब्रह्मांड से जोड़ने का प्रयास करता है। उन्होंने देश और विदेश की कई प्रमुख दीर्घाओं जैसे आइकॉन गैलरी अमेरिका,शांतिनिकेतन, मुंबई, दिल्ली, और भोपाल में अपनी एकल और समूह प्रदर्शनियाँ आयोजित की हैं।

उनके कार्य सार्वजनिक कला के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण हैं, जैसे कटनी और जबलपुर में भित्ति चित्र। उनकी कृतियाँ अब भारत और विदेशों में निजी संग्रहों का हिस्सा हैं, जो उनकी समकालीन कला पर गहरी छाप को दर्शाती हैं।

भोपाल में माया देवी गुप्ता आर्ट गैलरी के उमेश कुमार गुप्ता द्वारा उनकी लगभग 40 पैंटिंग ,स्केच का संकलन किया गया है। जिसमें राजकमल प्रकाशन द्वारा प्रकाशित कैलेंडर के हरिशंकर परसाई के मूल चित्र, बुद्ध, कबीर, ऋतुसहारण, निराला, भेडाघाट, धुआँधार, महात्मा गांधी, गणेश के चित्र, परसाई के स्केच शामिल है ।

जबलपुर वासी अवधेश बाजपेयी की अपनी एक अलग पहचान है। उनकी पैंटिंग सबसे अलग दिखती हैं। अधिकांश थ्री डी रहती है। चित्र के अन्दर चित्र दिखता है। रवि वर्मा के बाद वे पहले कलाकार हैं जिन्होंने भारतीय साहित्यकारों कबीर, निराला, परसाई, मुक्तिबोध, नागार्जुन आदि को हुबहू चित्रित किया है ।

अपनी कला अवधेश बाजपेयी की ज़बानी

दोस्तो यह कला पर मेरा एक लघु वक्तव्य है, हर कोई कलाकार से यह जानना चाहता है कि आप क्या रचते हैं और क्यों रचते हैं? इत्यादि। करोड़ों वर्ष पहले जिस तरह जीवन का निर्माण हुआ यह सब जानने, समझने में मेरी गहरी रुचि है. इसीलिए मेरे चित्रों में विज्ञान, इतिहास, काव्य, भाषा लगातार दिखाई देंगे।

मैंने कला के तकरीबन सभी माध्यमों में काम किया है और उन सभी का जिक्र यहां इस छोटे से प्रोफाइल में सम्भव नहीं है, इसलिए यहां पर पिछ्ले 10 वर्षो के कुछ कामों को यहां प्रस्तुत कर रहा हूं।

मेरे चित्र प्रकृति की तरह विस्तार लिये होते हैं इनमें कोई फोकस केंद्र नहीं होता बल्कि जहाँ पर आप देखेंगे वहीं फोकस होगा। जैसे धरती के जिस केन्द्र में आप गौर करेंगे वहाँ पर आपको बहुत सी चीजें दिखाई देंगी। इन चित्रों को आप दूर से, झटके से नहीं देख सकते बल्कि आपको चित्र के पास, बिल्कुल त्वचा की तरह पास आकर चित्र की सतह को देखना होगा । दुनिया की यांत्रिक तेज गति के प्रतिकूल मेरे चित्र सांस की तरह धीमी गति की मांग करते हैं । इन चित्रों के खास केन्द्रिय तत्व है 3D डॉट्स, रेखाएं ,आकारों का गणतीय संयोजन. इन चित्रों की रचना सार्वभौमिक (यूनीवर्सल) शैली से की गयी है। इन चीजों का निर्माण,बिन्दु से प्रारंभ होता है और बिन्दु में समाप्त भी। कोई भी दृश्य बिन्दु से शुरू होता है और बिन्दु में खत्म। उड़ता हुआ हवाई जहाज इसका बेहतरीन उदाहरण है। लेकिन मेरे बिन्दु 2D नहीं 3D हैं। इस तरह ये बिंदु सांसारिक वस्तुओं, प्राकृतिक संरचनाओं में बदल जाते हैं और जिन्हें देखकर लगता है कि इन्हें पहलीबार देख रहे होते हैं।

इन चित्रों की आधार भूमि ईशावास्योपनिषद के इस श्लोक में है–

ॐ पूर्णमद पूर्णमिदं पूर्णामुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवाव शिष्यते।।

अर्थात– वह पूर्ण है, यह भी पूर्ण है, उस पूर्ण से ही यह पूर्ण उत्पन्न हुआ है, पूर्ण से पूर्ण को निकाल देने पर पूर्ण ही शेष रहता है।

भारतीय लोग बोल–चाल में अक्सर एक वाक्य देखने को

यश ही परमार्थ है. हमें एक काम ऐसा जरूर करना चाहिए, जिससे नाम अमर रहे।

मिलता है कि ''कण-कण में भगवान है इसका आशय है- हर चीज, हर वस्तु, हर क्रिया-प्रतिक्रिया महत्वपूर्ण है। यही क्रियाएं, प्रतिक्रियाएं canvas की सतह पर तैरती व फैलती नजर आएँगी। मुझे हर स्ट्रोक में संपूर्णता की मांग होती है साथ में उसका एहसास। हर कण अपने आप में पूर्ण होता है या हर कण का समय में रचनात्मक विस्तार है।

देखने की मौलिकता का अभ्यास करना या हर दृश्य या वस्तु को नयी मौलिकता प्रदान करने का संगीतमय चित्रात्मक जुगलबंदी होती है। इन चित्रों में अवचेतन के दृश्य व सृष्टि मे जो इन आँखों से दिखाई नहीं देते वो अनंत आकृतियाँ भी दिखाई देती है- इन चित्रों में एल्गोरिदम् भी है। ये चित्र भाषा मैंने अपने 30 वर्षों के अनुभवों के आधार पर विकसित की है। इन चित्रों को आप कभी पूरा नहीं देख सकते हमेशा बहुत कुछ छूट जायेगा, और दृश्य से बहुत कुछ बचा रह जाना, दृश्य का सौन्दर्य है।

इन थ्री डायमेन्सनल डॉट्स से भारतीय यथार्थ-सौन्दर्य को रचा गया है- ये डॉट्स बैलून की तरह हैं। जो हजारों तरह के आकारों के साथ मौजूद हैं। मेरी रचनाएँ संसार के सभी विषयों से प्रभावित हैं और संसार के सभी अभिव्यक्ति के माध्यमों से। इन चित्रों में हमारे हर दिन की उन हजारों आकारों का व्यौरा होता है जिनके अनुभवों से हम गुज़रते है व जिनकी हम कल्पना करते हैं। ये अनुभव व दृश्यों के समुच्चय होते हैं।

मुझे अपने चित्रों में अनन्तता पसंद है, मेरी कोशिश होती है हर क्षण का कितना विस्तार हो सकता है और विराट का मूल कितने रूपों में नया हो सकता है। प्रकृति विराट और सूक्ष्म में बँटी हुई है। विराट, विराट होता जा रहा है और सूक्ष्म, सूक्ष्म होता जा रहा- दोनों की गणनायें जारी हैं। दुनियाँ और सृजन अंतहीन है। नेती-नेती- अवधेश बाजपेयी

मैकेनिकल थिंकिंग बहुत खतरनाक होती है, इससे बचना चाहिए. यह हमारी वैचारिक प्रणाली को अराजक बना देती है, ज्ञानी गुणी लोग मुझसे ज्यादा बेहतर बता पाएंगे. इस तरह की प्रक्रियाओं पर लिखना चाहिए. बोलने और लिखने में धरती आसमान का फर्क है। जब हम बोलते हैं तो वह सामने, साथ वाले कुछ लोगों के लिए होता है, जिसे हम सत्संग भी कहते हैं पर जब लिखते हैं तो वह सारी दुनिया के लिए होता है, इतने मात्र से भाषा बदल जाती है। लिखने और बोलने की भाषा में अंतर होता है। कृष्ण ने अर्जुन से जो बोला है, उसे लिखा है की तरह देखना चाहिए. और जब हम पढ़ते हैं तो वो भी पढ़ना होता है, जो लिखने की मंशा के बहुत पीछे होता है या कह सकते हैं, लिपि के अंतराल में जो अवकाश होता है, और साँस छोड़ते हैं, इस अंतराल में वो सारे गहन अर्थ होते हैं, जिनके कारण वो बात लिखी गयी, जो हम पढ़ते हैं, जो मैं paint करता हूं उसका एक प्रतिशत भी नहीं लिख पाता ये अलग समस्या है, आपने हिमालय देखा अनुभव किया, उसे शब्दों में बताना असंभव है, बुद्ध ने जो अनुभव किया, उसे हम आज तक पढ़ने देखने की कोशिश कर रहे हैं या गाँधी ने जो महसूस किया उसे आज भी खोजने की कोशिश कर रहे हैं, आइंस्टाइन, चैप्लिन ने क्या देखा होगा गाँधी में हमारे लिए खोज का विषय है। या गांधी फिल्म निर्माता अपने पिता के साथ, बचपन में, इंग्लैंड में, गाँधी फिल्म देखकर उसके मन में क्या हुआ कि, वो महान गाँधी फिल्म ही बना डाली, पूरी जिंदगी एक ही आदमी में खर्च कर दी. अंत में यही कहना चाहता हूँ कि गांधी का स्वराज ही पढ़ लो समय निकालकर. हर बात हर किसी पर लागू नहीं होती. मैं तो अपने गाँव में ही रहूँगा। यह बहुत व्यापक विषय है, मैंने सिर्फ संकेतों पर आपका ध्यान दिलाने की कोशिश की है।

चेहरा बनाया पर आँख नहीं बनायी तो लोग उस चित्र को काफी देर तक देखते रहे और परेशान हो विचार विमर्श करते रहे, होंठों की जगह, धरती के समानांतर आड़ी रेखा थोड़ा लयात्मक बनायी और वो मेरे ऊपर प्रश्नों की उल्टी करना चाहते थे पर नहीं कर पाए, फिर मैंने आँखें बना दी, वो मुस्कुरा कर चल दिये. यही वो बिंदु है जहां से मैं अज्ञात, काल्पनिक आकृति बनाने लगता हूँ, दर्शक ठहर जाता है कि आखिर ये है क्या?यहां से उसके भीतर तर्क की शुरुआत होती है, दिमाग में जोर पढ़ता है। सोचना शुरू करता है, फोटो जैसा चित्र को देखकर, वह देखना बंद कर, शब्दों की भाषा पर चला जाता है। मेरी कोशिश होती है कि दर्शक सम्वेदना और दुनिया के विस्तार को देखे, जैसे जब हम जंगल में घूमते हैं तब हज़ारों आकृति हम पहली बार देख रहे होते हैं. हमारा देखना ही एसा हो कि जैसे पहली बार देख रहे हैं। **Vangogh** अपने भाई **thiyo** को अक्सर यही बताने की कोशिश करता था कि, लोगों से जो देखना छूट जाता है वही दिखाना चाहता हूं। रबींद्रनाथ टैगोर भी इसी तरह की बात कहते थे अपने चित्रों के बारे में मुझे लगता है कला का काम प्रचार करने का नहीं बल्कि संवेदना को पुष्ट करने का है। चित्र में संवेदना, चित्र में अंकित आकृति से पैदा नहीं होता बल्कि आकृति को कैसे बनाया है, ब्रश के स्ट्रोक में चित्रकार की सम्वेदना कितनी घनी भूत है वो भी वैश्विक काव्यात्मक समझ के साथ उदाहरणार्थ हर कलाकार मनुष्य ही चित्रित करता है, पर वह उसे किस तरह से रचता है यही तो महत्वपूर्ण है. इतिहास ऐसे कलाकारों से भरा हुआ है। हमें उनसे और नवजात कलाकारों से ही तो सीखना है। संवेदना का अर्थ भी तो यही है। दुनिया की हर जीवित चीजों से प्यार करना और उसे सहेजना ही जिंदगी की सफलता है और यही मोक्ष है।

अवधेश बाजपेयी वरिष्ठ चित्रकार हैं।
सम्पर्क : 606 संजीवनी नगर, गुलमोहर पार्क के पास, गढा जबलपुर (म.प्र.)
मो. 8989483165, संकलन : उमेश कुमार गुप्ता

■

बेइज्जती में अगर दूसरे को भी शामिल कर लो तो आधी इज्जत बच जाती है।

संस्मरण आलेख

भाई रतन कुमार : व्यक्ति नहीं, संस्था

– हरिशंकर परसाई

आज से तीस-पैंतीस साल पहले की बात है। मैं भोपाल में जुमेराती में भाई रतनकुमार के घर ठहरा था। भाई रतनकुमार व अक्षय कुमार की मंडली से मेरे संबंध भोपाल राज्य विलीनीकरण आंदोलन और 'नई राह' साप्ताहिक के द्वारा बने थे। ये संबंध अभी तक टिके हैं। शाम को हम लोग बैठे गप्पें मार रहे थे कि एक व्यक्ति आया। वह जवान था, यही तीस साल के लगभग। मैं तब पैंतीस का होऊँगा। वह व्यक्ति नमस्कार आदि से निपटकर मुझे देखने लगा। भाई रतनकुमार ने परिचय कराया – ये हरिशंकर परसाई हैं और ये रामविलास शर्मा कवि। हम गले मिले।

भाई रतन कुमार जी से मेरी पहली भेंट भोपाल राज्य विलीनीकरण के आरंभ में कभी हुई थी. मेरे बहनोई मिश्रीलाल दुबे भी इस आंदोलन में सक्रिय थे। उन्होंने बताया था कि जुमेराती में एक बड़ी इमारत है तिजिला, उसमें रतनकुमार जी रहते हैं और वहीं से 'नई राह' साप्ताहिक निकलता है। 'नई राह' प्रजामंडल के प्रगतिशील युवकों का मुख पत्र था। इसके सम्पादक रतन कुमार जी और साथी सम्पादक अक्षय कुमार जैन आदि थे। भोपाल में भाई और बाबू होते हैं। रतन कुमार जी रतन भाई कहलाते थे, और अक्षय कुमार जी 'अक्षय बाबू' कहलाते थे।

मैं लेखक के रूप में जाना जाने लगा था। मैं दूसरी मंजिल पर पहुंचा और रतन भाई को पूछा। उन्होंने मेरा परिचय पूछा। मेरे बतलाने पर चश्मा लगाये एक दुबले से सौम्य आदमी ने मुझसे हाथ मिलाया और बैठने को कहा। मैंने देखा वे अत्यंत सौम्य, विनम्र, धीरे बोलने वाले, संजीदा व्यक्ति हैं। मैंने सोचा ये क्या लड़ते होंगे? क्या संघर्ष करते होंगे? ये तो समर्पित व्यक्तित्व वाले हैं। वे विनम्र योद्धा हैं। आक्रामकता उनमें कहीं नहीं है। अक्षय बाबू से मेरी मुलाकात बाद में हुई। वे मेरे हम उम्र मस्त आदमी, अट्टहास करने वाले, सभाचतुर विनोदी और हाजिर जवाब। उनसे मेरे संबंध बेतकल्लुफी के हो गये।

'नई राह' के साथ एक मंडली थी। जो संघर्ष के दौरान बनी। इसी तरह जबलपुर में समाजवादी नेता पंडित भवानी प्रसाद तिवारी 'प्रहरी' साप्ताहिक निकालते थे और एक मंडली थी जिसे 'प्रहरी समाज' कहा जाता था। इसमें मुख्यत: 1942 के 'भारत छोड़ो' आंदोलन के उग्र कार्यवाहियां करने वाले तरुण समाजवादी, कवि, लेखक, संगीतज्ञ थे।

मेरा भोपाल जाना अक्सर होता था। कभी रेडियो के काम से जाता था। कभी रेंहटी में अपनी बहिन रुकमणी के यहां जाता, तो आते-जाते भोपाल रुकता। मेरी मुलाकात फिर मथुरा बाबू, गोविन्द बाबू, बालकृष्ण गुप्त, मोहिनी श्रीवास्तव आदि से हुई। खान शाकिर अली खां अत्यंत आदरणीय और दबंग नेता थे। उनसे भी मेरे बहुत अच्छे संबंध बने। मैं भोपाल जाता तो भाई साहब के दूसरी मंजिल के हाल में गोष्ठी जमती थी।

भाई रतन कुमार जी अत्यंत उदार व्यक्ति थे। उन्होंने बहुत कुछ खोया जिंदगी में, बहुत उतार चढ़ाव देखे। बहुत कष्ट भोगे. पर उनकी सहृदयता सदैव बनी रही। ऐसे आदमी कम होते हैं, जिनका सब आदर करते हों, सब जिन्हें सम्मान देते हों.. सब जिन पर विश्वास करते हों। पुराने भोपाल में रतन कुमार जी भाई ऐसे हो व्यक्तित्व रहे हैं। और ऐसे आदमी भी कम होते हैं, जो सबका ध्यान रखते हों, सबकी मदद करते हों। इन्हीं कारणों से रतनभाई एक संस्था रहे हैं। व्यक्ति मात्र नहीं।

भाई साहब बहुत सहृदय थे। साथ ही आशावादी और उत्साही भी. वे बड़ी कठिनाइयों से गुजरे, पर उनकी सहृदयता आशावादिता और उत्साह में कमी नहीं आई। मैंने मानसिक संतुलन खोते भी उन्हें नहीं देखा। वे प्रजामंडल कांग्रेस से जुड़े रहे। वे एक बार विधानसभा चुनाव भी लड़े, पर सफल नहीं हुए। बहुत समय तक भोपाल नगर निगम के निर्दलीय पार्षद रहे। उत्कृष्ट शिक्षक भी रहे। पत्रकारिता उनका खास शौक था। 'नई राह' तो बंद हो गया था। वे काफी साल बाद नवभारत तथा फिर देशबंधु (भोपाल संस्करण) के सम्पादक रहे। उनकी इच्छा जागृत हुई कि 'नई राह' फिर से निकाला जाय। उनके साथियों में सहमति हुई। साप्ताहिक पत्र 'फिर नई राह' निकला। सम्पादक वहाँ रतन कुमार जी और अक्षय कुमार जी हुए। ■

> में परसाई जी के द्वारा रचित मेरे समकालीन पढ़ रहा था, जिसमें उन्होंने डॉक्टर रामबिलास शर्मा का ज़िक्र करते हुए लिखा कि मे आज से तीस-पैंतीस साल पहले भोपाल में जुमेराती में भाई रतनकुमार के घर ठहरा था। तब मैंने अपने परिचित रतनकुमार जी के सुपुत्र डाक्टर आलोक गुप्ता से कुछ सामग्री माँगी तो उन्होंने यह दुर्लभ चित्र दिया तब परसाई जी हमिदिया अस्पताल में 1981 में भर्ती थे। ये आलेख भी भेजा हम उनका आभार प्रकट करते हैं।
>
> – उमेश कुमार गुप्ता

चश्मदीद वह नहीं है, जो देखे; बल्कि वह है, जो कहे कि मैंने देखा।

हरिशंकर परसाई की यादगार लघु रचनाएँ

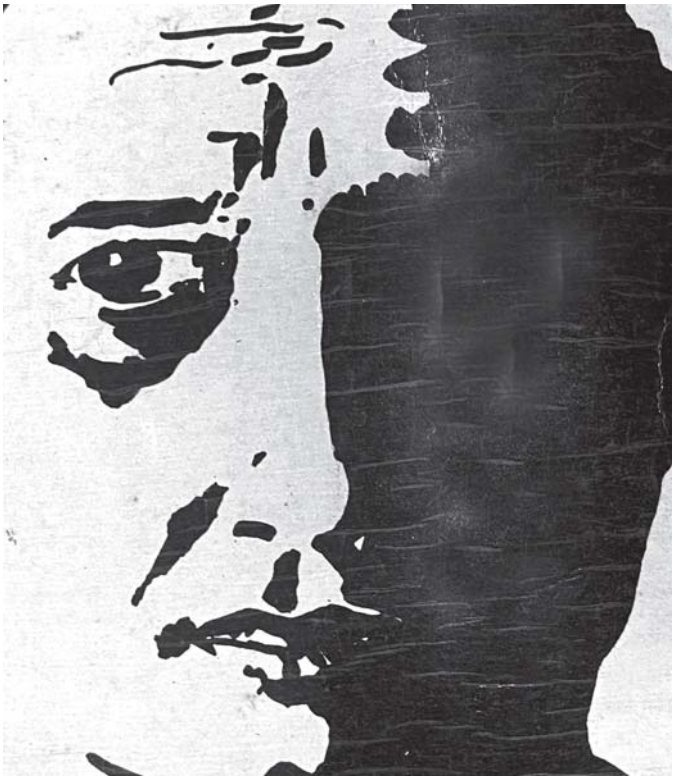

● मैं और चूहा

चाहता तो लेख का शीर्षक 'मैं और चूहा' रख सकता था। पर मेरा अहंकार इस चूहे ने नीचे कर दिया। जो मैं नहीं कर सकता, वह मेरे घर का यह चूहा कर लेता है। जो इस देश का सामान्य आदमी नहीं कर पाता, वह इस चूहे ने मेरे साथ करके बता दिया।

इस घर में एक मोटा चूहा है। जब छोटे भाई की पत्नी थी, तब घर में खाना बनता था। इस बीच पारिवारिक दुर्घटनाओं–बहनोई की मृत्यु आदि के कारण हम लोग बाहर रहे।

इस चूहे ने अपना अधिकार मान लिया था कि मुझे खाने को इसी घर में मिलेगा। ऐसा अधिकार आदमी भी अभी तक नहीं मान पाया। चूहे ने मान लिया है।

लगभग पैंतालिस दिन घर बन्द रहा। मैं तब अकेला लौटा। घर खोला, तो देखा कि चूहे ने काफी क्रॉकरी फर्श पर गिराकर फोड़ डाली है। वह खाने की तलाश में भड़भड़ाता होगा। क्रॉकरी और डिब्बों में खाना तलाशता होगा। उसे खाना नहीं मिलता होगा, तो वह पड़ोस में कहीं कुछ खा लेता होगा और जीवित रहता होगा। पर घर उसने नहीं छोड़ा। उसने इसी घर को अपना घर मान लिया था।

जब मैं घर में घुसा, बिजली जलाई तो मैंने देखा कि वह खुशी से चहकता हुआ यहाँ से वहाँ दौड़ रहा है। वह शायद समझ गया कि अब इस घर में खाना बनेगा, डिब्बे खुलेंगे और उसकी खुराक उसे मिलेगी।

दिन–भर वह आनन्द से सारे घर में घूमता रहा। मैं देख रहा था। उसके उल्लास से मुझे अच्छा ही लगा।

पर घर में खाना बनना शुरू नहीं हुआ। मैं अकेला था। बहन के यहाँ जो पास में ही रहती है, दोपहर को भोजन कर लेता। रात को देर से खाता हूँ, तो बहन डब्बा भेज देती। खाकर मैं डब्बा बन्द करके रख देता। चूहाराम निराश हो रहे थे। सोचते होंगे यह कैसा घर है। आदमी आ गया है। रोशनी भी है। पर खाना नहीं बनता। खाना बनता तो कुछ बिखरे दाने या रोटी के टुकड़े उसे मिल जाते।

मुझे एक नया अनुभव हुआ। रात को चूहा बार–बार आता और सिर की तरफ मच्छरदानी पर चढ़कर कुलबुलाता। रात में कई बार मेरी नींद टूटती मैं उसे भगाता। पर थोड़ी देर बाद वह फिर आ जाता और सिर के पास हलचल करने लगता।

वह भूखा था। मगर उसे सिर और पाँव की समझ कैसे आई? वह मेरे पाँवों की तरफ गड़बड़ नहीं करता था। सीधे सिर की तरफ आता और हलचल करने लगता। एक दिन वह मच्छरदानी में घुस गया।

मैं बड़ा परेशान। क्या करूँ? इसे मारूँ और यह किसी अलमारी के नीचे मर गया, तो सड़ेगा और सारा घर दुर्गन्ध से भर जाएगा। फिर भारी अलमारी हटाकर इसे निकालना पड़ेगा।

चूहा दिन–भर भड़भड़ाता और रात को मुझे तंग करता। मुझे नींद आती, मगर चूहाराम मेरे सिर के पास भड़भड़ाने लगते।

आखिर एक दिन मुझे समझ में आया कि चूहे को खाना चाहिए। उसने इस घर को अपना घर मान लिया है। वह अपने अधिकारों के प्रति सचेत है। वह रात को मेरे सिरहाने आकर शायद यह कहता है – 'क्यों, बे, तू आ गया है। भर–पेट खा रहा है, मगर मैं भूखा मर रहा हूँ मैं इस घर का सदस्य हूँ। मेरा भी हक है। मैं तेरी नींद हराम कर दूँगा। तब मैंने उसकी माँग पूरी करने की तरकीब? निकाली।'

जिनकी हैसियत है, वे एक से भी ज़्यादा बाप रखते हैं- एक घर में, एक दफ्तर में, एक-दो बाजार में, एक-एक हर राजनीतिक दल में।

रात को मैंने भोजन का डब्बा खोला, तो पापड़ के कुछ टुकड़े यहाँ-वहाँ डाल दिए। चूहा कहीं से निकला और एक टुकड़ा उठाकर अलमारी के नीचे बैठकर खाने लगा। भोजन पूरा करने के बाद मैंने रोटी के कुछ टुकड़े फर्श पर बिखरा दिए। सुबह देखा कि वह सब खा गया है।

एक दिन बहन ने चावल के पापड़ भेजे। मैंने तीन-चार टुकड़े फर्श पर डाल दिए। चूहा आया, सूँघा और लौट गया। उसे चावल के पापड़ पसन्द नहीं। मैं चूहे की पसन्द से चमत्कृत रह गया। मैंने रोटी के कुछ टुकड़े डाल दिए। वह एक के बाद एक टुकड़ा लेकर जाने लगा।

अब यह रोजमर्रा का काम हो गया। मैंने डब्बा खोला, तो चूहा निकलकर देखने लगता। मैं एक-दो टुकड़े डाल देता। वह उठाकर ले जाता। पर इतने से उसकी भूख शान्त नहीं होती थी। मैं भोजन करके रोटी के टुकड़े फर्श पर डाल देता। वह रात को उन्हें खा लेता और सो जाता।

इधर मैं भी चैन की नींद सोता। चूहा मेरे सिर के पास गड़बड़ नहीं करता। फिर वह कहीं से अपने एक भाई को ले आया। कहा होगा, 'चल रे, मेरे साथ उस घर में। मैंने उस रोटीवाले को तंग करके, डरा के, खाना निकलवा लिया है। चल दोनों खाएँगे। उसका बाप हमें खाने को देगा। वरना हम उसकी नींद हराम कर देंगे। हमारा हक है।' अब दोनों चूहाराम मजें में खा रहे हैं।

मगर मैं सोचता हूँ- आदमी क्या चूहे से भी बद्तर हो गया है? चूहा तो अपनी रोटी के हक के लिए मेरे सिर पर चढ़ जाता है, मेरी नींद हराम कर देता है।

इस देश का आदमी कब चूहे की तरह आचरण करेगा?

● **अकाल-उत्सव**

दरारों वाली सपाट सूखी भूमि नपुंसक पति की संतानेच्छु पत्नी की तरह बेकल नंगी पड़ी है। अकाल पड़ा है। पास ही एक गाय अकाल के समाचार वाले अखबार को खाकर पेट भर रही है। कोई 'सर्वे वाला' अफसर छोड़ गया होगा। आदमी इस मामले में गाय-बैल से भी गया बीता है। गाय तो इस अखबार को भी खा लेती है, मगर आदमी उस अखबार को भी नहीं खा सकता जिसमें छपा है कि अमेरिका से अनाज के जहाज चल चुके हैं। एक बार मैं खा गया था। एक कॉलम का 6 पंक्तियों का समाचार था। मैंने उसे काटा और पानी के साथ निगल गया। दिन भर भूख नहीं लगी। आजकल अखबारों में आधे पन्नों पर सिर्फ अकाल और भुखमरी के समाचार छपते हैं। अगर अकाल ग्रस्त आदमी सड़क पर पड़ा अखबार उठाकर उतने पन्ने खा ले, तो महीने भर भूख नहीं लगे। पर इस देश का आदमी मूर्ख है। अन्न खाना चाहता है। भुखमरी के समाचार नहीं खाना चाहता।?(संक्षिप्त)

● **बाएं क्यों चलें?**

साधो हमारे देश का आदमी नियम मान ही नहीं सकता। वह मुक्त आत्मा है। वह सड़क के बीच चलकर प्राण दे देगा, पर बाएं नहीं चलेगा। मरकर स्वर्ग पहुंचेगा, तो वहां भी सड़क के नियम नहीं मानेगा। फरिश्ते कहेंगे कि बाएं चलो। तो वह दाहिने चलेगा। साधो, आत्मा अमर है। सड़क पर दुर्घटना में सिर्फ देह मरती है, आत्मा थोड़े ही मरती है। इस तुच्छ देह के लिए ज्ञानी इतना अनुशासन क्यों सीखे कि सड़क के बाए बाजू चले। साधो, मैं तो पुलिस का भक्त हूं सो फौरन बाएं बाजू हो जाता हूं। मैं कायर हूं। मगर उन्हें नमन करता हूं, जो सड़क के कोई नियम नहीं मानते।

● **वात्सल्य**

एक मोटर से 7-8 साल का एक बच्चा टकरा गया। सिर में चोट आ गई। वह रोने लगा। आसपास के लोग सिमट आए। सब क्रोधित। मां-बाप भी आ गए। 'पकड़ लो ड्राइवर को।' भागने न पाए। पुकार लगने लगी। लोग मारने पर उतारू। भागता है तो पिटता है। लोगों की आंखों में खून आ गया है। उसे कुछ सूझा। वह बढ़ा और लहू में सने बच्चे को उठाकर छाती से चिपका लिया। उसे थपथपाकर बोला - 'बेटा! बेटा!' इधर लोगों का क्रोध गायब हो गया था। मां-बाप कहने लगे। 'कितना भला आदमी है। और होता तो भाग जाता।'

वक्त हमारे समाज की विडम्बनाओं को सामने लाने का काम करते हैं।

● **संस्कृति**

भूखा आदमी सड़क किनारे कराह रहा था। एक दयालु आदमी रोटी लेकर उसके पास पहुंचा और उसे दे ही रहा था कि एक दूसरे आदमी ने उसको खींच लिया। वह आदमी बड़ा रंगीन था।

पहले आदमी ने पूछा, ' क्यों भाई, भूखे को भोजन क्यों नहीं देते?' रंगीन आदमी बोला ?' ठहरो, तुम इस प्रकार उसका हित नहीं कर सकते। तुम केवल उसके तन की भूख समझ पाते हो, मैं उसकी आत्मा की भूख जानता हूं। देखते नहीं हो, मनुष्य-शरीर में पेट नीचे है और हृदय ऊपर। हृदय की अधिक महत्ता है।'

पहला आदमी बोला, ' लेकिन उसका हृदय पेट पर ही टिका हुआ है। अगर पेट में भोजन नहीं गया तो हृदय की टिक-टिक बंद नहीं हो जाएगी।' रंगीन आदमी हंसा, फिर बोला, ' देखो, मैं बतलाता हूं कि उसकी भूख कैसे बुझेगी।' यह कहकर वह उस भूखे के सामने बांसुरी बजाने लगा। दूसरे ने पूछा, ' यह तुम क्या कर रहे हो, इससे क्या होगा?' रंगीन आदमी बोला, ' मैं उसे संस्कृति का राग सुना रहा हूं। तुम्हारी रोटी से तो एक दिन के लिए ही उसकी भूख भागेगी, संस्कृति' के राग से उसकी जनम-जनम की भूख भागेगी।' वह फिर बांसुरी बजाने लगा। और तब वह भूखा उठा और बांसुरी झपटकर पास की नाली में फेंक दी।

● **चंदे का डर**

एक छोटी-सी समिति की बैठक बुलाने की योजना चल रही थी। एक सज्जन थे जो समिति के सदस्य थे, पर काम कुछ करते नहीं

इस देश के बुद्धिजीवी शेर हैं पर वे सियारों की बारात में बैंड बजाते हैं।

गड़बड़ पैदा करते थे और कोरी वाहवाही चाहते । वे लंबा भाषण देते थे।

वे समिति की बैठक में नहीं आवें ऐसा कुछ लोग करना चाहते थे, पर वे तो बिना बुलाए पहुंचने वाले थे। फिर यहां तो उनको निमंत्रण भेजा ही जाता, क्योंकि वे सदस्य थे।

एक व्यक्ति बोला, ' एक तरकीब है। सांप मरे न लाठी टूटे। समिति की बैठक की सूचना ' नीचे यह लिख दिया जाए कि बैठक में बाढ़-पीड़ितों के लिए धन-संग्रह भी किया जाएगा। वे इतने उच्चकोटि के कंजूस हैं कि जहां चंदे वगैरह की आशंका होती है, वे नहीं पहुंचते।'

● **अपना-पराया**

आप किस स्कूल में शिक्षक है, '

मैं लोकहितकारी विद्यालय में हूं। क्यों कुछ काम है क्या?'

हाँ' मेरे लड़के को स्कूल में भरती करना है।'

' तो हमारे स्कूल में ही भरती करा दीजिए।'

' पढाई-वढाई कैसी है?

'नंबर वन। बहुत अच्छे शिक्षक हैं. बहुत अच्छा वातावरण है। बहुत अच्छा स्कूल है।' 'तो आपका बच्चा भी वहीं पढ़ता होगा।' 'जी, नहीं, मेरा बच्चा तो आदर्श विद्यालय में पढ़ता है'

● **नयी धारा**

उस दिन एक कहानीकार मिले। कहने ' लगे, ' बिल्कुल नयी कहानी लिखी है, बिल्कुल नयी शैली, नया विचार, नयी धारा।' हमने कहा' क्या शीर्षक है? 'वे बोले, ' चांद सितारे अजगर सांप बिच्छू झील।

● **दानी**

बाढ़ पीड़ितों के लिए चंदा हो रहा था। कुछ जनसेवकों ने एक संगीत समारोह का आयोजन किया, जिसमें धन एकत्र करने की योजना बनाई। वे पहुंचे एक बडे सेठ साहब के पास। उनसे कहा, ' देश पर इस समय संकट आया है। लाखों भाई बहन बेघर बार हैं उनके लिए अन्न वस्त्र जुटाने के लिए आपको एक बड़ी रकम देनी चाहिए। आप समारोह में आइएगा। वे बोले - ' भगवान की इच्छा में कौन बाधा डाल सकता है। जब हरि की इच्छा ही है तो हम किसी की क्या सहायता कर सकते हैं?

फिर भैया रोज दो चार तरह का चंदा तो हम देते हैं और व्यापार में दम नहीं है।' एक जनसेवी ने कहा, 'समारोह में खाद्यमंत्री भी आने वाले हैं ओर वे स्वयं धन एकत्र करेंगे।' सेठजी के चेहरे पर -चमक आयी' जैसे भक्त के मुख पर भगवान का स्मरण होने पर आती है। । वे 'बोले हां, बेचारे तकलीफ में हैं। क्या किया जाए' हमसे तो जहां तक हो सकता है, मदद करते ही हैं। आखिर हम भी ' देशवासी हैं। आप आए हो तो खाली थोड़े जाने दूंगा। एक हजार दे दूंगा। मंत्रीजी ही लेंगे न? वे ही अपील करेंगे न? उनके ही हाथ में देना होगा न'

वे बोले, ' जी हां, मंत्रीजी ही रकम लेंगे। सेठजी बोले, ' बस-बस, तो ठीक है। मैं ठीक वक्त पर आ जाऊंगा।' समारोह में सेठजी एक हजार रुपए लेकर पहुंचे, पर संयोगवश मंत्रीजी जरा पहले उठकर जरूरी काम से चले गए। वे अपील नहीं कर पाए, चंदा नहीं ले पाए। संयोजकों ने अपील की। पैसा आने लगा। सेठजी के पास पहुंचे। सेठजी बोले. ' हमीं को बुद्धू बनाते हो! तुमने तो कहा था ? मंत्री खुद लेंगे और वे तो चल दिए।

● **सुधार**

एक जनहित की संस्था में कुछ सदस्यों ने आवाज उठायी, 'संस्था का काम असंतोषजनक चल रहा है। इसमें बहुत सुधार होना चाहिए। संस्था बरबाद हो रही है। इसे डूबने से बचाना चाहिए। इसको या तो सुधारना चाहिए या भंग कर देना चाहिए।' संस्था के अध्यक्ष ने पूछा कि किन-किन सदस्यों को असंतोष है। 10 सदस्यों ने असंतोष व्यक्त किया।

अध्यक्ष ने कहा 'हमें सब लोगों का सहयोग चाहिए। सबको संतोष हो, इसी तरह हम काम करना चाहते हैं। आप 10 सज्जन क्या सुधार चाहते हैं, कृपा कर बतलावें।' और उन दस सदस्यों ने आपस में विचार कर जो सुधार सुझाए, वे ये थे 'संस्था में 4 सभापति 1 उप सभापति और 3 मंत्री और होने चाहिए. 10 सदस्यों की संस्था के काम से बड़ा असंतोष था।

अगर दो साइकिल सचार सड़क पर एक-दूसरे से टकराकर गिर पड़े तो उनके लिए यह लाजिमी हो जाता है कि वे उठकर सबसे पहले लड़ें, फिर धूल झाड़ें। यह पद्धति इतनी मान्यता प्राप्त कर चुकी हैं कि गिरकर न लड़ने वाला साइकिल सवार बुजदिल माना जाता है, क्षमाशील संत नहीं।

एक दिन दो साइकिलें बीच सड़क पर भिड़ गईं। उनके सवार जब उठे तो एक-दूसरे को ललकारा, 'अंधा है क्या? दिखता भी नहीं।' दूसरे ने जवाब दिया, 'साले, गलत 'साइड' से चलेंगे और आँखें दिखाएँगे।' पहले ने गाली का बदला उससे बड़ी गाली से चुकाकर ललकारा, 'जबान सँभालकर बोलना, अभी खोपड़ी फोड़ दूँगा।'

दूसरे ने सिर को और ऊँचा करके जवाब दिया, 'अरे, तू क्या खोपड़ा फोड़ेगा मैं एक हाथ दूँगा तो कनपटा फूट जायगा।' और वे दोनों एक-दूसरे का सिर फोड़ने के लिए उलझने ही वाले थे कि अचानक एक आदमी उन दोनों के बीच में आ गया और बोला, 'अरे देखो भाई, मेरी एक बात सुन लो, फिर लड़ लेना। देखो, तुम इसका सिर फोड़ना चाहते हो, और तुम इसका! मतलब कुल मिलाकर इतना ही हुआ कि दोनों के सिर फूट जाएँ तो दोनों को संतोष हो जाए। तो ऐसा करो भैया, दोनों जाकर उस बिजली के खंभे से सिर फोड़ लो और लड़ाई बंद कर दो।'

बात कुछ ऐसी असर कर गई कि भीड़ हँस दी और वे दोनों ही हँसी रोक नहीं पाए। उनका समझौता संपन्न हो गया।

स्त्रोत : यह कहानी अँग्रेजी लेखक स्टीन बेक के लघु उपन्यास ऑफ मैन एण्ड

■

राजनीति में शर्म केवल मूर्खों को ही आती है.

हरिशंकर परसाई की मृत्यु के बाद की छपी रचनाएँ

● **'सबसे बड़ा सवाल'**

नाटक

हरिशंकर परसाई की कई कहानियों का मंचन विभिन्न रंग-मंडलियाँ और निर्देशक करते रहे हैं। नाटकीयता उनकी कहानियों के प्रमुख तत्त्वों में से एक है जिसके चलते वे आसानी से बेहतरीन नाट्य-प्रस्तुतियों में ढल जाती हैं।

लेकिन 'सबसे बड़ा सवाल' नाटक ही है, और सम्भवत: परसाई जी की एकमात्र नाट्य- रचना। दृश्य-योजना, पात्रों की संकल्पना, परिस्थितियों के 'कंस्ट्रास्ट' और दृश्यों के कम्पोजीशन में यह नाटक श्रेष्ठ नाटकों की कोटि में ठहरता है जिसे पढ़ना जितना दिलचस्प है, मंच पर देखना उससे भी ज्यादा उत्तेजक होगा।

नाटक की कथावस्तु राजनीतिक है, और पृष्ठभूमि है एक चुनाव की जिसमें चार पार्टियाँ हिस्सा ले रही हैं-काली पार्टी, सफेद पार्टी, पीली पार्टी और विजय पार्टी।

सुसंगत दृश्यों, संवादों और समाज व राजनीति के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रों के माध्यम से यह नाटक भ्रष्टाचार, राजनेताओं के पाखंड और आम जनता के भीड़ में बदल जाने की प्रवृत्ति के साथ-साथ युवा वर्ग की दिशाहीन समझौतापरस्ती को भी उजागर करता है। नाटक में कई मोड़ ऐसे भी आते हैं जहाँ से हमें अपना वर्तमान झाँकता दिखाई देता है।

● **साक्षात्कारों का संकलन**

किस्सा कुर्सी का

किस्सा कुर्सी का हरिशंकर परसाई के साक्षात्कारों का संकलन है। इन साक्षात्कारों में वे न सिर्फ़ देश, दुनिया और समाज के बारे में अपने विचारों को सामने रखते हैं, बल्कि अपनी रचना- प्रक्रिया, विषयों के चुनाव और व्यंग्य- लेखन उनके लिए क्या अर्थ रखता है, इस पर भी खुलकर बात करते हैं।

एक प्रश्न के जवाब में वे कहते हैं कि मेरे लेखन में तिरस्कार नहीं है, बल्कि समाज और जीवन की आलोचना और समीक्षा है; कि मैंने यही बताने की चेष्टा की है कि कहाँ, क्या ग़लत है। वे स्पष्ट करते हैं कि उनका व्यंग्य समाज का तिरस्कार नहीं करता, उसकी क्षमताओं में विश्वास रखते हुए उसको बदलना चाहता है। हिन्दी व्यंग्य में रचनाशीलता की अपार संभावनाओं को रेखांकित करते हुए वे कहते हैं कि व्यंग्य एक स्पिरिट है जो किसी भी विधा में हो सकती है।

इन वार्ताओं में साक्षात्कारकर्ताओं ने उनके जीवन को भी खंगालने की कोशिश की है, परिणामस्वरूप हमें लेखक परसाई के साथ-साथ व्यक्ति परसाई को भी जानने के लिए पर्याप्त सूत्र मिलते हैं। इसके अलावा हम उस वातावरण को भी जान पाते हैं जिसमें वे लिख रहे थे।

इस पुस्तक में संकलित मुक्तिबोध पर केन्द्रित उनकी बातचीत विशेषतौर पर पठनीय है, जिसमें उन्होंने मुक्तिबोध के व्यक्तिगत, पारिवारिक और वैचारिक व्यक्तित्व पर बातें की हैं।

● **एक लड़की पाँच दीवाने**

एक लड़की है जिसे उसके दीवाने ने और मुहल्ले-भर की भूखी नजरों ने जवान और चतुर बना दिया; फिर एक चूहा है जो रोज रात में गृह-निवासी के सिरहाने तब तक सत्याग्रह करता रहा जब तक कि उसे नियमित खाना नहीं दिया जाने लगा; अकाल का उत्सव है जिसके लिए जमाखोर, मुनाफाखोर और नौकरशाही सालभर अनुष्ठान कराते हैं कि कब अकाल पड़े, कब दिन फिरें... और फिर नाक है, एक नहीं कई-कई तरह की। कुछ कट जाती हैं, फिर बढ़ जाती हैं, कुछ ऐसी कि चाहे जो जतन करो, कटती ही नहीं; फिर एक आदमी है जिसके भीतर दो आदमी हैं; कभी एक ऊपर आ जाता है, कभी दूसरा हावी हो जाता है।

आगे सड़े हुए आलू प्रवेश करते हैं। वे सुबह से टोकरे में पड़े हैं, पर बिक नहीं पाए। उनसे पूछा गया कि अब तुम क्या करोगे तो बोले कि हम विद्रोह करेंगे। चाहे आधी रात तक टोकरे में पड़े रहें, बिकेंगे नहीं। हम भी आत्मसम्मान रखते हैं। देखने में वे कुछ बुद्धिजीवी मालूम पड़ रहे थे लेकिन एक सस्ते होटल वाला आया और उन्हें खरीद ले गया।

इनके अलावा भी इस किताब में कई पात्र और परिस्थितियाँ हैं जिन्हें परसाई जी की निर्मम लेखनी ने यहाँ संग्रहीत व्यंग्य-कथाओं में उनकी तमाम विडम्बनाओं और विकृतियों के साथ अंकित किया है।

● **तब की बात और थी**

परसाई की शुरुआती रचनाओं का संकलन है। कह सकते हैं कि इस दौर की अपने लेखन में वे भाषा के स्तर पर अपनी राह बना रहे थे,

जिन्हें पसीना सिर्फ गर्मी और भय से आता है, वे श्रम के पसीने से बहुत डरते हैं।

और अपने व्यंग्य की धार को भी परख रहे थे। लेकिन यह देखकर आश्चर्य होता है कि समाज और राजनीति को लेकर उनकी समझ तब भी उतनी ही साफ़ थी।

इस संग्रह में शामिल 'भेड़ें और भेड़िये', 'गो-भक्ति', 'देव-भक्ति' और 'रासलीला' जैसी कहानियाँ हैं जो धर्म के स्वार्थ-आधारित दुरुपयोग के ख़तरों के प्रति हमें आगाह करती है।

रोजगार और जीवन-यापन के संघर्ष, मध्यवर्ग का पाखंड और स्त्री-स्वाधीनता जैसे प्रश्न इन रचनाओं में उतनी ही तीव्रता से आते हैं, जिस तरह उनकी बाद की रचनाओं में, लेकिन आज़ादी के फ़ौरन बाद वाले दशक में इन अवरोधों को देख पाना अपने आप में एक उपलब्धि है।

संग्रह में शामिल 'बाबू की बदली' शीर्षक कहानी ने अपने समय में काफ़ी हलचल पैदा की थी, परसाई पर स्त्री की गुलामी का समर्थन करने तक के आरोप लगे थे, जिनका उत्तर वे यहाँ संकलित 'अपनी बात' में देते हैं।

अपने व्यंग्य की तीक्ष्णता के सन्दर्भ में उनका कहना है कि चट्टान-सी बुराई पर अगर कोई सुनार की छोटी हथौड़ी से प्रहार करे, तो यह उसकी नासमझी ही कही जाएगी। अच्छा हुआ कि उन्होंने शुरू से ही घन का इस्तेमाल किया और हमें उन जैसा व्यंग्यकार मिला।

- **आवारा भीड़ के खतरे**

'आवारा भीड़ के खतरे' पुस्तक हिन्दी के अन्यतम व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई के निधन के बाद उनके असंकलित और कुछेक अप्रकाशित व्यंग्य-निबन्धों का एकमात्र संकलन है। अपनी कलम से जीवन ही जीवन छलकानेवाले इस लेखक की मृत्यु खुद में एक महत्वहीन-सी घटना बन गई लगती है। शायद ही हिन्दी साहित्य की किसी अन्य हस्ती ने साहित्य और समाज में जड़ जमाने की कोशिश करती मरणोन्मुखता पर इतनी सतत, इतनी करारी चोट की हो !

इस संग्रह के व्यंग्य-निबन्धों के रचनाकाल का और उनकी विषय-वस्तु का भी दायरा काफी लम्बा-चौड़ा है। राजनीतिक विषयों पर केन्द्रित निबन्ध कभी-कभी तत्कालीन घटनाक्रम को ध्यान में रखते हुए अपने पाठ की माँग करते हैं लेकिन यदि ऐसा कर पाना संभव न हो तो भी परसाई की मर्मभेदी दृष्टि, उनका वॉल्तेयरीय चुटीलापन इन्हें पढ़ा ले जाने का खुद में ही पर्याप्त कारण है।

वैसे राजनीतिक व्यंग्य इस संकलन में अपेक्षाकृत कम हैं- सामाजिक और साहित्यिक प्रश्नों पर केन्द्रीकरण ज्यादा है। हँसने और संजीदा होने की परसाई की यह आखिरी महफिल उनकी बाकी सारी महफिलों की तरह ही आपके लिए यादगार रहेगी।

- **हम इक उम्र से वाकिफ़ हैं**

परसाई जैसा बड़ा रचनाकार जब 'हम इक उम्र से वाकिफ़ हैं' होने की बात करता है तो उसका मतलब सिर्फ़ उतना ही नहीं होता, क्योंकि उसकी 'उम्र' एक युग का पर्याय बन चुकी होती है। इसलिए यह कृति परसाई जी के जीवनालेख के साथ-साथ एक लम्बे रचनात्मक दौर का भी अंकन है। परसाई जी ने इस पुस्तक में अपने जीवन की उन विभिन्न स्थितियों और घटनाओं का वर्णन किया है, जिनमें न केवल उनके रचनाकार व्यक्तित्व का निर्माण हुआ, बल्कि उनकी लेखनी को भी एक नई धार मिल सकी। उनका समूचा जीवन एक सक्रिय बुद्धिजीवी का जीवन रहा। वे सदा सिद्धान्त को कर्म से जोड़कर चले और अपनी रचनात्मकता पर काल्पनिक यथार्थवाद की छाया तक नहीं पड़ने दी। इसलिए आकस्मिक नहीं कि इस पुस्तक में हम उन्हें विभिन्न आन्दोलनरत संगठनों के कुशल संगठनकर्ता के रूप में भी देख पाते हैं। इसके अलावा यह कृति उनकी सहज व्यंग्यप्रधान शैली में विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत व्यक्तियों से भी परिचित कराती है, जो किसी भी तरह उनसे जुड़े। कहना न होगा कि परसाई जी का यह संस्मरणात्मक आत्मकथ्य उन तमाम पाठकों और रचनाकारों के लिए प्रेरणाप्रद है जो कि एक बुनियादी सामाजिक बदलाव में साहित्यकार की भी एक रचनात्मक भूमिका को स्वीकार करते हैं ।

संकलन: उमेश कुमार गुप्ता

कला समय
संस्कृति, शिक्षा और समाज सेवा समिति, भोपाल, म.प्र.
पं.क्र. 01/01/01/26174/13
कला समय संस्कृति, शिक्षा और समाज सेवा समिति, भोपाल (म.प्र.)
कलाकारों के उत्थान, प्रोत्साहन और सम्मान जनक मंच उपलब्ध कराने हेतु
कलाओं और कलाकारों को समर्पित संस्था 'कला समय'
गौरवशाली 12वाँ वर्ष
0755-2562294, 9425678058 kalasamay1@gmail.com
कार्यालय: जे-191, मंगल भवन, ई-6 महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462016 (म.प्र.)

निष्क्रिय ईमानदार और सक्रिय बेईमान मिलकर एक षड्यंत्र-सा बना लेते हैं।

हरिशंकर परसाई का स्तम्भ लेखन

1. 'प्रहरी' में, स्तम्भ का नाम, 'नर्मदा के तट से', 'अघोर भैरव' के छद्म नाम से लेखन।
2. 'परिवर्तन' में, 'अरस्तु की चिट्ठी'।
3. 'सारिका' में 'कबीरा खड़ा बाज़ार में'।
4. 'कल्पना' में, 'और अन्त में'।
5. 'करेंट' में 'माटी कहे कुम्हार से'।
6. 'नयी दुनिया', बाद में 'नवीन दुनिया' में 'सुनो भाई साधो' और 'ये माजरा क्या है'।
7. रायपुर और जबलपुर से प्रकाशित समाचारपत्र 'देशबन्धु' में 'पूछिए परसाई से' कॉलम में पाठकों के प्रश्नों के उत्तर देते थे।

परसाई जी की रचनाओं के अन्य भाषाओं में अनुवाद

1. 'इंस्पेक्टर मातादीन ऑन द मून' (मानस बुक्स, चेन्नई), सीएम नईम द्वारा अँग्रेजी में अनूदित 21 चयनित कहानियों का संग्रह 1994 में प्रकाशित हुआ था।
2. इसे ही 2003 में कथा प्रेस, नयी दिल्ली द्वारा पुनर्मुद्रित किया गया।
3. कुछ रचनाओं का आर आर सर्वटे द्वारा मराठी में अनुवाद।

हरिशंकर परसाई की रचनाओं पर निर्मित रेडियो नाटक, धारावाहिक और टीवी नाटक

विवेचना, जबलपुर द्वारा

श्री अरुण पाण्डेय के निर्देशन में

1. तीन सयाने
2. रामसिंह की ट्रेनिंग
3. निठल्ले की डायरी (परसाई जी की अनेक कहानियों का कोलॉज)
4. चौक परसाई (परसाई जी की अनेक कहानियों का कोलॉज)
5. मैं नर्क से बोल रहा हूँ

श्री तपन बैनर्जी के निर्देशन में

1. उखड़े खम्बे
2. इंस्पेक्टर मातादीन चाँद पर

श्री वसन्त काशीकर के निर्देशन में

1. रानी नागफनी की कहानी
2. रामसिंह की ट्रेनिंग
3. निठल्ले की डायरी

विवेचना रंगमण्डल द्वारा : श्री नवीन चौबे के निर्देशन में

1. मैं नर्क से बोल रहा हूँ
2. रानी नागफनी की कहानी (परसाई जी की अनेक कहानियों का कोलॉज)
3. निठल्ले की डायरी (रेडियो रूपक)
4. परसाईनामा (परसाई जी की अनेक कहानियों का कोलॉज)
5. अनशन
6. एक लड़की पाँच दीवाने
7. कन्धे श्रवणकुमार के
8. एकलव्य ने अँगूठा माँगा
9. मखमल की म्यान

विश्वभावन देवलिया के निर्देशन में

1. लगड़ी टाँग

रेडियो नाटक

1. भगत की गत (रूपान्तरकार सतीश तिवारी और श्याम गुप्ता)
2. प्रेमियों की वापसी (रूपान्तरकार सतीश तिवारी और श्याम गुप्ता)

धारावाहिक

1. परसाई कहते हैं

टीवी नाटक

1. रामसिंह की ट्रेनिंग
2. इंस्पेक्टर मातादीन चाँद पर

परसाई जी की प्रमुख किताबें ,प्रकाशन वर्ष

1953 – हँसते हैं रोते हैं
1954 – भूत के पाँव पीछे
1955 – तट की खोज
1956 – तब की बात और थी ज्वाला और जल
1960 – जैसे उनके दिन फिरे
1962 – सदाचार का ताबीज रानी नागफनी की कहानी
1963 – बेईमानी की परत
1964 – सुनो भाई साधो
1966 – पगडण्डियों का जमाना
1967 – तिरछी रेखाएँ
1968 – और अन्त में उल्टी सीधी
1970 – बोलती रेखाएँ
1971 – निठल्ले की डायरी
1972 – शिकायत मुझे भी है अपनी–अपनी बीमारी
1973 – ठिठुरता हुआ गणतन्त्र एक लड़की पाँच दीवाने, वैष्णव की फिसलन
1977 – मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ
1980 – माटी कहे कुम्हार से विकलांग श्रद्धा का दौर
1982 – पाखण्ड का अध्यात्म
1983 – दो नाक वाले लोग, बेईमानी की परत, सुनो भाई साधौ
1984 – परसाई रचनावली 6 खण्ड–
1986 – तुलसीदास चन्दन घिसैं
1998 – कहत कबीर–
1989 – यादों की रोशनी में
1990 – हम इक उम्र से वाकिफ हैं
1991 – जाने पहचाने लोग
1993 – ऐसा भी सोचा जाता है, हँसते हैं रोते हैं , तब की बात और थी
1998 – आवारा भीड़ के खतरे , पॉखड का आध्यत्म
2000 – प्रेमचन्द के फटे जूते
2001 – माटी कहे कुम्हार से
2009 – काग भगोड़ा

सम्मान और पुरस्कार

1. मध्य प्रदेश सरकार का राजकीय सम्मान – 1973
2. शिखर सम्मान – मध्य प्रदेश शासन द्वारा 1983
3. पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी सम्मान – 1980
4. साहित्य अकादेमी पुरस्कार–'विकलांग श्रद्धा का दौर' के लिए 1982
5. डी.लिट् की मानद उपाधि—'जबलपुर (अब रानी दुर्गावती) विश्वविद्यालय' द्वारा– 1982–83
6. चकल्लस का पुरस्कार – 1984
7. पद्मश्री–1985
8. मध्य प्रदेश साहित्य सम्मेलन का भवभूति अलंकरण – 1986
9. शरद जोशी सम्मान

संकलन: उमेश कुमार गुप्ता

■

जब शर्म की बात गर्व की बात बन जाए, तब समझो कि जनतंत्र बढ़िया चल रहा है।

परसाई जी की नजर में व्यंग्य

– उमेश कुमार गुप्ता

व्यंग्य शब्द लैटिन शब्द सैचुरा से आया है , जिसका अर्थ है पूर्णसोच, संतृप्त सोच सबसे पहले ईसा पूर्व 441 में प्राचीन यूनानी नाटककार अरिस्टोफेन्स द्वारा व्यंग्य लिखा गया था। व्यंग्य समाज की किसी खामी या विफलता को बढ़ा–चढ़ाकर लिखने का एक तरीका है। जिसे अतिशयोक्ति, हास्य और विडंबना ,बेतुकापन,आलोचना आदि से व्यक्त करते हैं । व्यंग्य के माध्यम से समसामयिक घटनाओं और व्यवहारों को बारीकी से देखकर उनसे उपजे हास्य ,अनैतिकता ,खामियों को उजागर किया जाता है । इसका उद्देश्य विषय की आलोचना को दिलचस्प, उपयोगी ,मज़ेदार ढंग से जतलाकर पाठक का ध्यान आकर्षित करना होना चाहिए व्यंग्य की विशेषता है कि वह वास्तविक लोगों या घटनाओं को बेतुकेपन की ओर ले जाता है, समाज के एक बड़े विषय को आलोचनात्मक ढंग से संबोधित करता है, किसी विशिष्ट विवरण पर ध्यान केंद्रित न कर सम्पूर्णता पर ध्यान देता है। व्यंग्य रूपक, पैरोडी, कटाक्ष, नौटंकी से बढकर है। जो समाज को आईना दिखाता है ।

व्यंग्य अभिव्यक्ति की वह विधा है, जिसमें विरोधाभास को लेख, निबंध, कविता ,कहानी ,गीत ,ग़ज़ल ,नाटक ,कामेडी आदि के माध्यम से प्रदर्शित किया जाता है । प्रसिद्ध विद्वान आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहा करते थे 'व्यंग्य वह है जहां कहने वाला तो अधरोष्ठों में हंस रहा हो और पर सुनने वाला तिलमिला रहा हो.' गरीब, असहाय, पत्नी, नेता, का मज़ाक़ उड़ाना व्यंग्य नहीं है। ये माखौल है,मज़ाक़ है। हँसी ठिठौला भी व्यंग्य नहीं हैं ।

व्यंग्य के तीन मुख्य प्रकार बताए गए हैं।

1. होराटियन व्यंग्य जो

हल्का–फुल्का और मज़ाकिया होता है। गंभीर विषयों को मज़ाक़ में उकसाता है,

2. किशोर व्यंग्य

यह अधिक गंभीर, कड़वा आलोचनात्मक होता है। इसमें मज़ाक़ नहीं होता । जवाबदेही ठहरायी जाती हैं।

3.मेनिपियन व्यंग्य

यह अधिक स्वतंत्र रूप से चलता है और दृष्टिकोण ,व्यवहार को प्रकट करता है। मार्क ट्वेन, जोनाथन स्विफ्ट, कर्ट वोनगुट,हरिशंकर परसाई,शरद जोशी,प्रसिद्ध व्यंग्यकार हुए हैं ।

विंग लगे गंजे को गंजा दिखाना व्यंग्य है साहूकार की चोरी दिखाना व्यंग्य है समाज को आईना दिखाना व्यंग्य है ।

कुछ व्यक्तिगत दुख पीड़ा कष्ट को व्यंग्य में व्यक्त करते हैं । कुछ परपीडक भी परपीडा को व्यंग्य में व्यक्त करते हैं। जीवन विसंगतियों से भरा पड़ा है। अन्याय अत्याचार अमानुषिकता अवसरवाद असामंजस्य असमान्यता छल पाखंड से सराबोर है। जिसे हम हास परिहास उपहास कार्टून मुहावरे लोकोक्तियों में कह देते हैं । जो व्यंग्य हो जाता है। परसाई जी के अनुसार सही व्यंग्य व्यापक जीवन परिवेश को समझने से आता है ।

परसाई अनुसार 'लेखक समाज का एक अंग है और उस समाज पर जो गुजरती है, उसमें सहभागी है. समाज के उत्थान और पतन, संघर्ष, सुख–दुख, आशा–निराशा, अन्याय–उत्पीड़न आदि में वह दूसरों का सहभोक्ता है। उनका मानना था कि लेखक की समाज में फैली विसंगतियों को पहचानने की पीड़ा, उसकी व्यक्तिगत पीड़ा है जिसका समाधान वह समूह में और समूह के लिए ढूंढना चाहता है।

परसाई कहते हैं कि मनुष्य की छटपटाहट है मुक्ति के लिए, सुख के लिए, न्याय के लिए। पर यह बड़ी लड़ाई अकेले नहीं लड़ी जा सकती। हरिशंकर परसाई के अनुसार व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों, अत्याचारों, मिथ्याचारों और पाखंडों का पर्दाफाश करता है। उनकी रचनाएं उनके इस कथ्य की गवाह हैं।

इस विधा का मुख्य उद्देश्य है, व्यक्ति और उसके सामाजिक संदर्भों में दिखने वाली किसी भी विसंगति पर कुठाराघात करना, भले ही यह संदर्भ, व्यक्ति और समाज के संबंध का हो सकता है, वर्ग और जाति के समीकरण का हो सकता है या विभिन्न विचारधाराओं के टकराव का। एक व्यंग्यकार, व्यक्ति–जीवन की विडंबनाओं का एक ऐसा रेखाचित्र खींचता है जिसे पढ़कर एक चेतन पाठक अपने आप से भी सवाल उठाने पर विवश हो जाता है।

जन्म के सौ साल बाद भी प्रासंगिक परसाई

अपने परसाई सौ साल के हो गये लेकिन परसाई की बेईमानी की परिभाषा बदली नहीं हैं। अब भी जिसको बेईमानी का अवसर प्राप्त नहीं है वहीं ईमानदार हैं।

लोगों की नाक भी नहीं बदली है। इस्पात की चमड़ी रंगी नाक, तिजोरी में रखीं नाक, तलवे में छुपीं नाक, गुलाब के पौधे वाली नाक, कलम की

चंदा माँगनेवाले और देनेवाले एक–दूसरे के शरीर की गंध बखूबी पहचानते हैं। लेनेवाला गंध से जान लेता है कि यह देगा या नहीं। देनेवाला भी माँगनेवाले के शरीर की गंध से समझा लेता है कि यह बिना लिए टल जाएगा या नहीं।

गयी नाक, शहर की नाक, छिनकीं हुईं नाक, नक कटी नाक, खुशबूदार नाक, तो है ही कुछ बिना नाक वाले लोगों का समूह भी बन गया है जिनसे नाक की उम्मीद जनता ने छोड़ दी है। उनके मरने पर नाक में सौ का नोट सुँघाने पर जीने की संभावना कम है।

बिना नाक वाले लोग ही चुनाव लड़ रहे हैं, बड़े पद पर आसीन हैं, देश, राज्य और पार्टी चला रहे हैं। कुछ दिन में हमारा देश नककटों का देश कहलाए कोई बड़ी बात नहीं है। आजकल लोगों को शर्मनाक बात करने पर भी शर्म नहीं आती वो ताली पीटकर हँसते हैं। बिना नाक के लोग है। अपने हाथ से अपनी पीठ थपथपाते है। लोगों के बीच खुद उसका ढिंढोरा पीटते हैं। दंभ हर हालत में बुरा ही होता है, पर जब वह विनय के माध्यम से प्रकट हो, तब तो बहुत कटु हो जाता है ।

विनय के रेशमी परदे के पीछे अहम की कुरूपता छिपी नहीं रह सकती। अहम की प्रकृति ही प्रदर्शन की हैं। वह नकटों की तरह आईना देखने को उत्सुक रहता है। कुछ नकटों को आईना देखकर भी यह समझ में नहीं आता कि नकटापन कुरूपता है। वे समझते हैं कि कट जाने से नाक सुडौल हो गई है। बिरले होते हैं जो कटी नाक को विकृति स्वीकार कर लेते है।

देश में इनको गाली देने वाला कोई नहीं हैं। सब रोटी की जगह पैसा खा रहे हैं। कौन गाली देगा। देश बेईमानी भ्रष्टाचार लूट खसोट अपराध हर बुरे काम में आत्मनिर्भर हैं । किसी को कोई काम धंधा करने की ज़रूरत नहीं है। 30 किलो अनाज 1000 रूपया महीना घर बैठे प्रजातंत्र की रक्षा के नाम पर आ जाता है। जनता की उपयोगिता सिर्फ़ वोट के लिए है। जनता भाड़ मे जाये। जहन्नुम में रहे। कीड़े मकोड़े खाये। माननीय को कोई मतलब नहीं है। बस समय पर वोट दे दें नहीं तो नर्क तो भुगत ही रहीं हैं। वोट नहीं दिया तो भी चलेगा ई डी सी बी आई सत्ता दिलवा देगी। कीचड़ में कमल खिलाता था सुना था अब लोगों ने देख भी लिया। सबको समझ आ गया है, देश को मंत्रिमंडल नहीं ई डी सी बी आई जाँच आयोग चला रहे हैं।

दलबदल से सरकारें पलटायीं जा रही हैं। इसलिए परसाई जी का सुझाव था कि रोज विधानसभा के बाहर एक बोर्ड पर 'आज का बाजार भाव' लिखा रहे। साथ ही उन माननीय की सूची चिपकी रहे जो बिकने को तैयार हैं। इससे खरीददार को भी सुविधा होगी और माल को भी। लोकतंत्र बचाने की मुहिम चल रही हैं लेकिन परसाईनुसार हमारे लोकतंत्र की यह ट्रेजेडी और कॉमेडी है कि कई लोग जिन्हें आजन्म जेलखाने में रहना चाहिए वे जिन्दगी भर संसद या विधानसभा में बैठते हैं। ये लोकतंत्र के तीर्थ अनर्गल लड़ाई झगड़ा गाली-गलौज के केंद्र बन गए हैं तभी परसाई कह गये कि जब विचार लुप्त हो जाता है, या विचार प्रकट करने में बाधा होती है, या किसी के विरोध से भय लगने लगता है, तब तर्क का स्थान हुल्लड़ या गुंडागर्दी ले लेती है ।56 सीने का भय व्याप्त है ।

जनता सब समझती है। लेकिन नागनाथ साँपनाथ के बीच फँसीं है। परसाई जी सही कह गये कि आत्मविश्वास कई प्रकार का होता है, धन का, बल का, ज्ञान का। लेकिन मूर्खता का आत्मविश्वास सर्वोपरि होता है। जो माननियों में कूट कूटकर भरा है। जो वोट की लाठी से उतरता है। रोज लाखों का ग़बन साइबर अपराधी कर रहे हैं। सरकार लाचार है कुछ नहीं कर पा रहीं। ऐसे चोरी लूट ठग को दबाने किसी कर्नल स्लिमन के आने का इंतज़ार सरकार कर रही है।

देश में क़ानून परसाई जी की तरह अंधा नही काना है। सिर्फ़ उसे पैसे वाले दिखते हैं। ग़रीबों के मामले में वह बहरा भी हो जाता है। क़ानून को ग़लतफ़हमी है वह देश चला रहा है। लोगों के पास विकल्प नहीं हैं, नहीं तो बलत्कारी को तुरंत फाँसीं जनता दे दें। क़ानून में फ़ैसले तर्क संगत है लेकिन क्रियान्वयन की कमी है। थर्ड जैडर अभी भी पहचान नौकरी इलाज मूलभूत सुविधाओं की बाट जोह रहे हैं। ऐसे कई फ़ैसले काग़ज़ों की शोभा बढ़ा रहे हैं । क़ानून का दूसरा पक्ष भी असुरक्षित,डावाँडोल है। निश्चित आय नहीं,कार्य सीखकर विलम्ब से जमना भविष्य की अनिश्चितता कमजोर बना देती हैं । परसाई क़हते हैं कि एक बार कचहरी चढ़ जाने के बाद सबसे बड़ा काम है, अपने ही वकील से अपनी रक्षा करना। दाँत से जीभ को तो बचाना पड़ता है।

परसाई जी के अनुसार डॉक्टर चाहता है ज़िंदगी भर इलाज चलता रहे मरीज़ न मरे और वकील भी चहाता है कि केस चलता रहे न कोई जीते न हारे। जज भी चाहता है कि सरकार खुश रहे रिटायरमेंट के बाद सर से लाल ताज न उतरे। माननीय, क़ानून, परजीवी कर्मचारी देखकर लगता है कि देश गूँगा बहरा अंधा पत्थर का भगवान चला रहा है। लेकिन वो भी वीआई पी, विशेष दर्जा देखकर भेदभाव से नहीं चूकता है। जिसके सिर पर किसी का हाथ नहीं हैं वह अनाथ है। इसलिए भारत में परसाई जी के अनुसार एक के कई बाप होते हैं। एक घर में, दूसरा दफ्तर में, तीसरा बाजार में, चौथा राजनीतिक दल में ऐसे ज़रूरतानुसार बाप बनते जाते है। बिना इनके प्रमोशन तरक्की दूर की कौड़ी है। फिर उनका खुद मानना है कि लडक़ों को, ईमानदार बाप निकम्मा लगता है।

परसाई जी महिला को कमजोर समझने की गलती कर गये इसलिए आजीवन कुंवारे रहे । जबकि रोज़ थानेदार दिवस मनाया जाता है। अरमानों का केक कटता है, भावनाओं के ग़ुब्बारे फोडे जाते है, निर्दोषों की मिठाई बंटती है। परसाई पुलिस से पिटे तो थे लेकिन यह किसके लिए कहा जो भ्रामक है। शिकारी, घोटाले बाज, हत्यारे , पैसे वाले खुले आम स्टील की नाक लगाये घूम रहे हैं और गरीब नाकटाये जेल में है। दस हज़ार के लोन के लिए सात पुशतो की जायदाद बैक गिरवी रख लेगी लेकिन करोड़ों का लोन यो ही दे देगी। हमें दुश्मन की ज़रूरत नहीं है । हम अपने देश की बदनामी खुद करने में अव्वल है। विदेशियों की ज़रूरत नहीं है। विपक्ष देश में कुछ नहीं कर पाता तो विदेश

समस्याओं को इस देश में झाड़-फूँक, टोना टोटका से हल किया जाता है।
सांप्रदायिकता की समस्या को इस नारे से हल कर लिया गया - हिंदू-मुस्लिम, भाई-भाई!

में बदनामी कर आता है। परसाई जी का फ़ार्मूला अपनाया जा रहा है कि बेइज़्ज़ती मे दूसरे को शामिल कर लो तो आँधी इज़्ज़त बच जाती हैं। विपक्ष ख़ाली है जनता ने काम नहीं दिया है। ख़ाली दिमाग़ शैतान का मकान, जो चीज़ टूटी नहीं उसे जोड़ रहा है। मसखरी में समय बिता रहा है। कभी-कभी नूरा कुश्ती खेलकर अपने करमों को याद कर लेता है। परसाई उवाच सबसे निरर्थक आंदोलन भ्रष्टाचार के विरोध का आंदोलन होता है। एक प्रकार का यह मनोरंजन है जो राजनीतिक पार्टी कभी-कभी खेल लेती है, जैसे कबड्डी का मैच।

प्रजातंत्र बचाने की गुहार उसे नष्ट करने वाले चारा खाऊ पप्पू जोकर मादरी वशवादी कर रहे हैं। जिन्होंने देश की ज़मीन नहीं नापी वो उसके आकाश में उड़ान भरना चाहते हैं। सबको समझ आ गया है, देश को मंत्रिमंडल नहीं ई डी सी बी आई जाँच आयोग चला रही हैं। देश को टुकड़े टुकड़े में बाँटने वालों की भीड़ है। राजद्रोह आम बात है। देशी धन और धुन पर विदेशी गुनगान चल रहा है। देशी खाये विदेशी बखाये हो रहा है।

परसाई मानते हैं कि दुनिया में भाषा, अभिव्यक्ति के काम आती है। इस देश में दंगे के काम आती है और जब शर्म की बात गर्व की बात बन जाए, तब समझो कि जनतंत्र बढिया चल रहा है। ऐसा हम समझ रहे हैं। जनता के हाथ में जब वोट की तलवार रहती हैं तब वो नोट राशन जात पात में भूल जाती हैं तभी तो परसाई जी को कहना पड़ा कि हम मानसिक रूप से दोगले नहीं तिगले हैं। संस्कारों से सामन्तवादी हैं, जीवन मूल्य अर्द्ध-पूंजीवादी हैं और बातें समाजवाद की करते हैं। नेताओं की बातों वायदे आश्वासन में आ जाते है। फासिस्ट संगठन की विशेषता होती है कि दिमाग सिर्फ नेता के पास होता है, बाकी सब कार्यकर्ताओं के पास सिर्फ शरीर होता है। जो हम देख रहे हैं ।

ऐसे देश में सौ साल में दूसरा परसाई पैदा न होना अभिव्यक्ति की घुटन व्यक्त करता है। देश में अभिव्यक्ति की आज़ादी है लेकिन स्वतंत्रत सोच पर पाबंदी है। हमसे वह बुलवाया और कराया जा रहा है जो दूसरे चाहते हैं।

परसाई जी के सौ साल पर उनकी 100 व्यंग्योक्तियाँ / व्यंग्यात्मक कहावत

- निंदा में विटामिन और प्रोटीन होते हैं। निंदा खून साफ करती है, पाचन-क्रिया ठीक करती है, बल और स्फूर्ति देती है। निंदा से मांसपेशियाँ पुष्ट होती हैं। निंदा पायरिया का तो शर्तिया इलाज है।
- संतों को परनिंदा की मनाही होती है, इसलिए वे स्वनिंदा करके स्वास्थ्य अच्छा रखते हैं।
- मौसम कौन कुटिल खल कामी'- यह संत की विनय और आत्मग्लानि नहीं है, टॉनिक है।
- संत बड़ा कांइयाँ होता है। हम समझते हैं, वह आत्मस्वीकृति कर रहा है, पर वास्तव में वह विटामिन और प्रोटीन खा रहा है।
- स्वास्थ्य विज्ञान की एक मूल स्थापना तो मैंने कर दी। अब डॉक्टरों का कुल इतना काम बचा कि वे शोध करें कि किस तरह की निंदा में कौन से और कितने विटामिन होते हैं, कितना प्रोटीन होता है।
- निंदा में अगर उत्साह न दिखाओ तो करने वालों को जूता-सा लगता
- वेद में सोमरस की स्तुति में 60-62 मंत्र हैं। सोमरस को पिता और ईश्वर तक कहा गया है।
- चेतन को दबाकर राहत पाने या चेतना का विस्तार करने के लिए सब जातियों के ऋषि किसी मादक द्रव्य का उपयोग करते थे।
- 'वे देश को पश्चिमी सभ्यता के सलाद संग खाते थे, ये जनतंत्र के अचार संग खाते हैं।'
- चेतना का विस्तार। हाँ, कई की चेतना का विस्तार देख चुका हूँ। एक संपन्न सज्जन की चेतना का इतना विस्तार हो जाता है कि वे रिक्शेवाले को रास्ते में पान खिलाते हैं, सिगरेट पिलाते हैं, और फिर दुगने पैसे देते हैं।
- पीने के बाद वे 'प्रोलेतारियत' हो जाते हैं। पर कुछ मैंने ऐसे देखे हैं, जो होश में मानवीय हो ही नहीं सकते।
- मानवीयता उन पर रम के 'किक' की तरह चढ़ती-उतरती है। इन्हें मानवीयता के 'फिट' आते हैं - मिरगी की तरह।
- सुना है मिरगी जूता सुँघाने से उतर जाती है। इसका उल्टा भी होता है। किसी-किसी को जूता सुँघाने से मानवीयता का फिट भी आ जाता है।
- कबीर ने कहा है - 'मन मस्त हुआ तब क्यों बोले'। यह क्यों नहीं कहा कि मन मस्त हुआ
- आई शैल ब्रिंग ब्यूटीफुल मुर्गा।'
- अंग्रेजी' भाषा का कमाल देखिए। थोड़ी ही पढ़ी है, मगर खाने की चीज को खूबसूरत कह रहे हैं। जो भी खूबसूरत दिखा, उसे खा गए। यह भाषा रूप में भी स्वाद देखती है।
- रूप देखकर उल्लास नहीं होता, जीभ में पानी आने लगता है।
- ऐसी भाषा साम्राज्यवाद के बड़े काम की होती है।
- इंडिया इज ए ब्यूटीफुल कंट्री। और छुरी-काँटे से इंडिया को खाने लगे। जब आधा खा चुके, तब देशी खानेवालों ने कहा, अगर इंडिया इतना खूबसूरत है, तो बाकी हमें खा लेने दो। तुमने 'इंडिया' खा लिया।
- बाकी बचा 'भारत' हमें खाने दो। अंग्रेज ने कहा - अच्छा, हमें दस्त लगने लगे हैं। हम तो जाते हैं। तुम खाते रहना।
- यह बातचीत 1947 में हुई थी। हम लोगों ने कहा - अहिंसक क्रांति हो गई। बाहरवालों ने कहा - यह ट्रांसफर ऑफ पॉवर है - सत्ता का हस्तांतरण। मगर सच पूछो तो यह 'ट्रांसफर ऑफ डिश' हुआ - थाली उनके सामने से इनके सामने आ गई।

गिरने के बड़े फायदे हैं। पतन से न मोच आती, न फ्रैक्चर होता। कितने ही लोग मैंने कितने ही क्षेत्रों में देखे हैं,
जो मौका देखकर एकदम आड़े हो जाते हैं। न उन्हें मोच आती, न उनकी हड्डी टूटती। सिर्फ़ धूल लग जाती है, पर यह धूल कपड़ों में लगती है, आत्मा में नहीं।

- वे देश को पश्चिमी सभ्यता के सलाद के साथ खाते थे। ये जनतंत्र के अचार के साथ खाते हैं।
- हम खिड़की हवा और रोशनी के लिए बनवाते हैं, मगर वास्तव में खिड़की अंदर झाँकने के लिए होती है।
- कितने लोग हैं जो 'चरित्रहीन' होने की इच्छा मन में पाले रहते हैं, मगर हो नहीं सकते और निरे 'चरित्रवान' होकर मर जाते हैं।
- आत्मा को परलोक में भी चैन नहीं मिलता होगा और वह पृथ्वी पर लोगों के घरों में झाँककर देखती होगी कि किसका संबंध किससे चल रहा है।
- भला आदमी है – ईमानदार, सच्चा, दयालु, त्यागी। वह धोखा नहीं करता, कालाबाजारी नहीं करता, किसी को ठगता नहीं है, घूस नहीं खाता, किसी का बुरा नहीं करता।
- स्वतंत्रता–दिवस भीगता है और गणतंत्र दिवस ठिठुरता है।
- बड़े की हार पर छोटे आदमी को दु:खी होने का कोई हक़ नहीं।
- समाजवाद इसी को कहते हैं कि बड़े की हार पर बड़ा दु:खी हो और छोटे की हार पर छोटा. हार के मामले में वर्ग–संघर्ष ख़त्म हो गया.
- प्रत्यक्ष मातमपुसी में मैं हमेशा फेल हुआ हूं।
- यह जनतंत्र झूठा है. जनतंत्र झूठा है या सच्चा–यह इस बात से तय होता है कि हम हारे या जीते?
- व्यक्तियों का ही नहीं, पार्टियों का भी यही सोचना है कि जनतंत्र उनकी हार–जीत पर निर्भर है. जो भी पार्टी हारती है चिल्लाती है– अब जनतंत्र ख़तरे में पड़ गया. अगर वह जीत जाती तो जनतंत्र सुरक्षित था।
- लाउड स्पीकर का नेता–जाति की वृद्धि में क्या स्थान है, यह शोध का विषय है।
- नेतागिरी आवाज़ के फैलाव का नाम है।
- एक स्त्री से उसकी मित्रता है। इससे वह आदमी बुरा और अनैतिक हो गया।
- खराब बात यह है कि उस स्त्री से अपना संबंध नहीं है।
- स्त्री संबंधी निंदा में प्रोटीन बड़ी मात्रा में होता है ।
- किसी स्त्री और पुरुष के संबंध में जो बात अखरती है, वह अनैतिकता नहीं है, बल्कि यह है कि हाय उसकी जगह हम नहीं हुए।
- ऐसे लोग मुझे चुंगी के दरोगा मालूम होते हैं। हर आते–जाते ठेले को रोककर झाँककर पूछते हैं – तेरे भीतर क्या छिपा है
- आपकी बेटी हमें 'चरित्रहीन' होने का चांस नहीं दे रही है। उसे डाँटिए न कि हमें भी थोड़ा चरित्रहीन हो लेने दे।
- कभी सवाल उठा होगा समाज के नीतिवानों के बीच के नैतिक–अनैतिक, अच्छे–बुरे आदमी का निर्णय कैसे किया जाए। सारी नैतिकता को समेटकर टाँगों के बीच में रख लो।
- शराब संबंधी निंदा में विटामिन बहुत होते हैं।
- कई गर्दन माला पहनने की लिए बनी होती हैं।
- माला लपककर गर्दन में फ़िट हो जातीं हैं। फूल की मार विकट होती हैं ।
- उनका मानना था कि भारत में जूते खाने का रिवाज है, मारने का नहीं है।
- कई गर्दने जो संघर्ष में पुष्ट थी,माला पहनकर लचीली हो गई।
- अपने पैर में जो जूता फ़िट न बैठें,उसे कोई जूता ही नहीं मानते। वे भूल जाते है कि कुछ जूते सिर के नाप के भी बनाये जाते हैं।
- लड़के शादी के बाज़ार में मवेशी की तरह बिकते हैं।
- हम भैंस का दूध पीते हैं लेकिन गाय को माँ कहते हैं।
- जनता जब आर्थिक न्याय की मांग करती है, तब उसे किसी दूसरी चीज में उलझा देना चाहिए।
- क्रांति की तरफ बढ़ती जनता को हम रास्ते में ही गाय के खूंटे से बांध देते हैं।
- देश में लक्ष्मी के कारण उल्लूओं की कदर है।
- हजारों अपराध करने के बाद भी लोग उन्हें शहर की नाक मानते हैं।
- भूखे कुत्तों को रोटी खिलाओ तो वह नहीं काटेगा, आदमी का ठिकाना नहीं है।
- बिना वजन के आवेदन पर कोई ध्यान नहीं देता।
- लोकतंत्र में केवल ताकतवर भेड़ ही मताधिकार का प्रयोग कर पाते हैं।
- फूल की मार बुरी होती हैं ।शेर को अगर किसी तरह एक फूल माला पहना दो तो गोली चलाने की ज़रूरत नहीं है। वह फ़ौरन हाथ जोड़ कर कहेगा मेरे योग्य कोई और सेवा।
- अपने यहां प्रेम की भी जाति होती है. एक हिंदू प्रेम है, एक मुसलमान प्रेम, एक ब्राह्मण प्रेम, एक ठाकुर प्रेम, एक अग्रवाल प्रेम. एक कोई जावेद आलम किसी जयंती गुहा से शादी कर लेता है, तो सारे देश में लोग हल्ला कर देते हैं और दंगा भी करवा सकते हैं।'
- 24–25 साल के लड़के–लड़की को भारत की सरकार बनाने का अधिकार तो मिल चुका है, पर अपने जीवन–साथी बनाने का अधिकार नहीं मिला।
- जनता कहती है हमारी मांग है, मंहगाई बंद हो, मुनाफाखोरी बंद हो, वेतन बढ़े, शोषण बंद हो, तब हम उससे कहते हैं कि नहीं, तुम्हारी बुनियादी मांग गौरक्षा है।
- 'भगवान अगर औरत भगाये तो वह बात भजन में आ जाती है. साधारण आदमी ऐसा करे तो यह काम अनैतिक हो जाता।
- अकेले वही सुखी है, जिन्हें कोई लड़ाई नहीं लड़नी। उनकी बात अलग है। अनेक लोगों को सुखी देखता हूं और अचरज करता हूं कि ये सुखी कैसे हैं। न उनके मन में सवाल उठते हैं न शंका उठती है।

■

प्रजातंत्र में सबसे बड़ा दोष है तो यह कि उसमें योग्यता को मान्यता नहीं मिलती, लोकप्रियता को मिलती है हाथ गिने जाते हैं, सर नहीं तौले जाते।

हरिशंकर परसाई जन्म शताब्दी समारोह का समापन

इटारसी, दोपहर मेट्रो।

व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई के जन्म शताब्दी वर्ष का समापन समारोह आज उनकी जन्मस्थली जमानी में हुआ। व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई का यह जन्मशताब्दी वर्ष था। कार्यक्रम में हरदा जिले के टिमरनी कस्बे से एक सांस्कृतिक यात्रा रहटगांव, सिवनी मालवा और बानापुरा होते हुए जमानी पहुंची। इस मौके पर विवेचना रंगमंडल, जबलपुर द्वारा परसाई की कहानियों पर केंद्रित नाटक का मंचन भी किया।

कार्यक्रम में मुख्य वक्ता प्रो अपूर्वानंद, दिल्ली विश्वविद्यालय एवं प्रख्यात आलोचक, विचारक ने संबोधित करते हुए कहा कि परसाई ने एक आम आदमी की दृष्टि से किसी भी राजनीतिक विचारधारा को नहीं बख्शा। चाहे वे मोरारजी देसाई रहे हों, जयप्रकाश नारायण रहे हों या फिर कम्युनिष्ट। प्रो.अपूर्वानंद ने उपस्थित जन से कहा कि आजादी के भारत को समझना है तो मुंशी प्रेमचंद को पढ़ें, और आजादी के बाद में भारत को साहित्य और कविता की दृष्टि से समझना है तो क्रमश- परसाई और बाबा नागार्जुन को पढ़ें। उन्होंने कहा कि मनुष्य को हमेशा सहानुभूति की दृष्टि से तथा सत्ता को संदेह की दृष्टि से देखना चाहिए, यह परसाई के अवलोकन का तरीका है। उन्होंने कहा कि वे परसाई को व्यंग्यकार कम लेखक अधिक मानते हैं।

राजेन्द्र शर्मा, पूर्व संपादक, वसुधा एवं राज्य अध्यक्ष, प्रगतिशील लेखक संघ, राजीव कुमार शुक्ल, पूर्व निर्देशक, आकाशवाणी, वरिष्ठ कवि कुमार अंबुज, प्रख्यात कवि, परसाई सम्मान से विभूषित कहानीकार, शैलेन्द्र कुमार शैली, वरिष्ठ कवि और पूर्व महासचिव, तरुण गुहा नियोगी, महासचिव, प्रगतिशील लेखक संघ, अनीस कुमार, राष्ट्रीय संयोजक, एकता परिषद, प्रो रेखा कस्तवार, वरिष्ठ कहानीकार, शिवशंकर मिश्र सरस प्रख्यात बघेली कवि, प्रकाश दुबे जबलपुर, सेवानिवृत्त आईएएस टीआर मीणा सहित सामाजिक कार्यकर्ता मौजूद रहे। सभी ने श्री परसाई के स्मारक पर जाकर श्रद्धासुमन अर्पित किये।

कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए प्रो. कश्मीर सिंह उप्पल ने नर्मदापुरम जिले को साहित्य की त्रिवेणी बताते हुए कहा कि यहां माखनलाल चतुर्वेदी, पं. भवानी प्रसाद मिश्र और हरिशंकर परसाई जैसी साहित्यिक विभूतियों ने जन्म लिया है। स्वागत भाषण हेमंत दुबे ने दिया। संचालन सत्यम सागर ने तथा आभार प्रदर्शन तरुण गुहा नियोगी ने किया। आयोजन स्थल पर बालेन्दु परसाई बाप की एक प्रदर्शनी भी लगायी गयी, जिसे काफी सराहा गया। राजेश दुबे ने परसाई के साहित्य पर कार्टून प्रस्तुत किये गये। शेडो आर्गनाइजेशन टिमरनी ने कबीर के भजन प्रस्तुत किये। हायर सैकंड्री स्कूल की टीम ने भोलाराम सजीव की प्रस्तुति दी। ग्राम पंचायत जमानी की ओर से सेवानिवृत्त आईएएस टीआर मीणा को परसाई का साहित्य भेंट किया गया।

इस अवसर पर आयोजन समिति से श्रीमती कला बाई कमरे सरपंच ग्राम पंचायत जमानी, हेमन्त कुमार दुबे संयोजक, स्थानीय आयोजन समिति प्रो सेवाराम त्रिपाठी, अध्यक्ष तरुण गुहा नियोगी, महासचिव सत्यम सत्येन्द्र पाण्डेय, संयोजक, परसाई जन्मशताब्दी समापन समारोह समिति, अश्वनी दुबे, पवन दुबे, आरडी चौधरी, पंकज दीवान, आलोक दुबे, अश्विन जोसेफ, प्रशांत, राकेश दुबे, ग्राम सेवा समिति से रूपसिंह राजपूत, राजेश सामले के अलावा निर्मल शुक्ला, गल्र्स कालेज इटारसी के प्राचार्य डॉ. आरएस मेहरा, कवि डॉ. श्रीराम निवारिया, एमजीएम कालेज इटारसी से प्रो. मनीष चौधरी, प्रो. संतोष अहिरवार, कुसुम कालेज से रामशंकर सहित छात्र-छात्राएं, टिकरनी कालेज से विद्यार्थी सहित ग्रामवासी मौजूद रहे।

हरिशंकर परसाई की जन्मस्थली पर आयोजित शताब्दी समारोह की कुछ झलकियां

- टिमरनी से आयी सांस्कृतिक यात्रा, परसाई के कृतित्व पर नाट्य मंचन हुआ
- देशभर से आए सभी विद्वानों ने परसाई की जन्मभूमि पर पहुंचकर किया नमन
- प्रोफेसर कश्मीर सिंह उप्पल ने कहा, नर्मदापुरम जिला साहित्य की त्रिवेणी

इटारसी। व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई के जन्म शताब्दी वर्ष का समापन समारोह आज उनकी जन्मस्थली जमानी में हुआ। व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई का यह जन्मशताब्दी वर्ष था। कार्यक्रम में हरदा जिले के टिमरनी कस्बे से एक सांस्कृतिक यात्रा रहटगांव, सिवनी मालवा और बानापुरा होते हुए जमानी पहुंची। इस मौके पर विवेचना रंगमंडल, जबलपुर द्वारा परसाई की कहानियों पर केंद्रित नाटक का मंचन भी किया।

कार्यक्रम में मुख्य वक्ता प्रो अपूर्वानंद, दिल्ली विश्वविद्यालय एवं प्रख्यात आलोचक, विचारक ने संबोधित करते हुए कहा कि परसाई ने एक आम आदमी की दृष्टि से किसी भी राजनीतिक विचारधारा को नहीं बख्शा। चाहे वे मोरारजी देसाई रहे हों, जयप्रकाश नारायण रहे हों या फिर कम्युनिष्ट। प्रो.अपूर्वानंद ने उपस्थित जन से कहा कि आजादी के भारत को समझना है तो मुंशी प्रेमचंद को पढ़ें, और आजादी के बाद में भारत को साहित्य और कविता की दृष्टि से समझना है तो क्रमश: परसाई और बाबा नागार्जुन को पढ़ें। उन्होंने कहा कि मनुष्य को हमेशा सहानुभूति की दृष्टि से तथा सत्ता को संदेह की दृष्टि से देखना चाहिए, यह परसाई के अवलोकन का तरीका है। उन्होंने कहा कि वे परसाई को व्यंग्यकार कम लेखक अधिक मानते हैं।

कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए प्रो. कश्मीर सिंह उप्पल ने नर्मदापुरम जिले को साहित्य की त्रिवेणी बताते हुए कहा कि यहां माखनलाल चतुर्वेदी, पं. भवानी प्रसाद मिश्र और हरिशंकर परसाई जैसी साहित्यिक विभूतियोंे ने जन्म लिया है। स्वागत भाषण हेमंत दुबे ने दिया। संचालन सत्यम सागर ने तथा आभार प्रदर्शन तरुण गुहा नियोगी ने किया। इस दौरान प्रगतिशील लेखक मंच और ग्राम जमानी के स्थानीय निवासियों ने तय किया है कि शासन कोई मदद नहीं भी करता है तो हम परसाई की स्मृति में उनकी जन्मभूमि का विकास करेंगे।

आयोजन स्थल पर बालेन्दु परसाई बाप की एक प्रदर्शनी भी लगायी गयी, जिसे काफी सराहा गया। राजेश दुबे ने परसाई के साहित्य पर कार्टून प्रस्तुत किये गये। शेडो आर्गनाइजेशन टिमरनी ने कबीर के भजन प्रस्तुत किये। हायर सैकंड्री स्कूल की टीम ने भोलाराम सजीव की प्रस्तुति दी। ग्राम पंचायत जमानी की ओर से सेवानिवृत्त आईएएस टीआर मीणा को परसाई का साहित्य भेंट किया गया।

इस अवसर पर आयोजन समिति से श्रीमती कला बाई कमरे सरपंच ग्राम पंचायत जमानी, हेमन्त कुमार दुबे संयोजक, स्थानीय आयोजन समिति प्रो सेवाराम त्रिपाठी, अध्यक्ष तरुण गुहा नियोगी, महासचिव सत्यम सत्येन्द्र पाण्डेय, संयोजक, परसाई जन्मशताब्दी समापन समारोह समिति, अश्वनी दुबे, पवन दुबे, आरडी चौधरी, पंकज दीवान, आलोक दुबे, अश्विन जोसेफ, प्रशांत, राकेश दुबे, ग्राम सेवा समिति से रूपसिंह राजपूत, राजेश सामले के अलावा निर्मल शुक्ला, गल्र्स कालेज इटारसी के प्राचार्य डॉ. आरएस मेहरा, कवि डॉ. श्रीराम निवारिया, एमजीएम कालेज इटारसी से प्रो. मनीष चौधरी, प्रो. संतोष अहिरवार, कुसुम कालेज से रामशंकर सहित छात्र-छात्राएं, टिकरनी कालेज से विद्यार्थी सहित ग्रामवासी मौजूद रहे।

सौजन्य : हेमन्त दुबे एवं राजेन्द्र गिरी

इस देश को खुजली बहुत होती है। जब खुजली का दौर आता है, तो दंगा कर बैठता या हरिजनों को जला देता है। तब कुछ सयानों को खुजली उठती है और वे प्रस्ताव का मलहम लगाकर सो जाते हैं।

समय की धरोहर ....

लिपि : लेखन और कालांश की स्मृति

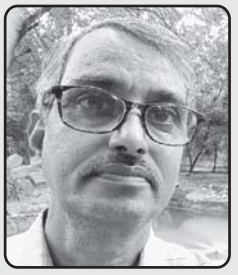

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

हमारे यहां कई लिपियां थीं। पहली सदी तक चौंसठ लिपियां अस्तित्व में थीं। इन लिपियों के अलग-अलग नाम भी मौजूद हैं। यह कैसे हुआ, कोई नहीं कह सकता, मगर लिपियों का इतनी संख्या में होना जाहिर करता है कि ये सब एकाएक नहीं आ गई। अर्थशास्त्र, जिसकी रचना अब ईसापूर्व तीसरी सदी निश्चित मान ली गई है, में शासन लेखन पर विस्तृत अध्याय (2:31) विचारणीय है।

एक छोटे से देश में इतनी लिपियां और उनको लिखने की परंपरा मिलती! बुद्ध जब पढने जाते हैं तो पहले ही शिक्षक को 64 लिपियों के नाम गिनाते हैं जिनमें पहली लिपि ब्राह्मी हैं। महाभारत में विदुर को यवनानी लिपि के ज्ञात होने का जिक्र आया है, वशिष्ठस्मृति में विदेशी लिपि का संदर्भ है। किंतु ब्राह्मी वही लिपि है जिसको चीनी विश्वकोश में भी ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न करना बताया गया है। पड़ नामक लिपि खोदक का नाम अशोक के शिलालेख में आता है, जो अपने हस्ताक्षर तो खरोष्टी में करता था और लिखता ब्राह्मीलिपि। हालांकि अशोक ने अपनी संदेशों को धर्मलिपि में कहा है। सिंधु-हडप्पा की अपनी लिपि रही है, इस सभ्यता की लिपि के नामपट्ट धोलावीरा के उत्खनन में मिल चुके हैं। कुछ शैलाश्रयों में भी संकेत लिपि के प्रमाण खोजे गए हैं।

ऐसे में ब्यूलर वगैरह उन पाश्चात्य विद्वानों के तर्कों का क्या होगा जो भारतीयों को अपनी लिपि का ज्ञान बाहर से ग्रहण करना बताते हैं। भारत में लिपियों का विकास अपने ढंग से, अपनी भाषा और अपने बोली व्यवहार के अनुसार हुआ है। हर्षवर्धन के काल में लिखित 'कादम्बरी' में राजकुमार चंद्रापीड़ को अध्ययन के दौरान '**सर्वलिपिषु सर्वदेश भाषासु**' प्रवीण किया गया। इस आधार पर यह माना जाता है कि उस काल तक लोग सभी लिपियां जानते थे, अनेक देश की भाषाओं को जानते थे। उनको पढ़ाया भी जाता था। लगता है कि भारतीयों को अनेक लिपियों का ज्ञान होता था और उनकी सीखने में दिलचस्पी थी। तभी तो हमारे यहां लिपिन्यास की परंपरा शास्त्रों में भी मिलती है। लिपिन्यास का पूरा विधान ही अनुष्ठान में मिलता है। इस संबंध में एक बार फिर से प्रकाशित ओझा जी की भारतीय प्राचीन लिपिमाला की भूमिका लिखी है जो अनेक नवीन संदर्भ लिए है।

उल्लेखनीय है कि हमें अंकित ध्वज या भवनाक्षर मिले हैं। संसार का पहला दशाक्षर पट्ट माना जा सकता है। सिंधु हड़प्पा सभ्यता की सबसे बड़ी विस्तार साइट है धोलावीरा। यह गुजरात में है और भारतीयों के विदेश व्यापार और विदेश से संबंध का एक महत्वपूर्ण प्राचीन केंद्र है, ऐसे प्रमाण खोजे गए हैं। संसार के पुरा सभ्यता स्थलों में धोलावीरा का महत्व इसलिए है कि यहां से पहला साइन बोर्ड मिला है। साइन बोर्ड यानि संस्कृत की व्यापारिक शब्दावली में अंकित ध्वज! लोग जानते ही हैं कि दुकान, घर, सराय और अन्य किसी स्थान पर क्या कुछ लिखा जाता है। ये पहचान सूचक होते हैं। (भारतीय प्राचीन लिपिमाला : गौरीशंकर हीराचंद ओझा, नवीन संस्करण, जोधपुर, 2011 ई. मेरी भूमिका)

1. ये अक्षर संख्या में 10 हैं और जिप्सम से बनाए गए हैं। जिप्सम का लेखन के लिए उपयोग का यह पहला प्रयास है। दस का उपयोग हमारे यहां दिशा, द्वार, आशा, रूपक, धर्म, राजा आदि के संदर्भ में होता है।

2. ये अक्षर उक्त बंदर भवन के उत्तरी द्वार पर तरतीबवार अंकित मिले हैं।

3. इन अक्षरों को एकदम शिरोरेखा विहीन बनाया गया है : चक्र, टी के बाद चौफुली पंखड़ी, छह आरे का चक्र, खड़ा हुआ विषम वर्ग आदि आकृतियां हैं। सब एक के बाद एक हैं और प्रदक्षिण हैं। इसमें सम संख्या का प्रयोग है।

4. एक ही पंक्ति में चार बार चक्र की आंतरिक आरेदार आकृतियां बनाई गई हैं और एक- एक बार टी व एन जैसी रचना का अंकन हुआ है।

5. ये 37 सेंटीमीटर ऊंचे और तीन मीटर लंबे आकार पर हैं और किसी स्वागत कक्षा के होने या किसी व्यापारिक प्रयोजन के भवन के होने को बताते हैं। वहां के किसी अधिकारी या राजा के नाम को भी बता सकते हैं लेकिन इसकी संभावना कम ही लगती है।

मैं सोचता हूं कि इनको साफ तौर पर लिखा गया है और मुख्य रूप से रेखाओं का प्रयोग किया गया है। बिंदी, विसर्ग, सिरोरेखा नहीं है।

अश्लील पुस्तकें कभी नहीं जलाई गई। वे अब अधिक व्यवस्थित ढंग से पढ़ी जा रही हैं।।

आगे से आगे लिखा गया है, न कि ऊपर से नीचे। लेखन का यह प्रारंभिक प्रयोग लगता है। और, यह तो तय है कि यह तत्कालीन लोक बोली का लिखित प्रदर्शन होगा और यदि ऐसा ही है तो फिर तब ऐसे पट्टों को देखने वाले भी पढ़े लिखे होंगे ही! एक और बात है कि इस काल तक बड़े बड़े वाक्य शायद नहीं लिखे जाते थे। केवल नाम या संकेत में बड़ी बातें और संकेत निहित माने जाते थे। भवन पर अंकन की परंपरा तब से ही भारतीय जन जीवन का अंग रही हो।

आदरणीय ओझा जी के इस ग्रंथ के बहाने एक सदी बाद भी अनेक नवीन पक्षों का स्मरण ही नहीं होता, नवीन तथ्यों को विश्लेषित करने का अवसर भी मिलता है। आजकल वंशावली लेखन, वंश वाचन की परंपरा पर फिर से चर्चा होने लगी है। तब हमें ओझा जी याद आते हैं कि ऐसी दो सदी से पहले की सूचनाओं का अन्य स्रोत से परीक्षण करना चाहिए। वंशवाचकों की लिपि निश्चित कहां ? पीढ़ीनामा या कुर्सीनामा लिखने वालों की पोथी में जो दर्ज किया जाता है, वे प्रधानता से संकेताक्षर होते हैं। नीचे एक बही का पन्ना इसका उदाहरण है :

आड़े कागज पर बायें से दायें रगीड़
और टंगमा बरना :
कुछ कक्का कुछ गग्गा घोरी।
कुछ तुक्का कुछ दद्दा धोरी।।

यह पूरी पोथी ऐसे ही अक्षरों से भरी है, लेकिन ये हमारे अक्षर नहीं है, इनका उच्चारण भी वैसा नहीं, जैसा हम करते हैं। पुरानी पोथी से नई पोथी में उतारा (प्रतिलिपि) करते समय प्राय: क्रम बदल जाता है। वीर विनोद के लेखन के समय, 1883-90 ईस्वी में ऐसी पोथियों का निरीक्षण हुआ और पढ़ने वालों का परीक्षण। कविराज श्यामल दास ने जो लिखा, वह एक बार तो पढ़कर गुस्सा आता है परन्तु सौ बार ग्लानि भी होती है। ढाई तीन सौ साल से ज्यादा पुरानी नहीं। क्यों?

इसका साफ कारण है : ये संकेत अधिकतम तीन पीढ़ी तक जाने जाते हैं। पोथी को दाता द्वारा न तो बार बार पढ़वाया जाता है और न ही खुद कभी देखा जाता है। पाठक भी कभी अंगुली लगाकर नहीं पढ़ता, वह केवल अपनी स्मृति को दोहराता है। हां, कभी-कभी कोई संकेत ग्रहण करता है। वह अक्षरश: पढ़ता नहीं, पंक्ति वार बोलता नहीं, केवल अपने प्रति दिए गए दान या दत्त को बताता है। रटा रटाया पाठ! इन संकेतों को लेखक या उसके परिवार द्वारा ही पढ़ा जा सकता है, अन्य द्वारा नहीं।

क्यों, इसका भी कारण है :

* किसी संकेत से क्या अर्थ निकलेगा, यह लिखने वाला ही दूसरे को बताता है।
* इससे पोथी की गोपनीयता और उस पर एकाधिकार बना रहता है।

और भी कुछ कारण है। मैं ऐसी शताधिक पांडुलिपियां राजस्थान, मालवा और गुजरात में देख चुका हूं, मगर कुछ भी पढ़ नहीं पाया, समझ नहीं पाया। एक वंश वाचक मित्र ने यह कहकर मुझे चुप कर दिया : बारह बारह बरस जोत करें तो कहीं जाकर ये अक्षर अपना अर्थ उगलते हैं ! आप क्या कोशिश करेंगे ! हम ही जानते हैं कि बिंदी, ऊभी पाई, आड़ी पाई क्या भरपाई करती है।

कुछ और बातें जो ऐतिहासिक स्रोत और संदर्भ की बातों के अध्ययन के दौरान मुझे ज्ञात हुई, वे सबको रुचिकर लगेगी। तीर्थ यात्राओं आदि में रिकॉर्ड रखने की हमारे यहां अनूठी परंपराएं रही हैं :

* जूनागढ़ आदि स्थानों पर अनेक लिपियों में यात्रियों के हस्ताक्षर मिलते हैं। कन्हेरी आदि की गुफाओं में अनेक यात्रियों के नाम है।
* कई जगह लोग अपना नाम लिखते रहे। स्मृति के मंदिर पत्थर जमाकर बनाते रहे हैं। दान करने वालों ने सर्व प्रथम पत्थरों पर अपना नाम उत्कीर्ण करवाया। ब्राह्मी के दान अक्षरों से ही उसकी लिपि पठन में प्रिंसेप को सहायता मिली है।
* अभिलेखों में वंशावलियां मिलती हैं। गुजरात के अनेक ताम्रपत्र और लेखों का आरंभ 'पूर्व राजावलि...' लिखकर पूर्ववर्ती पीढ़ियों के क्रमश: स्मरण के साथ हुआ है। बांसखेड़ा, मधुबनी, वलभी, पाटन आदि के ताम्रपत्र देखे जा सकते हैं।
* शिल्पकारों ने आत्म चित्र के साथ अपना और अपने पिता का नाम दिया है। यह शिल्पकार, सूत्रधार के वंश आदि के लिए भी ज्ञेय है। अनेक मंदिरों के कहीं न कहीं शिल्पियों के हस्ताक्षर हैं। रानी की बाव में करीब सौ शिल्पियों के नाम हैं। देलवाड़ा कुंड, बाघेला सरोवर, एकलिंग जी मंदिर, जयसमंद पर भी अनेक शिल्पियों के हस्ताक्षर हैं।

और हां, तीर्थाटन पर नाम लेखन की प्रथा पुरानी नहीं है। प्रबंध चिंतामणि (1304 ई.) में कापर्टी वेश में यात्रा करने और वहां कर चुकाने कर दर्शन करने का उल्लेख है। तीर्थों से बड़ी आय थी, सिद्धराज जयसिंह को बहुलोद में कर चुकाने के प्रयास का वर्णन है। 15वीं सदी तक अनेक राजा तीर्थों की इस परंपरा को हटाने वाले हुए, उन्हें 'गया तीर्थकर विमोचक' जैसी उपाधियों से सम्मानित किया गया। घोसुंडी, कीर्ति स्तंभ, कुंभलगढ़ आदि के अभिलेख क्या बताते हैं! राजा, रानियां और सामंतगण वहां ग्राम दान, उमा महेश्वर दान आदि करते थे।

ऐसे दान की स्मृति पंजिकाएं चलाई जाती थीं। यह पंजी प्रथा थी। सौरों, गया, उड़ीसा आदि में ऐसी प्रथा रही। इनमें बढ़ा चढ़ाकर दान का माहात्म्य लिखा जाता। राज प्रशस्ति में इसका सुंदर विवरण है। रेल आदि साधनों के विकास के साथ साथ आम जनों का विवरण भी रखने का चलन हुआ।

देवनागरी लिपि की महत्ता :

मुझे याद आता है कि राजस्थान के वागड इलाके में उत्तर गुप्तकाल के बाद से देवनागरी लिपि का चलन हो गया था। खासकर यहां भोज के काल में प्रचलित नागरी लिपि का चलन देखने में आता है। इस

मध्यवर्ग का व्यक्ति एक अजीब जीव होता है। एक ओर इसमें उच्च वर्ग की आकांक्षा और दूसरी तरफ निम्नवर्ग की दीनता होती है। अहंकार और दीनता से मिलकर बना हुआ उसका व्यक्तित्व बड़ा विचित्र होता है। बड़े साहब के सामने दुम हिलाता है और चपरासी के सामने शेर बन जाता है।

काल तक कुटिल लिपि केवल कारीगरों या विशेष लिपिकारों तक सिमट गई थी और साफ सुथरे अक्षर लोकप्रिय हो रहे थे। इन काल तक राजागण भी अपने हस्ताक्षरों से ताम्रपत्र जारी करते थे। वागड में सर्वप्रथम 1109 ई. के अर्थूणा अभिलेख में नागरी लिपि का जिक्र आता है। उससे स्पष्ट रूप से नागरी के लिपिकारों का इस इलाके में होना प्रमाणित होता है। तब संधिविग्रहिक द्वारा नागरी लिपि में आज्ञाओं को लिखा जाता था। अर्थूणा के जैन अभिलेख में आया है कि वालभान्वय या वालभ गोत्र के कायस्थ राजपाल के पुत्र ने इस लेख को लिखा था- संधि विग्रह संज्ञेन लिखिता नागरी लिपि। (श्लोक 29)

इसमें पडी मात्राओं के विपरीत खड़ी मात्राओं का शानदार प्रयोग हुआ है। एक पूर्ण नागरी के रूप में इस अभिलेख को लिखा गया है। इस लिपिकार ने यह कामना भी है कि उसकी यह लिपि हमेशा चिरायु हो। उसने माना है कि जब तक रावण और राम का चरित्र गाया जाता रहे अर्थात रामायण की महत्ता रहे, विष्णुपदी या गंगा नदी में जल का प्रवाह रहे, आकाश में चंद्रमा की विद्यमानता रहे और अर्हचक्र के संबंध में पढा-सुना जाता रहे तब तक यह नागरी लिपि का अभिलेख स्थायी रहे। कितने सुंदर विचार है, इस अभिलेख में अपनी लेखनी की आयुष्य के, कोई आज की तरह लिखा और फैंका, जैसे विचार नहीं है। एक अक्षर को पूरी तरह अक्षर बनाने का भाव रहा है-

यावद्रावण रामयोः सुचरितं भूमौ जनैर्गीयते,
यावद्विष्णुपदी जलं प्रवहति व्योम्न्यस्ति यावच्छशी।
अर्हच्चक्रविनिर्गतं श्रवणकैः यावत्तं पठ्यते
तावत्कीर्ति रियं चिराय जयतात्संस्तूयमाना जनैः।।

आज हम मूल लिपि को भूलते जा रहे हैं जबकि उनका अभ्यास किया जा सकता है। लिपि कोई कठिन नहीं। अशोक ने 'लिबि' कहा है। मर्यादाओं के निर्देश के लिए इसको अपनाया गया, इसलिए पहली बार धम्म लिबि नाम दिया गया। खुरचने या लेखन / आलेखन से इसका क्रियात्मक संबंध रहा। उसके पास जो लिपिकार थे, उनमें पड़ या चापड़ जैसे दो लिपियों के जानकार व्यक्ति भी थे जिन्हें तीन भाषाएं आती थीं और जो राजकीय आदेश आदि को लिखने के बाद अपने हस्ताक्षर करते। राजाज्ञा को चापड़ पहले पहल अपने संग्रह में लिखता था। उसके पास वे ही आज्ञाएं थीं जिनको उत्कीर्ण करना था। यह बड़ा काम था। देशभर में यह काम करना था। कहीं जाकर चट्टानों पर लिखना था तो कहीं हाथीभाटे आज्ञा सूचक बनाने थे। स्तंभों पर लिखवाकर निर्दिष्ट स्थान पर खड़े भी करवाने थे। यह काम कई सालों तक चला। अनेक लिपिकार तैयार हुए। अनेक आज्ञा पत्र संग्रह बने। जगह जगह पहुंचे। जहां जैसी लिपि पढ़ी जा सकती थी, वैसी लिखवाई गई। भारत तब भी बहुभाषाई, बहुलिपीय देश था, लेकिन पाली समझी जाती थी क्योंकि वह हर पाले में व्यवहार में थी तो उस लिपिकार का अपना लेख संग्रह क्या कहलाता था ? चउपड़ी, चोपड़ा या चोपड़ी (बही) का चापड़ से क्या संबंध है? क्या चापड़ नाम था या श्रीकरण जैसे पदाधिकारी जैसा पद! यह उदाहरण है :

(सौजन्य : अत्रि विक्रमार्क अन्तर्वेदी)

कुटिल लिपि और विशेषताएं :

ओझाजी ने कुछ शिलालेखों में कुटिल लिपि की चर्चा की है। कुटिल या कला लिपि जिसमें मात्राओं, अर्धचंद्र और बिंदी की कला विशेष रूप से दिखाई जाती है। यह प्रयोग इस लिपि के प्रसार में बड़ा सहयोगी हुआ। जिस तरह आज भी लिपि लेखक अक्षरों की सुंदरता के लिए खींच, खेंचक, कोण, गोलाई, मुकुलन, पल्लव आदि का प्रयोग करते हैं, वैसे ही प्रयोग लगभग हजार वर्ष पहले भी हो रहे थे। ये लिपिकार नीचे अपना नाम लिखते थे। वैसे ही जैसे आज लिखते हैं। पत्थर पर लिखे अक्षर अश्मक वर्ण कहे जाते हैं। इनके लिए तीन जनों की भागीदारी होती प्रशस्तिकार, लिपिकार और उत्कीर्णक। (भारतीय प्राचीन लिपिमाला) लिखते लिखते यदि कभी कोई पंक्ति बच जाती तो हांशिये पर वैसे ही लिखी जाती जैसे कि हम आज तक लिखते रहे हैं। और हां, आरंभ में मंगल सूचक मंगल (ॐ नमः, 9, सिद्धम्, स्वस्ति) लिखा जाता, अन्त में 'शुभम् भवतु'। क्योंकि, आरंभ और अन्त में मंगल कामना की परंपरा रही है।

पुराणों में देवलिपि का उल्लेख :

अपने को साधारण आदमी मानना भी एक ताक़त है।
ऐसा आदमी असाधारणता के कोई फालतू सपने नहीं देखता और निराश नहीं होता, टूटता नहीं।

एक बात यह भी विचारणीय है कि लिपियों का विकास और प्रचलन निरंतर रहा है। पद्मपुराण में देवलिपि में लिखे पुराणों की प्रशस्ति है, अ से ऊ तक को लिखने का ढंग भी बताया गया है। क्या कोई बताये गये ढंग से उन अक्षरों को लिखकर दिखा सकता है वैसी लिपि का काल क्या है? यथा :

श्रीतालपत्रलिखितं देवलिप्यन्वितं शुभम्।
बंधाद्यतिप्रपंचं यद्युगपत्प्रणवाक्षरम्।
प्रागूर्द्ध्वरेखयोः प्रांते प्रणवस्याग्रयोजिका॥
रेखा भवेदेवमेका अकारस्तस्य पार्श्वतः।
शिरोभागमुपक्रम्य सकोणाधः प्रलंबिनी।।
आकारः स हि विज्ञेयः पट्टिकादक्षरेखया।
वामे षड्वक्रबिंदूद्वा विकार इति कीर्तितः।।
तस्य वामशिरोरेखा लंबिन्या ई उदाहृतः।
सर्वाक्षरे शिरोरेखा अवक्रा प्रणवं विना।।
तस्यां तु लंबरेखान्या तदंते च लवित्रवत्।
उकारः स हि विख्यातो लवित्रद्वयतस्तदू।।
एवमन्यानि सर्वाणि अक्षराण्याह भारती।
लिप्यानयैव लिखितं पुराणं तु प्रशस्यस्ते॥

हिन्दी के लिए नन्दिनागरी :

मुझे हिन्दी दिवस पर इसकी लिपि की याद भी आती है। मोबाइल और नेट के दौर में आज हिंदी को भी विदेशी लिपि में टंकित कर लिखने की अनावश्यक परम्परा चल पड़ी है। तब, याद आते है, इसको नन्दिनागरी लिपि में लिखने के निर्देश। संस्कृत हो या अपभ्रंश या पैशाची जैसी पूर्व भाषाएं। हमारे पुराणों और उपपुराणों में हमारी भाषाओं को प्रारम्भ में जहां ब्रह्माक्षर (या ब्राह्मी। सन्दर्भ – शिवधर्मपुराण) में लिखने का निर्देश हैं, वहीं बाद में नन्दिनागरी लिपि में लिखने का निर्देश मिलता है।

यह देवनागरी लिपि का पूर्व और प्रारम्भिक रूप है। उत्तर गुप्तकालीन देवीपुराण, शिवधर्मोत्तर पुराण और अग्निपुराण में नन्दिनागरी लिपि का सन्दर्भ मिलता है।

देवीपुराण में कहा गया है कि नन्दिनागरी लिपि बहुत सुन्दर है और इसका व्यवहार समस्त वर्णों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। इसमें किसी भी वर्ण और उसके अंश को भी तोड़ना नहीं चाहिए। अक्षरों को हल्का भी नहीं लिखना चाहिए न ही कठोर लिखना चाहिए। हेमाद्रि (1260 ई.) ने भी इन श्लोकों को चतुर्वर्ग चिन्तामणि में उद्धृत किया है–

नाभि सन्तति विच्छिन्नं न च श्लक्ष्णैर्न कर्कशैः।।
नन्दिनागरकैव्वर्णै लेखयेच्छिव पुस्तकम्।।
प्रारभ्य पंच वै श्लोकान् पुनः शान्तिन्तु कारयेत्।

(देवीपुराण 91, 53–54 एवं शिवधर्मोत्तर)

पुस्तकों के लिखने के सन्दर्भ में यही मत अग्निपुराणकार ने भी प्रस्तुत किया है। नन्दिपुराण में कहा गया है कि स्याही का उचित प्रयोग करना चाहिए और वर्णों के बाहरी–भीतरी स्वरूपों को सही–सही प्रयोग करना चाहिए। उनको सुबद्ध करना चाहिए, रम्य लिखना चाहिए, विस्तीर्ण और संकीर्णता पर पूरा ध्यान देना चाहिए। (दानखण्ड अध्याय 7, पृष्ठ 549)

यही एक ऐसी लिपि है जिसको देह पर गुदवाया जाता है। लिपि न्यास के प्राचीन संदर्भ मिलते हैं और उसकी मानसिक विधि जो भी हो लेकिन लोक ने उसका विधान अपने तरीके से किया है : रोम रोम पर राम! राम नामी की महत्ता इसी लिपि के कारण है। और, कहीं है? है न लिपि के व्यवहार का सुन्दर निर्देश जो किसी धन से कम नहीं।

और, कक्को केवलो !

यहां मुझे मित्र अत्रि जी का स्मरण हो रहा है जो कहते हैं कि ककहरा से सीखने के सोपान चढ़ने का सिलसिला बड़ा पुराना है। पढ़ाई कैसे होती थी, शिक्षा विषयक नारदीय, याज्ञवल्क्य आदि किताबों में बड़ी बड़ी बातें हैं लेकिन ककहरे का क्रम बौद्ध ग्रन्थों में मिल जाता है, सिद्धमातृका के नाम से लिपि का एक पाठ मिलता है। ओलम (इल्म से मिलता जुलता, लेकिन मलयालम में सुरक्षित शब्द) शब्द ककहरा सीखने और प्रशिक्षण की पहली पोथी के अर्थ में है। इसके आसपास का ओली शब्द राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र में मिलता है जिसका आशय लिखना, दाखिला देना होता है।

मित्र इस ककहरे को संभाल कर रखें। यह कुल 46 अक्षरों का है :

मातृका (ओलम) :

यदा अकारं परिकीर्तयन्ति स्म, तदा अनित्यः सर्वसंस्कारशब्दो निश्चरति स्म।
आकारे परिकीर्त्यमाने आत्मपरहितशब्दो निश्चरति स्म।
इकारे इन्द्रियवैकल्यशब्दः।
ईकारे ईतिबहुलं जगदिति।
उकारे उपद्रवबहुलं जगदिति।
ऊकारे ऊनसत्वं जगदिति।
एकारे एषणासमुत्थानदोषशब्दः।
ऐकारे ऐर्यापथः श्रेयानिति।
ओकारे ओघोत्तरशब्दः।
औकारे औपपादुकशब्दः।
अंकारे अमोघोत्पत्तिशब्दः।
अःकारे अस्तंगमनशब्दो निश्चरति स्म।
ककारे कर्मविपाकावतारशब्दः।
खकारे खसमसर्वधर्मशब्दः।

देश एक चलती-फिरती कतार है, कभी चावल की दुकान पर खड़ी होती है।
फिर शक्कर की दुकान पर आधी जिन्दगी कतार में खड़े-खड़े बीत रही है।

गकारे गम्भीरधर्मप्रतीत्यसमुत्पादावतारशब्दः।
घकारे
घनपटलाविद्यामोहान्धकारविधमनशब्दः।
ङकारेऽङ्गविशुद्धिशब्दः।
चकारे चतुरार्यसत्यशब्दः।
छकारे छन्दरागप्रहाणशब्दः।
जकारे जरामरणसमतिक्रमणशब्दः।
झकारे झषध्वजबलनिग्रहणशब्दः।
ञकारे ज्ञापनशब्दः।
टकारे पटोपच्छेदनशब्दः।
ठकारे ठपनीयप्रश्नशब्दः।
डकारे डमरमारनिग्रहणशब्दः।
ढकारे मीढविषया इति।
णकारे रेणुक्लेशा इति।
तकारे तथतासंभेदशब्दः।
थकारे थामबलवेगवैशारद्यशब्दः।
दकारे दानदमसंयमसौरभ्यशब्दः।
धकारे धनमार्याणां सप्तविधमिति।
नकारे नामरूपपरिज्ञाशब्दः।
पकारे परमार्थशब्दः।
फकारे फलप्राप्तिसाक्षात्क्रियाशब्दः।
बकारे बन्धनमोक्षशब्दः।
भकारे भवविभवशब्दः।
मकारे मदमानोपशमनशब्दः।
यकारे यथावद्धर्मप्रतिवेधशब्दः।
रकारे रत्यरतिपरमार्थरतिशब्दः।
लकारे लताछेदनशब्दः।
वकारे वरयानशब्दः।
शकारे शमथविपश्यनाशब्दः।
षकारे
षडायतननिग्रहणाभिज्ञज्ञानावाप्तिशब्दः।
सकारे सर्वज्ञज्ञानाभिसंबोधनशब्दः।
हकारे हतक्लेशविरागशब्दः।
क्षकारे परिकीर्त्यमाने
क्षणपर्यन्ताभिलाप्यसर्वधर्मशब्दो निश्चरति स्म॥ इति।

यहां कुल 46 वर्णाक्षरों का ज्ञान और सबका प्रयोग नकारात्मकता में है। बहुत से पक्ष हैं। सब अभ्यास के विषय हैं और आजकल केवल लगु मार्ग खोजा जा रहा है।

लेखक – वरिष्ठ साहित्यकार, भारततीय विद्याविद्
और संस्कृत के वैज्ञानिक ग्रंथो के खोजकर्ता है।
संपर्क : विश्राधरम्, 40 राजश्री कॉलोनी, विनायक नगर,
उदयपुर 313001 (राज.) मो. 9928072766

कला समय

डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित
(पद्मश्री सम्मान से विभूषित)

आगामी अंक
फरवरी-मार्च 2025

डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित पर केन्द्रीत विशेषांक

पं. कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय
इस विशेषांक के अतिथि संपादक
(मंदसौर म.प्र.)
मो. 9424546019

अतिथि संपादक : पं. कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय
(राष्ट्रपति सम्मान प्राप्त) वरिष्ठ साहित्यकार, इतिहासकार एवं पुरातत्वविद्

इस प्रतिष्ठापूर्ण विशेषांक हेतु मौलिक आलेख, दुर्लभ छाया चित्र, विशेष पाण्डुलिपियाँ सादर आमंत्रित हैं।
सामग्री प्राप्ति की अंतिम तिथि 24 फरवरी 2025 है।
संपादक

तानाशाह एक डरपोक आदमी होता है।
अगर पांच गधे भी साथ-साथ घास खा रहे हों तो तानाशाह को डर पैदा होता है कि गधे भी मेरे खिलाफ़ साजिश कर रहे हैं।

भारतीय ज्ञान परम्परा के प्रखर सूर्य : भगतवतपाद आदिशंकराचार्य

डॉ. मोहन गुप्त

श्रुतिस्मृतिपुराणानामालयं करुणालयम् ।
नमामि भगवत्पादं शंकरंलोकशंकरम् ।।

भगवान कृष्णद्वैपायन व्यास जिन्होंने अपनी मेधा के प्रकाश से संपूर्ण भारतवर्ष की अप्रतिम रूप से प्रकाशित किया था तथा जिनके बारे में आज लगभग 4000 वर्ष बाद भी यह कहा जाता है कि **व्यासोच्छिष्टं जगत् सर्वम्** अर्थात् वेदान्त से लेकर आज तक का संपूर्ण भारतीय ज्ञान महर्षि वेद व्यास के ज्ञान की जूठन है। उनके बाद भारतीय ज्ञान परम्परा की दीप्ति को दीग्दिगन्त में यदि किसी ने पहुंचाया है तो वे हैं भगवत्पाद आदिशंकराचार्य। उन पर लेखनी चलाना किसी सूर्य को दीपदान जैसा है। उनके बारे में प्रसिद्ध है कि

अष्टवर्षे चतुर्वेदी द्वादशे सर्वशास्त्रवित् ।
षोडशे कृतवान् भाष्यं द्वात्रिंशे मुनिरभ्यगात् ।।

आठ वर्ष की कोमल अवस्था में उन्हें चारों वेदों का ज्ञान हो गया था। बारह वर्ष की अवस्था में सभी शास्त्रों में पारंगत हो गये थे। सोलह वर्ष की अवस्था में भगवान् बादरायण वेदव्यास के ब्रह्मसूत्र पर सर्वातिशायी भाष्य लिख डाला था तथा ग्यारह उपनिषदों सहित श्रीमद्भगवतगीता और विष्णुसहस्त्रनाम पर भाष्य लिखने के अतिरिक्त अनेक स्वतंत्र ग्रंथ लिखे। पूरे भारतवर्ष के एक कोने से दूसरे कोने में जाकर विभिन्न नास्तिक, कापालिक, अवैदिक, अनात्म दर्शनों के आचार्यों को शास्त्रार्थ में परास्त कर वैदिक ज्ञान का पुनःस्थापन किया, भारतवर्ष के चारों कोनों, पूर्व में गोवर्धनमठ पुरी, उत्तर में ज्योतिर्मठ, पश्चिम में द्वारका और दक्षिण में श्रृंगेरीमठ की स्थापना कर उस परम्परा को आगे जीवित रखने के लिए शंकराचार्यों के रूप में प्रतिष्ठापित किया और केवल बत्तीस वर्ष की आयु में भारत का यह सूर्य ब्रह्मलीन हो गया। यह जीवन चरित किसी सामान्य मनुष्य का नहीं हो सकता। इसलिये विद्वान् लोग उन्हें साक्षात् भगवान शिव का अवतार मानते हैं।

उनके आविर्भावकाल के संबंध में मतैक्य नहीं है। आधुनिक विद्वान् उनका आर्विभाव ई. सन् 788 में तथा तिरोभाव सन् 820 में बताते हैं। किन्तु इस काल के संबंध में अनेक विप्रतिपत्तियां हैं। चार में से तीन पीठों के शंकराचार्य तथा अनेक पारंपरिक विद्वान् उनका आर्विभाव ई.पू. 507 अर्थात् युनिष्ठिर संवत् 2631 में मानते हैं। इनमें पुरी गोवर्धनमठ के पूज्य शंकराचार्य जगद्गुरु स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती जिन्होंने श्रीशिवावतार भगवत्पाद शंकराचार्य नामक 1000 से अधिक पृष्ठ का एक विशाल प्रामाणिक ग्रंथ आचार्य शंकर पर लिखा है, उन्होंने भविष्योत्तरपुराण के अतिरिक्त शंकरदिग्विजय नामक ग्रंथ के अनेक उद्धरण देकर यह प्रतिपादित किया है कि वे ई.पू. 507 में वैशाख शुक्ल पंचमी के दिन केरल में पूर्णा नदी के तट पर कालडी गांव में अवतरित हुए। उनके पिता का नाम शिवगुरु तथा माता का नाम सुभद्रा या आर्याम्बा था। उन्होंने तो उनके जन्म का जन्मपत्र भी उपस्थापित किया है।

ये गोवर्धनमठ पुरी के 145वें शंकराचार्य हैं। उनके आश्रम में मठ के प्रथम शंकराचार्य भगवत्पाद के साक्षात् शिष्य श्री पद्मपादाचार्य से लेकर वर्तमान शंकराचार्य तक पूरी श्रृंखला के नाम दिये हुए हैं और उनके शंकराचार्य पद की अवधि भी दी गई है। इसके अनुसार भी ई.पू. 5वीं सदी आदि शंकराचार्य का आविर्भावकाल प्रमाणित होता है। ज्योर्तिमठ तथा शारदा मठ द्वारका के शंकराचार्य भी इसकी पुष्टि करते हैं। किन्तु श्रृंगेरी मठ की परम्परा इससे किंचित् भिन्न है।

भगवत्पाद के आर्विभाव काल को 788 ई. में मानने में अनेक कठिनाईयां हैं। पहली तो यह है कि 8वीं शदी में बौद्धों, जैनों, कापालिकों या चार्वाकों का इतना प्रभाव नहीं दिखता कि शास्त्रार्थ में उनको निरस्त कर पुनः वैदिक तत्वज्ञान या अद्वैतवेदान्त की प्रतिष्ठा का अवसर हो। 8वीं शदी से पहले ई.पू. द्वितीय और प्रथम शदी में शुंग वंश का आविर्भाव हो चुका था जिनके समय वैदिक ज्ञान की अपूर्व प्रतिष्ठा हुई और स्वयं पुष्य मित्र शुंग ने महर्षि पतंजलि के आचार्यत्व में दो अश्वमेध यज्ञ किये थे। उसके बाद गुप्त साम्राज्य आया जिनके समय में वैष्णव धर्म अपने उच्चतम शिखर पर था तथा इसके पश्चात् हर्षवर्धन का काल आया। इसलिये ऐसा कोई समय नहीं दिखता जब वैदिक धर्म का इतना पतन हुआ हो कि उसकी पुनःस्थापना के लिए भगवान् शिव को शंकराचार्य के रूप में अवतार लेना पड़े।

उस समय के भारतवर्ष के राजनीतिक इतिहास पर दृष्टि डालें तो 600 से 850 तक दक्षिण भारत में पल्लव राजवंश का राज था तथा कुछ भाग में चालुक्य राजवंश थे जो कि 11वीं सदी के अंत तक रहे। उत्तर भारत में पाल, गुर्जर प्रतिहार तथा काश्मीर में उत्पल राजवंश का अधिकार था। इनमें से किसी भी राजवंश के विवरण में भगवत्पाद आदि शंकराचार्य के जीवनवृत्त का उल्लेख नहीं मिलता तथा यह संकेत भी नहीं मिलता कि उत्तर या दक्षिण में यह काल वैदिक ज्ञान के ह्रास का काल था।

8वीं सदी में मुस्लिम आक्रमण के समय बौद्ध विरोध का कोई

दिशाहीन, बेकार, हताश, नकारवादी, विध्वंसवादी बेकार युवकों की यह भीड़ खतरनाक होती है।
इसका प्रयोग महत्वाकांक्षी खतरनाक विचारधारावाले व्यक्ति और समूह कर सकते हैं। इस भीड़ का उपयोग नेपोलियन, हिटलर और मुसोलिनी ने किया था।

औचित्य प्रतीत नहीं होता। इसलिये भगवत्पाद आदि शंकर के लिए हमें परम्परा प्राप्त कालगणना का ही आश्रय लेना होगा। आदि शंकर के सहपाठी बताये गये चित्सुखाचार्य का बृहत् शंकर दिग्विजय इस संबंध में सबसे प्रामाणिक है। इसके अनुसार –

तिष्ये (कलौ) प्रयात्यनल शेवधि-बाण नेत्रेऽब्दे नन्दने दिनमणावुदगध्वभाजि।

श्रीगोवर्धनमठ पुरीपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी निश्चलानन्दसरस्वती, श्री शिवावतार भगत्पाद शंकराचार्य, पृ. 69–70 राधे (वैशाखे) ऽदितेरूडु (पुनर्वसु नक्षेत्रे) विनिर्गत मङ्ग (धनु) लग्नेऽस्याहूतवान् शिवगुरु: (पिता) स च शङ्करेति ।।

अर्थात् कलि संवत् 2593 तद्नुसार ई.पू. 509 में भगवत्पाद आदि शंकर का आविर्भाव वैशाख शुक्ल पंचमी के दिन धनु लग्न में पुनर्वसु नक्षत्र में हुआ।

आदि शंकर से संबंधित अन्य शंकर दिग्विजय नामक ग्रंथों में कलि संवत् 2593 के स्थान पर युधिष्ठिर शक 2631 लिखा है। जैसे द्वारका पीठ के द्वितीय शंकराचार्य द्वारा लिखित शंकर दिग्विजय में उनका अवतार वैशाख शुक्ल पंचमी को नंदन नामक संवत्सर में पुनर्वसु नक्षत्र में ही किन्तु कर्क लग्न में बताया गया है। कुछ विद्वानों ने तद्नुसार 4 अप्रैल 509 ई.पू. के उनके जन्म के आधार पर उनका जन्म चक्र भी तैयार कर लिया है।

भगवत्पाद आदि शंकर का जीवनवृत्त अत्यन्त दिव्य, विस्मयकारी और सामान्य मनुष्य के लिए असंभव सा है।

उनके दिव्य जीवनवृत्त की एक संक्षिप्त छवि प्रस्तुत करना अत्यन्त विस्मयकारक और आनन्दमय अनुभव होगा। जैसा कि ऊपर बताया गया है ई.पू. 509 वैशाख शुक्ल पंचमी को भगवत्पाद का केरल के कालडी में पूर्णा नदी के तट पर एक शिव भक्त ब्राह्मण शिव गुरु तथा आर्या सुभद्रा के घर जन्म हुआ। प्रारंभ से ही उनकी मेधा चमत्कृत करने वाली थी और शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भांति प्रतिदिन वेद और शास्त्र उनके अनुगत होते चले जा रहे थे। 8 वर्ष की अवस्था तक वे चारों वेद और वेदांगों में पारंगत हो गये थे। ज्ञान दीप्ति के इस उद्घाटन से उनमें वैराग्य वृत्ति जागी और उन्होंने सन्यास लेने पर विचार किया। किन्तु उनकी माता इसके लिए तैयार न थी। बालक शंकर ने इसके लिए एक युक्ति सोची। वे एक दिन पूर्णा नदी में नहाने उतरे और एक मगर ने उनका पैर पकड़ लिया। माता तट पर खड़ी थी। पुत्र के इस प्रकार की विपत्ति में जान बहुत बिव्हल हो उठी। तब बालक शंकर ने कहा मां यदि मुझे आप सन्यास लेने की आज्ञा दे दें तो यह मगर मुझे छोड़ देगा। अपने बालक की रक्षा हेतु माता ने यह वचन दे दिया और मगर अन्तर्धान हो गया। माता को खुशी और शोक दोनों हुए, प्रसन्नता इस बात कि बालक की जान बच गई और दु:ख इस बात का कि वह सन्यास लेकर चला जायेगा। माता को अधीर देख बालक शंकर ने कहा माता यद्यपि मैं सन्यास लेकर जा रहा हूँ लेकिन जब भी तुम मेरा चिंतन करोगी मैं बिना किसी अवरोध के तुरन्त तुम्हारे पास चला आऊंगा और तुम्हारी मृत्यु के समय मैं कहीं भी रहूं आपको मुखाग्नि देने अवश्य उपस्थित होऊंगा। इस वचन से माता को कुछ आश्वास मिला और बालक शंकर 8 वर्ष की अल्प आयु में सन्यास के निमित्त अपने गांव कालडी से चल पड़ा। सन्यास से पूर्व ही बालक शंकर चारों वेद और वेदांगों में पारंगत हो चुके थे।

सन्यास के पश्चात् वे गुरु की तलाश में उत्तर भारत की ओर चल पड़े। ओंकारेश्वर में नर्मदा तट पर श्री गोविन्द भगवत्पाद के समक्ष उपस्थित होकर उन्होंने प्रणत भाव से उन्हें अपना शिष्य बनाने हेतु निवेदन किया। मुख की आभा से ही अत्यन्त तेजस्वी और मेधावी बालक जान श्री गोविन्द भगवत्पाद ने तुरन्त इसकी स्वीकृति दे दी। श्री गोविन्द भगवत्पाद के शिष्यत्व में बालक शंकर ने न केवल पुरातन वाङ्मय का गंभीर अध्ययन किया अपितु अनेक विद्याओं पर भी अपना अधिकार प्राप्त किया। वे योग विद्या में भी पारंगत हो गये। एक बार उनके गुरु श्री गोविद भगवत्पाद समाधिष्ठ थे। उत्ताल तरंगों से युक्त नर्मदा तट का उल्लंघनकर तटवर्ती क्षेत्रों को जलमग्न करती हुई गुफा के द्वार तक आ गई। हाहाकार मचा। चतुर्दिक् प्रलयंकारी दृश्य था। गुरुमूर्ति गुरुभक्त शंकर ने एक अभिमन्त्रित घट में नर्मदा के अतिरिक्त जल को सन्निहित कर अद्भुत सिद्धि तथा गुरु भक्ति का परिचय दिया। जब श्री गोविन्द भगवत्पाद समाधि से उठे तब शिष्यों के मुख से नर्मदा जल के समाहार की पवित्र गाथा सुनकर शंकर की योगसिद्धि पर अत्यन्त मुदित हुए। पूज्य गुरु के सान्निध्य में यतिश्रेष्ठ शंकर ने श्री नर्मदा के तट पर सन्यासोत्तर चातुर्मास्यव्रत सम्पन्न किया।

पश्चात् समस्त वेद वेदांग, योग वैभव से सम्पन्न श्री शंकर ने उस समय के परम विद्या स्थान काशी की ओर प्रस्थान किया। काशी में यतीश्वर शंकर शिवाराधन में संलग्न वेद और शास्त्रों के परिशीलन तथा ब्राह्मण बटुकों को विद्या दान में निमग्न निवास कर रहे थे। एक दिन दक्षिण के चोल देश से पधारे ब्राह्मण बालक ने श्री शंकर के समक्ष शिष्यत्व की अभिलाषा से प्रणाम किया। सुपात्र जान श्री शंकर ने उसको अपना शिष्य बनाया, उसको सन्यास दीक्षा दी। शंकर ने अपने इस प्रथम शिष्य का नाम सनन्दन रखा। कालान्तर में वही श्री पद्म पाद के नाम से विख्यात हुए। काशी में श्री शंकर की ख्याति चारों ओर फैल गई। अनेक ब्राह्मण विद्वान उनसे उपनिषद विद्या प्राप्त करने के लिए आने लगे। एक बार जब श्री शंकर गंगा में स्नान करके अपने निवास पर जा रहे थे तब स्वयं भगवान विश्वनाथ उनकी परीक्षा लेने के लिए चाण्डाल वेश में उपस्थित हुए। चाण्डाल वेशधारी पुरुष को देखकर शंकर ने कहा 'अपसर अपसर' दूर हटो दूर हटो, इस पर चाण्डाल वेशधारी भगवान् विश्वनाथ ने मुस्कुराते हुए कहा क: अपसरतु (कौन दूर हटे)। यह देह जो अनित्य, अन्नमय, अपिवत्र है, वह तुम्हारी और मेरी एक जैसी ही है और यदि कहें कि आत्मा तो यह नित्य शुद्ध बुद्ध सभी प्राणियों में एक–सी है। अत: तुम किससे कह रहे हो कि दूर हटो।

शुचिर्द्विवजोऽहं श्वपच व्रजेति मिथ्याग्रहस्ते मुनिवर्य कोऽयम्।
सन्तं शरीरेष्वशरीरमेकमुपेक्ष्य पूर्ण पुरूषं पुराणम् ।।

हे मुनिवर। मैं पवित्र ब्राह्मण हूँ और तुम श्वपच (चाण्डाल) हो,

जब चुनाव आता है, तब हमारे नेताओं को गौमाता सपने में दर्शन देती है। कहती है, बेटा चुनाव आ रहा है अब मेरी रक्षा का आंदोलन करो।

इसलिए दूर हटो, आपका यह मिथ्या आग्रह कैसा है? सर्व शरीरों में सन्निहित एक पूर्ण अशरीर पुराण पुरुष की उपेक्षा करके ही यह कथन सम्भव है।

अचिन्त्य, अव्यक्त, अनन्त, आद्य और निरुपाधि आत्मस्वरूप को विमोहवश भूलकर गजकर्णतुल्य चंचल शरीर में आपकी अहन्ता क्यों है? निस्सन्देह यह ब्रह्मविद्या विमुक्ति में हेतु है. इसे प्राप्त कर भी लोकसंग्रह की तुच्छ इच्छा क्यों जग रही है? अहो! आश्चर्य है कि आप सरीखे महापुरूष भी उस महेन्द्र के इन्द्रजाल और माया जाल में निमग्न हो रहे हैं। इतना कहकर वह चाण्डाल मौन हो गया। शंकर ने सोचा इतना पारमार्थिक ज्ञान सम्पन्न व्यक्ति चाण्डाल नहीं हो सकता। हो न हो यह कोई दिव्य पुरुष है, जो मेरी भेद बुद्धि का उच्छेद करने के लिए चाण्डाल रूप में मेरे समक्ष उपस्थित हुआ है। वे इतना सोच ही रहे थे कि चाण्डाल रूप धारी व्यक्ति अपने चारों कुत्तों सहित अन्तर्धान हो गया और सामने साक्षात् चन्द्रशेखर भगवान विश्वनाथ प्रकट हो गये। भय, भक्ति, विनय, हर्ष और विस्मय के साथ आचार्य शंकर ने साष्टांग प्रणिपात करते हुए उनकी इस प्रकार स्तुति की–

दासस्तेऽहं देहदृष्ट्याऽस्मि शम्भो
जातस्तेंऽशो जीवदृष्ट्या त्रिदृष्टे ।।
सर्वस्याऽऽत्मन्नात्मदृष्ट्या त्वमेवे-
त्येवं मे धीर्निश्चिता सर्वशास्त्रैः ।।

(शंकरदिग्विजय 6.41)

हे शम्भो! देह दृष्टि से मैं आपका दास हूँ। हे त्रिलोचन ! जीवन दृष्टि से में आपका अंश हूँ। आत्म दृष्टि से विचार करने पर आप ही सबके आत्मस्वरूप हैं। अतः मैं आपसे अभिन्न ही हूँ। सर्व शास्त्रों के अनुशीलन से सुनिश्चित मेरी ऐसी मति है।

श्री शंकर की स्तुति से भगवान् विश्वनाथ प्रसन्न हो गये और उनकी निष्ठा को शुद्ध जाने उन्हें आशीर्वाद दिया तथा कहा कि ब्रह्मन् श्री वेद व्यास ने ब्रह्मसूत्र की रचना की है। उस पर अभी तक कोई प्रामाणिक भाष्य प्रस्तुत नहीं हुआ है। तुम वेदान्त वेत्ता हो। अतः सूत्रों का यथार्थ तात्पर्य व्यक्त करने वाला समस्त शंकाओं का निवारण करने वाला भाष्य लिखो। मेरा आशीर्वाद है तुम्हारा यह भाष्य समस्त विश्व में अज्ञान के अंधकार को दूर करने के लिए सूर्य सहस्र सिद्ध होगा। इस अनुग्रहपूर्ण आदेश और संदेश को अपने ही अंशभूत शंकर को प्रदान कर आशुतोष शिवशंकर चारों वेदों सहित अन्तर्धान हो गये। अनन्तर यतिश्रेष्ठ श्री शंकर भगवान् विश्वनाथ की आज्ञा के अनुरूप ब्रह्मसूत्र का भाष्य लिखने में संलग्न हो गये। भाष्य के पूर्ण होने पर एक ब्राह्मण ने गंगा तट पर इस भाष्य के संबंध में श्री शंकर से शास्त्रार्थ किया। यह शास्त्रार्थ आठ दिन तक चला। इस अत्यन्त प्रत्युत्पन्नमति ब्राह्मण के शास्त्रार्थ से श्री शंकर बहुत विस्मित हुए और उन्होंने ब्राह्मण से कहा भगवन् आप एक साधारण ब्राह्मण नहीं हो सकते। मुझ पर कृपा करें और अपने वास्तविक स्वरूप में प्रकट हों। तब स्वयं भगवान् वेद व्यास श्री शंकर के सामने प्रकट हुए। श्री शंकर के भाष्य पर भगवान वेद व्यास ने उन्हें आशीर्वाद दिया और ब्रह्मा की नियति के अनुसार श्री शंकर की आयु केवल 16 वर्ष थी, उसे बढ़ाकर भगवान वेद व्यास ने 32 कर दिया ताकि वे इस पृथ्वी पर समस्त उपनिषदों आदि का भाष्य लिखकर, पृथ्वी से अनार्य दर्शनों का निराकरण भारतभूमि पर पुनः सनातन धर्म की प्रतिष्ठा कर सकें।

भगवान बादरायण का आशीर्वाद प्राप्त कर श्री शंकर उत्तर में शारदा देश काश्मीर की ओर चल पड़े। वहां पर मां शारदा के मन्दिर में अपने भाष्य को प्रमाणित कराया और काश्मीर के विद्वानों ने शास्त्रार्थ कर शीघ्र ही वे बदरिकाश्रम की ओर आ गये।

बदरिकाश्रम में रहकर 12 वर्ष से 15 वर्ष की अवस्था के बीच उन्होंने ईश–केन–कठ–प्रश्न–मुण्डक माण्डूक्य तैत्तिरीय ऐतरेय छान्दोग्य बृहदारण्यक–

नृसिंहपूर्वतापनीय नामक उपनिषदों पर तद्वत् श्रीमद्भगवतगीता भाष्य लिखकर प्रपंचसार सौन्दर्यलहरी जैसे तन्त्र ग्रन्थों एवम् अपरोक्षानुभूति, विवेकचूडामणि आदि प्रकरण ग्रन्थों की एवम् विविध स्तोत्र ग्रन्थों की संरचना कर वैदिक वाङ्मय को समृद्ध किया।

कुछ दिन बदरिकाश्रम रहकर वहां से वे प्रयाग आये। प्रयागराज में उनकी भेंट प्रसिद्ध मीमांसक कुमारिल भट्ट से हुई। कुमारिल उस समय गुरु की अवमानना तथा वेदों पर संदेह के पश्चाताप स्वरूप तुषाग्नि में प्रवेश कर जलने को उद्यत् थे। श्री कुमारिल ने उस अवस्था में अत्यन्त दीप्त मुख मण्डल से युक्त आचार्य शंकर को देखा। आचार्य शंकर से वार्तालाप के बाद कुमारिल आश्वस्त हो गये कि अद्वैत वेदान्त का सम्यक् प्रतिपादन आचार्य शंकर ही कर सकते हैं। इसलिए उन्होंने आचार्य शंकर से निवेदन किया कि उनके शिष्य परम मीमांसक मण्डन मिश्र से जाकर शास्त्रार्थ करें ताकि पूर्व पक्ष का सांगोपांग निदर्शन होकर अद्वैत मत की स्थापना की जा सके। यद्यपि श्री शंकर ने श्री कुमारिल को जीवित रखने का आशीर्वाद देना चाहा था लेकिन कुमारिल ने इसे स्वीकार नहीं किया। भट्ट पाद को ब्रह्म का उपदेश देकर उन्हें मोहमुक्त प्रकाश स्वरूप वैष्णवपद प्रदान कर लोकमंगल निमित्त आचार्य शंकर आकाश मार्ग से मण्डन के घर जाने के लिए उद्यत हुए।

आचार्य शंकर आकाश मार्ग से सुरम्य नर्मदा के तट पर माहिष्मती पहुंचे। भव्य नगरी की शोभा देखकर वे बहुत प्रमुदित हुए। उन्हें मण्डन मिश्र के घर का पता नहीं था, अतः जल ले जाने वाली मण्डन मिश्र की दासियों से उन्होंने मण्डन मिश्र के घर का पता पूछा। इस पर दासियों ने जो उत्तर दिया, वह भारतवर्ष की विदग्ध परम्परा का अद्भुत उदाहरण है।

स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तरसन्निरूद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः ।।
फलप्रदं कर्मफलप्रदोऽज कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तरसन्निरूद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः ।।

गिरने के बड़े फायदे हैं। पतन से न मोच आती, न फ्रैक्चर होता। कितने ही लोग मैंने कितने ही क्षेत्रों में देखे हैं, जो मौका देखकर एकदम आड़े हो जाते हैं। न उन्हें मोच आती, न उनकी हड्डी टूटती। सिर्फ़ धूल लग जाती है, पर यह धूल कपड़ों में लगती है, आत्मा में नहीं।

जगद् ध्रुवं स्याज्जगदध्रुवं स्यात् कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तरसन्निरूद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः ।।

जिस द्वार पर पिंजड़े टंगे हुए हों और उसके भीतर बैठी हुई मैना वेदवाक्य स्वत: प्रमाण है या परत: प्रमाण हैं, कर्मफल देने वाला कर्म है या ईश्वर है तथा तगत् ध्रुव है या अध्रुव है, ऐसी बातें कर रही हो, उसे ही आप मण्डन पण्डित का घर जानिये।

वस्तुत: यही पूर्व मीमांसा का पक्ष है वेद स्वत: प्रमाण हैं, किसी और प्रमाण की अपेक्षा नहीं रखते, कर्मफल देने वाला स्वयं कर्म ही है, न कि ईश्वर और यह संसार सदा से ऐसा ही चला आ रहा है। इसको किसी ने नहीं बनाया। जिस समय आचार्य शंकर मण्डन मिश्र के घर पहुंचे, वह श्राद्ध का समय था। अत: आचार्य मण्डन मिश्र अपना मुख्य द्वार बंद करके श्राद्ध कर्म में निरत थे। आचार्य शंकर ने बंद द्वार देखकर आकाश मार्ग से ही मण्डन मिश्र के घर में प्रवेश किया तथा अंदर ज्ञान और ऐश्वर्य से उदीप्त मुख मण्डल वाले मण्डन मिश्र का दर्शन किया। ग्रहस्थोचित श्राद्ध कर्म में किसी सन्यासी का आना अमंगल सूचक माना जाता है। अत: आचार्य शंकर को देखकर आचार्य मण्डन मिश्र कुद्ध हो गये और उन्होंने उनसे पूछ लिया कुतो मुण्डी ? अर्थात् मुण्डी सन्यासी तुम कहां से आये हो? आचार्य शंकर ने शब्दों से खेलते हुए उत्तर दिया आगलान्मुण्डी। मैं गले तक मुण्डित हूँ। इस प्रकार कुछ समय तक वाक्चातुरी से दोनों का संवाद चलता रहा। आचार्य शंकर सन्यास के पक्ष में अपना मत देते रहे और आचार्य मिश्र गृहस्थ धर्म के पक्ष में तथा कर्म के पक्ष में अपनी बात कहते रहे। आचार्य मिश्र जहां गृहस्थ के लिए स्त्री की प्रशंसा करते रहे, वहीं आचार्य शंकर गृहस्थों को स्त्रियों का शोषक कहते रहे। इस प्रकार के वार्तालाप के पश्चात् श्राद्धकर्म के निमित्त आचार्य मिश्र के तपोबल से सशरीर उपस्थित भगवान वेदव्यास ने आचार्य मिश्र से कहा कि ये यतिवर साक्षात् सदाशिव के अंश है. इनके साथ आदर पूर्वक संवाद करो। ये तिरस्कार के पात्र नहीं है। तब आचार्य शंकर ने कहा कि मुझे भट्टपाद कुमारिल ने आपके पास शास्त्रार्थ के लिए भेजा है। आपके पास मेरे आने का यही प्रयोजन है। शास्त्रार्थ में पराजित शिष्यत्व को स्वीकार करेगा, ऐसी प्रतीज्ञा भी अपेक्षित है। आचार्य मण्डन मिश्र इसके लिए तैयार हो गये। जब प्रश्न यह उठा कि दोनों के बीच निर्णायक का काम कौन करेगा, तो यह निश्चय किया गया कि मण्डन मिश्र की धर्मपत्नी महाविदुषी उभयभारती इस शास्त्रार्थ की निर्णायक होगी। विश्व का यह अद्भुत शास्त्रार्थ है, जहां निर्णेता की भूमिका में एक विदुषी स्त्री है। यह इस बात का भी द्योतक है कि ई.पू. 5वीं-6ठीं शताब्दी में भी भारत में स्त्री की कितनी गरिमा थी कि उस समय के मूर्धन्य तत्यवेत्ता आचार्य शंकर और आचार्य मण्डन मिश्र के बीच हुए शास्त्रार्थ की यह निर्णायक बनीं। जैसा कि अपेक्षित था आचार्य मण्डन मिश्र और आचार्य शंकर के बीच में शास्त्रार्थ प्रारंभ हुआ। उभयभारती दोनों को प्रतिदिन एक-एक माला पहना देती थी और उनका यह निष्कर्ष था कि जिसकी माला कुम्हला जायेगी, वही पराजित माना जायेगा। दोनों उस युग के पूर्व मीमांसा तथा वेदान्त के अप्रतिम विद्वान् थे। एक कर्म के पक्ष में अपना तर्क रखते तो दूसरे ईश्वर के पक्ष में अपना प्रमाण रखते। उनके बीच यह शास्त्रार्थ 03 महिने 17 दिन तक चला तथा उभयभारती ने इस शास्त्रार्थ में अपने पति मण्डन मिश्र को पराजित घोषित किया। पति को पराजित जान उभयभारती ने यह सोचकर कि ये सन्यासी है, स्त्रियों के प्रति कामकला संबंधी इनको कोई ज्ञान नहीं होगा, अत: कामकला संबंधी प्रश्न शंकर से किया। आचार्य शंकर ने इस हेतु कुछ समय मांगा और एक राजा के शरीर में प्रवेश कर सारी कामकला को सीखा। वे 06 महिने 20 दिन तक परकाया में रहे। पुन: अपने शरीर में प्रवेश कर उन्होंने उभयभारती को भी शास्त्रार्थ में पराजित किया। अपनी पराजय के बाद आचार्य मण्डन मिश्र ने आचार्य शंकर का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया और वे सन्यासी हो गये। बाद में वे ही सुरेश्वचार्य कहलाये। सपत्नीक मण्डन पर विजय प्राप्त करके आचार्य शंकर महाराष्ट्र गये और वहां शैवों और कापालिकों को परास्त किया। वहां से चलकर दक्षिण में तुंगभद्रा के तट पर उन्होंने एक मंदिर बनवाकर उसमें काश्मीर की शारदा देवी की स्थापना की। उसके लिए यहां जो मठ स्थापित किया उसे श्रृंगगिरी (श्रृंगेरी) मठ कहते हैं। इस मठ के अध्यक्ष आचार्य सुरेश्वर (मण्डन मिश्र) बनाये गये। वहां उन्हें अपनी माता की मृत्यु का समाचार प्राप्त हुआ और वे मां की अंत्येष्टि क्रिया के निमित्त अपने घर कालड़ी आये तथा विधिवत् माता की अंत्येष्टि क्रिया सम्पन्न की। यहां से वे पूर्व की ओर जगन्नाथपुरी पहुंचे और वहां जाकर गोवर्धन मठ की स्थापना की तथा अपने शिष्य पद्मपादाचार्य को वहां का मठाधीश बनाया। पुरी के पश्चात् फिर वे दक्षिण की ओर मुड़े और वहां पर शाक्त, गाणपत्य और कापालिक सम्प्रदायों के अनाचार को नष्ट किया। जिस प्रकार वे उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम जाते थे, उससे स्पष्ट है कि यह यात्रा आकाश मार्ग के अतिरिक्त संभव नहीं है और योग बल से आचार्य शंकर ने ये सभी यात्राऐं कीं। दक्षिण में पूर्ण विजय के बाद वे फिर उत्तर की ओर मुड़े और गुजरात जाकर द्वारकापुरी में शारदा मठ की स्थापना की। अभी घुरपूर्व असम देश बचा हुआ था, जहां तांत्रिकों ने अनाचार मचा रखा था। इसलिए आचार्य शंकर असम के कामरूप गये और तांत्रिकों से शास्त्रार्थ कर उन्हें पराजित किया। वहां से पुन: बदरिकाश्रम जाकर ज्योर्तिमठ की स्थापना की और त्रोटकाचार्य को मठाधीश बनाया। अपने अन्तिम दिनों में वे केदार क्षेत्र आ गये और वहां पर कुछ दिनों की साधना के बाद भारत का यह दीप्तिमान सूर्य ब्रह्मलीन हो गया। कुल 32 वर्ष की अवस्था में आचार्य शंकर ने संपूर्ण भारतवर्ष में वैचारिक दिग्विजय की और वेदान्त विपरीत एवं ईश्वर का निराकरण करने वाले सभी मतों को परास्त कर वैदिक धर्म और अद्वैत वेदान्त की पुन:स्थापना की। भारतवर्ष में ज्ञान की यह परम्परा विच्छिन्न न होने पाये इसके निमित्त भारतवर्ष के चारों कोनों में पूर्व में गोवर्धन मठ, पश्चिम में शारदा मठ, उत्तर में ज्योर्तिमत और दक्षिण में श्रृंगेरी मठ की स्थापना की और अपने एक-एक शिष्य को इन मठों का मठाधीश बनाया जो सभी शंकराचार्य कहलाये। चारों मठों की यह शंकराचार्य परम्परा आज भी भारतवर्ष में विद्यमान है।

निष्क्रिय ईमानदार और सक्रिय बेईमान मिलकर एक षड्यंत्र-सा बना लेते हैं।

जिस समय आचार्य शंकर का आविर्भाव हुआ, उस समय भारतवर्ष में चिंतन परम्परा इस प्रकार की हो गई थी कि मूल वैदिक दर्शन जो उपनिषदों से हमें प्राप्त था, वह लुप्त प्राय हो गया था और अनेक आचार्यों ने उसकी मनमानी व्याख्या करके अपने-अपने मत स्थापित कर दिये थे जिसमें प्रायः जगत् को अनीश्वर कहा गया इसके कारण समाज के ताने-बाने में भी उच्छृंखलता आ गई थी। नास्तिक दर्शनों अर्थात् बौद्ध, जैन, चार्वाक और तार्किकों की बात कौन कहे आस्तिक दर्शनों में भी ईश्वर के अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया गया था। आस्तिक दर्शनों में वैशेषिक, सांख्य और पूर्व मीमांसा दर्शनों में तो स्पष्ट रूप से ईश्वर की सत्ता है ही नहीं। योग दर्शन विकल्प से ही ईश्वर को मानता है और ईश्वर को **काय: क्लेश कषायैरपरामृष्टः पुरुषविशेषः ईश्वरः** ऐसा कहा गया है। अर्थात् अनेक पुरुषों में से जिसे कर्मविपाकजन्य काय क्लेश नहीं होता. वह पुरुष विशेष ईश्वर है वह जगत् का नियन्ता या निर्माता नहीं है। न्याय दर्शन ने ईश्वर की सत्ता को तो स्वीकारा है किंतु ईश्वर उसमें जगत् का निमित्त कारण ही है। उपादान कारण परमाणु है। यद्यपि न्याय दर्शन में ईश्वर की स्थापना थी किंतु वह भी अनेक प्रश्न छोड़ जाता है. वह इसलिये कि आखिर परमाणुओं की उत्पत्ति कहां से हुई। ईश्वर परमाणुओं से जगत् की उत्पत्ति कब और क्यों करता है, इत्यादि। बौद्ध शून्य वादी थे तथा पूर्व मीमांसा में ये कहा ही गया था कि कर्म का फल कर्म से ही मिलता है, उसमें ईश्वर का अस्तित्व अनावश्यक है। यह उसी तरह से है जिस प्रकार नोबेल वैज्ञानिक स्टीफन हकिंस ने माना है कि यह ब्रह्माण्ड क्रिया और प्रतिक्रिया से अपने आप निर्मित होता है और फिर अपने आप ही इसका विघटन होता है। इसके लिये किसी ईश्वर की सत्ता को मानने की आवश्यकता नहीं है। इस वैज्ञानिक सिद्धांत पर भी यह प्रश्न उठता है कि इस ब्रह्माण्ड में किसी प्रकार का क्रम है या यह एक क्रमहीन अराजक सत्ता है और यदि क्रम है तो इसका कारक कोई न कोई अवश्य होना चाहिये। क्वांटम भौतिक शास्त्र के अधुनातन शोधों से यह स्पष्ट हो जाता है कि परमाणुओं में भी यदृच्छा है। इसका अर्थ हुआ कि कोई चेतन सत्ता इसके पीछे है। इन समस्त प्रश्नों का उत्तर आचार्य शंकर ने अपने अद्वैत वेदान्त की व्याख्या से दिया। उनका मुख्य मन्तव्य यह है कि विश्व में ब्रह्म नाम की एक ही सत्ता है। विभिन्न प्राणियों में उसी का अंश है। जैसे घट और मठ में जो आकाश होता है वह महाकाश का ही अंश है। घट और मठ की दीवारें टूटने पर उनका जो परिच्छिन्न आकाश है और वह महाकाश में मिल जाता है। ईश्वर जो ब्रह्म का ही एक माया सम्पृक्त स्वरूप है, वह इस जगत् का अभिन्न निमित्त तथा उपादान दोनों ही कारण है। दृष्टान्त के लिए यह बताया गया कि जिस प्रकार मकड़ी जाले का निमित्त और उपादान दोनों कारण है उसी प्रकार ब्रह्म या ईश्वर भी इस जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। अब प्रश्न यह उठता है कि ईश्वर इस जगत् को बनाता कैसे है तो इस पर आचार्य शंकर का उत्तर है कि जगत् ईश्वर बनाता नहीं है यह ईश्वर का विवर्त है अर्थात् जिस प्रकार अंधेरे में रस्सी में सांप दिखता है या रेत में पानी दिखता है उसी प्रकार इस जगत् का आभास होता है, यह जगत् वास्तविक या पारमार्थिक सत्ता नहीं है। पारमार्थिक सत्ता एकमात्र ब्रह्म ही है। उन्होंने स्वयं ही अपने दर्शन के बारे में कहा है

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थ कोटिभिः
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः

जो बात करोड़ो ग्रन्थों में कही गई है, मैं आधे श्लोक में कहे देता हूँ, केवल ब्रहा सत्य है, यह सम्पूर्ण जगत् मिथ्या अर्थात् केवल आभासीय है तथा जीव ब्रह्म ही है, उससे भिन्न नहीं।

जिस प्रकार समुद्र की तरंगे समुद्र ही हैं, उससे भिन्न नहीं है और इसी प्रकार समस्त प्राणी ब्रह्म ही है उससे भिन्न नहीं। जब तक प्राणियों में या तरंगों में यह भाव रहता है कि मैं प्राणी हूँ या तरंग हूँ तब तक वे प्राणी या तरंग हैं किंतु जब उनके समझ में आ जाता है कि तरंग होते हुए भी मैं तो समुद्र ही हूँ तो फिर वे समुद्र ही हो जाते हैं। जिस प्रकार समुद्र और तरंग अभिन्न हैं, उसी प्रकार जीव और ब्रह्म अभिन्न हैं। इसी को उन्होंने अद्वैत दर्शन कहा है। अद्वैत अपने आप में एक अद्भुत शब्द है दो नहीं। इसका अर्थ हुआ कि दो दिखते हैं, पर है नहीं और इसलिये एकत्व नहीं कहा अद्वैत कहा। जैसे सूर्य और उसकी प्रभा, शक्ति और शक्तिमान् दो दिखते तो हैं पर हैं नहीं।

इस पर यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि आखिर नामरूपात्मक इन्द्रियगोचर यह जगत् तो है जो दिखाई दे रहा है, जिसका हम स्पर्श कर सकते हैं, उसको मिथ्या या असत् कैसे मान लिया जाये। उस पर आचार्य शंकर ने सत्य के तीन स्तर बताये हैं।

एक-पारमार्थिक सत्य अर्थात् जो त्रिकाल अबाधित है, कभी नष्ट नहीं होता, ऐसा पारमार्थिक सत्य केवल ब्रह्म है दूसरा कोई नहीं।

दो - व्यावहारिक सत्य अर्थात् जो नामरूपात्मक जगत् इन्द्रियगोचर है. यह व्यावहारिक सत्य है, उसे मिथ्या इसलिये कहा गया है कि वह नष्ट भी होता है त्रिकाला बाधित नहीं है. ब्रह्मा की भी मृत्यु होती है, इसलिये वह पारमार्थिक सत्य नहीं है।

तीसरा - प्रातिभासिक सत्य, यह वह सत्य है जिसका हमें आभास होता है, आनासकाल में वह सत्य ही है। जैसे स्वप्न में हमें जो जगत् दिखाई देता है. वह प्रातिभासिक सत्य है। या कि अंधेरे में जब हमें रस्सी में सांप दिखता है तो वह सांप प्रातिभासिक सत्य है, क्योंकि उस सांप को देखकर हमारे मन और शरीर में वे ही प्रतिक्रियाएँ होती है जो एक वास्तविक सांप को देखकर होती है।

सत्य के इन तीन स्तरों को समझ लेने पर ब्रह्म और सत्य के संबंध में कोई जिज्ञासा नहीं रह जाती। किसी भी दर्शन की यात्रा स्थूल से सूक्ष्म की ओर होती है और सच्चा दर्शन वही है जो कोई प्रश्न नहीं छोड़ता। आचार्य शंकर के अद्वैत दर्शन को इसलिये पूर्ण दर्शन माना गया कि इसमें हम सत्य के सूक्ष्मतम स्तर तक पहुंच जाते हैं और किसी प्रश्न का कोई अवकाश नहीं रहता। यह सारा ब्रह्माण्ड, यह नाम रूपात्मक दृश्य जगत् परब्रह्म का ही विवर्त है। ब्रहा जब सृष्टि के क्रम में माया का सहारा लेता है तो

जिन्हें पसीना सिर्फ गर्मी और भय से आता है, वे श्रम के पसीने से बहुत डरते हैं।

इस मायोपहित ब्रह्म को ईश्वर कहा जाता है। इसी समष्टि का जो व्यष्टि स्वरूप है जब वह अविद्या से सम्पृक्त होता है तो अविद्योपहित व्यष्टिचैतन्य जीव कहलाता है। इस सृष्टि की रचना के लिए ईश्वर दो शक्तियों का उपयोग करता है. एक आवरण और दूसरी विक्षेप। जिस प्रकार रस्सी में सांप दिखने के लिए पहले अंधेरे का आवरण आवश्यक है और फिर उसके आकार को ध्यान में रखकर मस्तिष्क उसमें सर्प का विक्षेप करता है। उसी प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति होती है। इसका क्रम इस प्रकार है–

तम:प्रधान, विक्षेपशक्ति से युक्त, अज्ञानोपहित चैतन्य से सूक्ष्म तन्मात्ररूप आकाश की उत्पत्ति हुई, आकाश से वायु की, वायु से अग्नि की, अग्नि से जल की और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। इन सूक्ष्म भूतों से सत्रह अवयव वाले (पंच कर्मेन्द्रिय, पंच ज्ञानेन्द्रिय, वायुपंचक और बुद्धि मन) सूक्ष्म शरीरों की और स्थूल भूतों की उत्पत्ति होती है। स्थूलभूत पंचीकृत होते हैं, अर्थात् प्रत्येक भूत में अपना अंश आधा होता है और अन्य चारों भूतों के अष्टम अंशों को मिला कर आधा होता है, जैसे आकाश 1/2 आकाश 1/8 पृथ्वी + 1/8 जल + 1/8 तेज + 1/8 वायु। प्रत्येक स्थूल भूत पंचभूतात्मक होता है (इसका नाम पंचीकरण है।)

अद्वैत वेदान्त के संबंध में तीन और ऐसे शब्द हैं, जिनकी व्याख्या अपेक्षित है। माया या अनिर्वचनीयतावाद्, विवर्त तथा अभ्यास। आचार्य जिसे माया कहते हैं उसके लिये कहा गया है कि वह सत्, असत्, अनिर्वचनीय है अर्थात् उसे हम न सत् कह सकते हैं और न असत् कह सकते हैं. वह अनिर्वचनीय है। जैसे रस्सी में सांप उसे सत् नहीं कहा जा सकता किंतु असत् भी नहीं कह सकते, क्योंकि उसकी प्रतिक्रिया मनुष्य में सांप के दर्शन जैसी ही होती है, इसलिये उसे अनिर्वचनीय कहा गया है। विवर्त कार्य कारण के संदर्भ में है। परिणामवादी कार्यभूत द्रव्य को कारण से अभिन्न और साथ ही भिन्न भी स्वीकार करते हैं परंतु ये युक्तियुक्त नहीं है। घट आदि मिट्टी के बर्तन मृत्तिका से अभिन्न हैं परन्तु प्रश्न यह है कि अभिन्न होते हुए भी इनमें पारस्परिक भेद कहां से आया ? यदि इनमें पारस्परिक भिन्नता प्रत्यक्ष है तो मृत्तिका भी परस्पर भिन्न हुए बिना नहीं रह सकती। इस प्रकार कार्य कारण में एक साथ ही भेद तथा अभेद कैसे माने जा सकते हैं ? एक ही सत्य होगा और दूसरा कल्पित। अभेद (या एक) का परमार्थ सत् होना उचित है और भेद (या नाना) को कल्पित मानना ठीक है। ऐसा न करने पर असंख्य परमार्थ वस्तुओं की सत्ता स्वकार करनी पड़ेगी। अत: वेदान्त के अनुसार एकमात्र कारण सत्ता अविनाशी एवं निर्विकार है, तथा उसमें कल्पित होने वाला नानात्मक प्रपंच केवल कल्पनामूलक है अनिर्वचनीय है। इस तरह एकमात्र स्वप्रकाश अखण्ड चैतन्य सत्ता के अतिरिक्त कार्यभूत जगत् प्रातिभासिक है। अत: कारण ही एकमात्र सत्य है तथा कार्य मिथ्या या अनिर्वचनीय है। जगत् माया का तो परिणाम है. पर ब्रह्म का विवर्त है। कार्य के अनिर्वचनीयवाद की पारिभाषिकी संज्ञा विवर्त है। परिणाम तथा विवर्त का भेद वेदान्तसार में इस प्रकार बतलाया गया है तात्विक परिवर्तन के विकर तथा अतात्विक परिवर्तन को विवर्त कहते हैं। दही दूध का विकार है, परन्तु सर्प रज्जु का विवर्त है, क्योंकि दूध और दही की सत्ता एक प्रकार की है। और रज्जु तथा सर्प की सत्ता भिन्न प्रकार की है। सर्प की सत्ता काल्पनिक है परन्तु रज्जु की सत्ता वास्तविक है।

अब विचारणीय प्रश्न है कि जब आत्मा स्वभाव से ही नित्यमुक्त है तो वह संसार में बद्ध क्योंकर दृष्टिगोचर हो रहा है? निरतिशय आनन्दरूप आत्मा इस प्रपंच के पचड़े में पड़कर विषम दु:खों के झेलने का उद्योग क्यों करता है? इसका एकमात्र उत्तर है 'अध्यास' के कारण। अध्यास कौन–सी वस्तु है? शारीरकभाष्य के उपोद्घात में आचार्य ने अध्यास के स्वरूप का निर्णय बड़ी ही सरल सुबोध भाषा में किया है। आचार्य के शब्दों में अध्यासो नाम अतस्मिन् तद्बुद्धि: तत्पदार्थ में अतद् (तद्भिन्न) पदार्थ के स्वरूप का आरोप करना 'अध्यास' कहलाता है।

जीव अपने स्वरूप के अज्ञान के ही कारण इस संसार में अनन्त क्लेशों को भोगता हुआ अपना जीवन यापन करता है। वह अपने शुद्ध–बुद्ध मुक्त स्वभाव को अविद्या के कारण भूला हुआ है। वह वास्तव में सच्चिदानन्दात्मक ब्रह्मस्वरूप ही है। आत्मा तथा ब्रह्म में नितान्त ऐक्य है। नानात्व ज्ञान से ही संसार है, तथा एकत्व ज्ञान से ही मुक्ति है। आनन्दरूप ब्रह्म की प्राप्ति तथा शोकनिवृत्ति मोक्ष कहलाता है।

यही अद्वैत वेदान्त का परम निष्कर्ष है। परन्तु अभेद होते हुए भी आचार्य शंकर ने ईश्वर और जीव में स्वामी और सेवक का भेद रखा –

सत्यपि भेदा पगमे, नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्
सामुद्रोहि तरंग: न हि क्वचिदपि तारङ्ग: समुद्र:

यद्यपि अभेद है पर प्रभु मैं आपका हूँ, आप मेरे नहीं। लोग समुद्र की तरंग कहते हैं तरंगों का समुद्र नहीं। इसी कारण उन्होंने कई स्तोत्र लिखे। यही दृष्टि परवर्ती पांचरात्र उपासना या स्मार्त पंचदेवोपासना की नींव है जो विभिन्न सम्प्रदायों के समन्वय का हेतु है।

आज लगभग ढाई हजार वर्षों से आचार्य शंकर का यह अद्वैत दर्शन चिन्तन परम्परा का चरम निष्कर्ष है जिसे अब वैज्ञानिक भी स्वीकार करने लगे हैं। इसी में उनके ब्रह्माण्ड सम्बन्धी सारे प्रश्नों का समाधान है। अत: अब यह दर्शन वैश्विक चिन्तन का भी आधारभूत दर्शन बन गया है। भाषा के क्षेत्र में जो कार्य महर्षि पाणिनि ने किया है, दर्शन के क्षेत्र में वही कार्य आचार्य शंकर का है। परवर्ती आचार्यों रामानुज, वल्लभ, निम्बार्क, चैतन्य महाप्रभु आदि के सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत, द्वैत आदि इसी दर्शन की भिन्न भिन्न विच्छित्तियां हैं।

दो सहस्राब्दियों से अधिक समय तक अनवरत जगमगाते हुए इस ज्ञान भास्कर भगवत्पाद आदि शंकर को उन्हीं के द्वारा दिये गये कुछ शब्दों का अर्द्धय देकर हम कृतार्थ अनुभव करते हैं।

लेखक – पूर्व कुलपति महर्षि पाणिनी संस्कृत एवं वैदिक वि.वि. उज्जैन हैं।
संपर्क : 132, महाश्वेता नगर उज्जैन 456010 (म.प्र.)
दूरभाष : 0734-4040568, मोबा. 9407140010

■

जब शर्म की बात गर्व की बात बन जाए, तब समझो कि जनतंत्र बढ़िया चल रहा है।

रूपों के संबंधों की खोज करती : डॉ काले की कृतियां

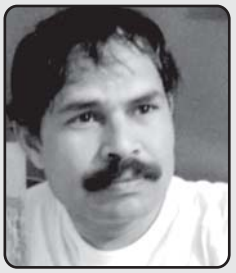

चेतन औदिच्य

आलोचना सर्जना का –पक्ष ही नहीं, विपक्ष भी है । ऐसे में कहना पड़ रहा है कि चित्रों की बाढ़ आई हुई है, अच्छी बात है। किंतु मायूसी है कि उनमें से अधिकांश कृतियां सु-चिन्त्य नहीं है। ना ही किसी गहरे बोध से प्रकट हो रही हैं, और ना ही उनमें कोई ऐसा संवेदन तत्व है जो हृदय को स्पंदित कर सके । अमूर्त चित्रण की फैशनेबल और सतही परिपाटी में हरकोई चित्रकार का टैग टांगें घूम रहा है। जब इतना सतही दौर हो तो ऐसे में गंभीर कलाकारों पर बात करना अधिक जरूरी हो जाता है।

डॉ. चंद्रशेखर काले ऐसे ही गहरे बोध और कला के वैश्विक संस्कारों से संपन्न कलाकार हैं। आधी शताब्दी से भी अधिक समय से वे कलाजगत के सक्रिय भागीदार हैं। कला के भिन्न-भिन्न आयामों पर उनका काम रहा है। उल्लेखनीय तो यह है कि वे पिछले छब्बीस सालों से कनिष्ठ और वरिष्ठ कलाकारों के बीच एक विहंगम सेतु का काम करते रहे हैं, करते ही जा रहे हैं । कालिदास की धरती पर रंग-छटा बिखेरने का उनका कला-प्रयास ठोस रूप में दर्ज़ करने योग्य है। वे कला-शिविर के माध्यम से प्रतिवर्ष देश-विदेश के सैंकड़ों कलाकारों को एक साथ काम करने अवसर प्रदान करते रहे हैं । कलावर्त न्यास का यह अनूठा उपक्रम है, जिसमें विभिन्न स्थानों से आए कलाकार जीवंत कृतियों से ही रू-ब-रू नहीं होते अपितु अपने हृदय के भावों को साक्षात् साझा करते हैं।

डॉ काले का कलाकर्म मूर्त अमूर्त के बीच आवाजाही करते ऐसे परिंदे की तरह है जो रिक्त आकाश में अवकाश रचता है और छल -छल करती जल-संधि में स्वच्छंद आवाजाही करता मूर्त होता है। उनके चित्रों का 'रूप' मूर्त-अमूर्त को छलांग कर, अपने ही मौलिक स्वरूप में प्रकट होता है। यह रूप-रचाव दृष्टा को छवि के माध्यम से दिया गया स्वातंत्र्य है। इसकी निपज एक लंबे रियाज़ के बाद आती है। कहां जाए कि अनेक उठापटक और आंतरिक घर्षण के बाद इसका प्राकट्य होता है। डॉ काले की प्रकट कृतियां इसी का उत्कृष्ट उदाहरण हैं। उनकी कला वस्तुनिष्ठ होते हुए भी वस्तुनिष्ठता से मुक्त हैं। प्रतीकात्मक रूप से अपनी बात कहने वाली तथा अर्थ की बहुलता लिए है। वस्तुत: काज़िविर मोलेविच,वासिली कैंडेस्की या पिट मोंड्रियन जैसे अमूर्त कला के अग्रणी कलाकारों ने जो नियामक बिंदु सामने रखे वे सब इनके चित्रों में अंकित हुए।

वैचारिक तल पर डॉ. काले मोलेविच के अधिक निकट जान पड़ते हैं। उस समय के रूस और आज के यूक्रेन के शहर कीव में जन्मे मोलेविच अमूर्त चित्रकार थे । जिन्होंने सुप्रीमेटिज़्म (सर्वोच्चतावाद) नाम का कलात्मक और दार्शनिक आंदोलन चलाया था । जिसमें रंग बिछाने , बनावट पर केंद्रित होने और रूपों की महत्ता पर ज़ोर दिया था । मोलेविच का कहना था कि

रंग और बनावट, चित्रकला के सार हैं।

पेंटिंग में विषय, उसके रंग और बनावट को अलग-अलग रखा जाना चाहिए ।

कलाकार द्वारा आकारों को अलग-अलग तरीके से हासिल किया जा सकता है तथा रंगों के इस्तेमाल से मनुष्य की पहुंच से बाहर के अंतरिक्ष या ब्रह्मांड की भौतिकी को दिखाया जा सकता है। कला जगत के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण कथन है। अपने इस कथन में वे जो कह रहे हैं वह हमें डॉ. काले के चित्रों में स्पष्टत: दिखाई देता है। असल बात यहां वस्तुओं (रूपों)को वस्तुओं (रूपों)के संदर्भों से मुक्त करने की है । जब कलाकार द्वारा वस्तु (रूप) को रखा जाए तो वह रूप 'स्व' हो । अपने स्वतंत्र अस्तित्व में वह 'स्व' केवल वही हो जो वह सृजित रूप में आया है। ना कि उससे जुड़े संदर्भ सहित कोई ज्ञात वस्तु । डॉ काले की कृतियां वही 'स्व' वस्तु हैं। उनके चित्रों के लिए एक पंक्ति में कहा जाए तो वे 'रूपों के संबंधों की खोज करती' ऐसी कृतियां हैं जो दृष्टा को अबूझ अवकाश में अवधूत की भभूत की तरह अपने में लिपटा ले जाती हैं। जिनका सौंदर्य अर्थ से निरपेक्ष, अपने आप में पूर्ण और परिपक्व है।

उनके चित्र आत्मा की आंतरिक आवश्यकता और अभीप्सा की अभिव्यक्ति करते हैं । वे सीधे आत्मा पर प्रभाव डालते हैं और रंगों-

इस देश के बुद्धिजीवी शेर हैं पर वे सियारों की बारात में बैंड बजाते हैं।

रूपों के माध्यम से भावना और आत्मा में जैसे किसी जागरण की दीप्ति प्रभासित करते हैं। वे केवल वही नहीं दिखाते जो हम देखते हैं, बल्कि वह भी उत्पन्न करते हैं जो हम नहीं देख रहे होते । असल में डॉ. काले वस्तुओं को चित्रित नहीं करते, अपितु भावनाओं को चित्रित करते हैं। उनकी भावनाएं वे हैं जो किसी व्याख्या से संबोधित नहीं की जा सकती। उनका अर्थ और इति कृति से आरंभ होकर कृति पर ही पूर्ण हो जाता है। उनके चित्रों की व्याख्या करना वैसा ही है जैसे किसी चिड़िया की कलरव का अर्थ निकालना। किंतु इसका यह मतलब नहीं है कि वे कृतियां विचार शून्य अथवा मनुष्यता के संदर्भ से बाहर है । उनकी कृतियों पर इस दिशा में सोचा जाना अधूरी या ग़लत बात होगी। वास्तव में उनके चित्र, कला के मूल्यों को आत्यंतिक स्तर पर पाने का प्रयास है। उनकी कोई भी कृति मूल्यों से च्युत नहीं है। मैं जैक्सन पोलक की बात को उधार लूंगा कि उनकी 'अमूर्त कला में, रचना-प्रक्रिया ही कला है । जो महत्वपूर्ण है । वह अंतिम उत्पाद नहीं, बल्कि उस तक पहुँचने की प्रक्रिया है।'

डॉ. चंद्रशेखर काले की रचना प्रक्रिया में कैनवस पर चटकदार और धूसर छवि में एक्रेलिक अथवा तेल रंग, सरल-वक्र रेखाएं, आकार - अवकाश का संतुलन, छाया -प्रकाश का नियोजन, तीव्र और मद्धम भावावेगों के तुलिकाघात, दृश्यता की पारगम्यता आदि शामिल रहते हैं। केंद्रीय रूप के भीतर छोटे छोटे अनेक रूपों की कल्पना करते हुए उन्हें सुंदर पोत में निबद्ध करते हैं। हम उन्हें हमारे पहचाने आकारों के रूप में पक्षी,मछली पेड़, पहाड़ कुछ भी कह सकते हैं। मगर मूल में वे किसी कलाकार की तीव्र मनोवेगों से जन्मी छवियां ही है। उनको देखकर लगता है कि उन्हें रचते समय कलाकार बाह्यजगत से विलग होकर पूरी तरह अपनी आत्मा की गहराइयों में झांक रहा होगा तभी वे आत्म-छवियां कैनवस की सतह पर उद्भूत हुई होंगी। वे उन बुनियादी संरचनाओं के रूप में सामने आती है जो प्रकृति के मूल में है। उनको देखने से लगता है कि प्रकृति से आई कृतियां प्रकृति की ओर लौट रही है।

एक सच्चा कलाकार अपनी विधा से इतर अन्य विधाओं से भी उतना ही प्रेम करता है जितना स्वयं की विधा से। डॉ. काले बहुमुखी कलाकार हैं। उनके एकाधिक कविता संग्रह प्रकाशित हैं। यहां उनकी एक कविता रखी जा रही है जो प्रतिकात्मक रूप से कला जगत पर एक गहरा व्यंग्य करती है । साथ ही उन तमाम तामजाम की पोल खोलती है जिसकी भभकामार चमक के पीछे कला-जगत का यथार्थ है। इस यथार्थ के कई आयाम हैं जिसके हम सब भागीदार और जिम्मेदार हैं।

नुमाईश और गमला
स्याह-रंगीन
कैनवासों और कागज़ों के
चित्रों से सजी
आई फैक्सी के कोने में रखा

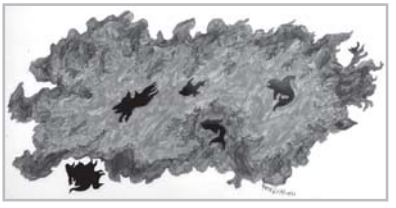

वह गेरूआ गमला
चौड़ी हरी पत्तियों के
झुरमुट से सजा
चौकीदार-सा तना
सफेद फूलों से घिरा
चार दिन पहले कैसे
हँस रहा था
नुमाईश की शुरूआत पर
विभोर होकर
दूजे-दिन,
इक्का-दुक्का
समझदारों-सी दिखती
भीड़नुमा आँखों से
वह भी बतियाता रहा
तीसरे दिन
नुमाइश में टंगे चित्रों की तरह
पानी को तरसता रहा
न माली आया न ही दर्शक
नुमाईश के चौथे दिन
पूरी तरह सूनी पड़ी
रविवारीय कला दीर्घा में
जब मैंने उसकी ओर देखा
दीर्घा में लगे चित्रों से भी अधिक
उदास पाया
उसकी उद्घाटनी हँसी
काफूर हो चुकी थी
तनी हुई शाखा एक ओर
झुक गई थी
उसकी बची-खुची पत्तियाँ
दर्द भरी मुस्कान
बिखेर रही थीं
आई फैक्स के फर्श पर

– डॉ चंद्रशेखर काले

यह कविता किसी सामाजिक सरोकारों से संपन्न कलाकार की सूक्ष्म दृष्टि और उसके कोमल भावों से भरे हृदय से ही उद्घाटित हो सकती है। डॉ चंद्रशेखर काले ऐसे ही कलाकार हैं।

शुभमस्तु ।

स्तंभकार लेखक: वरिष्ठ चित्रकार और कवि हैं।
सम्पर्क : 49, सी, जनता मार्ग, सूरजपोल अंदर,
उदयपुर- 313001(राज.) मो. 9602015389

■

व्यस्त आदमी को काम करने में जितने अक्ल की जरूरत पड़ती है, उससे ज़्यादा अक्ल बेकार आदमी को समय काटने में लगती है.

पत्रकारिता में व्यवस्था की मृदंग पर न कभी राग जयजयवंती

गाया, न ही ऐसी किसी ताल को अपने शब्द स्वर दिए

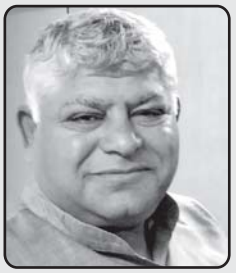

अलीम बजमी

श्री महेश श्रीवास्तवजी। भोपाल दैनिक भास्कर के पूर्व संपादक। कवि, लेखक, पत्रकार। मध्यप्रदेश गान, नर्मदा एवं सिंहस्थ गानों के रचयिता। शुक्रवार 27 दिसंबर को उनका जन्म दिन हैं। वे युवा पत्रकारों के मार्गदर्शक है। प्रेरणा स्त्रोत है। मेरे जैसे सैकड़ों पत्रकार उनके शार्गिद है। हम सभी उनके दीर्घायु और चिरायु होने की मंगल कामना करते हैं। मोहक मुस्कान के साथ उनकी स्मरण शक्ति भी अद्भुत है। महेशजी की विशेषता ये है कि न तो कोई दंभ, न कोई अहंकार। सबके प्रति उनका व्यवहार आत्मीय। उनकी भाषा में माधुर्य है तो अपने शिष्यों को सरलता, सहजता से सीख देने का फन भी अनूठा है।

वे हिंदी साहित्य, परंपरा, भारतीय संस्कृति, राजनीतिक घटनाक्रमों आदि के जानकार के रूप में भी शब्द पालिका में पहचान रखते हैं। उनकी कविताएं, प्रकृति के नैसर्गिक सौंदर्य से साक्षात्कार कराती है। उनका लेखन आतिशी है। भाषा के सौंदर्य का खजाना उनके पास है। महेशजी ने अपने लेखन में शब्दों के चरित्र की मर्यादा का सदैव ख्याल रखा। पौराणिक प्रसंगी के उदाहरण से बात कहने का फल भी उनका अनूठा है। वे हिंदी भाषा के हिमायती के रूप में पहचान रखते हैं। दैनिक भास्कर में मैंने, संपादक के रूप में उनका कठोर व्यक्तित्व भी देखा। लेकिन सहयोगियों के बीच निर्मल हृदय के धनी के रूप में भी जाना। पत्रकारिता में व्यवस्था की मृदंग पर न कभी राग जयजयवंती गाया। न ही ऐसी किसी ताल को अपने शब्द स्वर दिए। कुर्सीदासों की महफिलों की रौनक भी कभी नहीं बने। सर या बास शब्द से हमेशा परहेज रखा। भाई साहब के नाम से हरेक के बीच लोकप्रिय है।

भोपाल में हिंदी पत्रकारिता को उसका ध्येय पथ दिखलाने में उनकी अहम भूमिका रही। उनके लेखन में हिंदी पत्रकारिता और हिंदी साहित्य का सम्मिश्रण कई अवसरों पर नजर आया तो पत्रकारिता के माध्यम से भारतीय संस्कारों की अलख को सदैव ज्योति देने का काम किया। कई अवसरों पर प्रतीत हुआ कि हिंदी शब्द संपदा का उनके पास अथाह भंडार है। उनका शब्दानुशासन अद्भुत, प्रेरक के रूप में हैं। उन्हें शब्द साधक के रूप में भी संबोधित किया जाता है। उनके लेखन में प्रकृति, लोकतत्व, बौद्धिकता, सर्जनात्मकता, काव्यात्मकता भी देखने को मिलती है। कई अवसरों पर पौराणिक प्रसंगों के माध्यम से पाठकों को भारतीयता, दर्शन, अध्यात्म आदि का साक्षात्कार कराया। सरल सहज शब्दों में कहे तो मर्म को समझाया। यही कारण था कि वर्ष 1980 से 2000 तक विशेष संपादकीय के रूप में उनके लेखन को देश के कोने-कोने में सराहा गया। महेशजी ने अपने पत्रकारीय जीवन में लोक हित के मुद्दों को ज्ञान और विचारों की समीक्षात्मक टिप्पणियों के साथ जन-जन तक पहुंचाया। पत्रकार एवं कवि के रूप में वे अपने कार्यों, कर्तव्यों और लक्ष्यों का विवेचन भी करते। उनका यह गुण अन्य पत्रकारों में दिखाई नहीं देता। सदैव निष्पक्ष, निर्भीक एवं आदर्श पत्रकारिता के निर्माण का मार्ग भी प्रशस्त किया। ये जानते हैं कि पत्रकारिता समय के साथ समाज की दिग्दर्शिका और नियामक इकाई है। खबर पालिका में भाषा की दृष्टि से विविधता और बहुरूपता मिलेगी। नए-नए प्रयोग, किस्से, कहानियां, आरोप-प्रत्यारोप आदि चुनौतियों के रूप में सामने आएंगे। इसको ध्यान में रखते हुए उन्होंने अपने संपादकीय कार्यकाल में अत्यधिक सतर्कता बरती। इसकी सीख भी अपने शिष्यों को दी। यही कारण था कि उनका कैरियर काजल की कोठरी में बेदाग है। इसका उल्लेख इसलिए भी कि पत्रकारों को भटकाव के लिए राजनीति, प्रशासन से जुड़ा एक वर्ग सदैव तत्पर रहता है।

वहीं, पत्रकारिता में महेशजी द्वारा पल्लवित, पोषित और विकसित सैकड़ों पत्रकार आज भी उनके बताए मार्ग पर चलते हुए

बेइज्जती में अगर दूसरे को भी शामिल कर लो तो आधी इज्जत बच जाती है।

नैतिकता, मर्यादा, शुचिता की ज्योत जलाएं हुए हैं। इसके लिए आदरणीय महेशजी को साधुवाद। धन्यवाद। विनम्रता पूर्वक आभार भी। हांलाकि शहर में प्रगतिशीलों की जमात उनसे वैचारिक फासला रखती है लेकिन उनकी मेधा और व्यक्तित्व की महनीयता को मान देने में कभी पीछे नहीं रही।

अब थोडा फ्लैश बैंक में चले तो ये जानिये सादगी पसंद महेशजी ने पत्रकारिता की शुरुआत बतौर रिपोर्टर 1960 के दशक से शुरू की। अंग्रेजी में पोस्ट ग्रेज्युट होने के कारण बतौर लेक्चरर उनको सरकारी नौकरी मिल गई। लेकिन सरकारी नौकरी में दिल नहीं रमा। वकालत की भी डिग्री उन्होंने ली थी लेकिन व्यवस्था के खिलाफ उनके हृदय में जलती ज्योत पत्रकारिता में खींच लाई। दिल्ली से प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं में छपने लगे। यद्यपि महेशजी की कलम का जादू था कि दिल्ली से लेकर यूपी तक के कुछ अखबारी धराने उन्हें अपने से जोड़ने को इच्छुक थे लेकिन भास्कर के प्रति निष्ठा ऐसी कि महेशजी ने भोपाल नहीं छोड़ा। वे भास्कर में पदोन्नत होते- होते संपादक जैसे महत्वपूर्ण पद पर पहुंचे। करीब 12 साल तक इस पद का जिम्मा संभाला। सेवानिवृत होने के एक साल बाद वे संस्थान से विदा हुए। हालांकि सेवानिवृति के बाद भास्कर पत्र समूह के चेयरमैन स्वर्गीय श्री रमेश चंद्र अग्रवालजी ने उन्हें संपादकीय सलाहकार के रूप में एक साल तक रोके रखा लेकिन दिसंबर 2001 में उन्होंने रमेशजी से आग्रह करते हुए भास्कर से विदाई ले ली।
इस नाचीज को महेशजी के अधीनस्थ करीब बीस साल तक संपादकीय विभाग में काम करने का मौका मिला। महेशजी ने ही मुझे बतौर प्रूफ रीडर के रूप में नियुक्ति दी थी। बाद में उन्होंने ही रिपोर्टर बनाया। भास्कर में सेवाएं देते हुए मैंने महेशजी को बहुत करीब से देखा। वे हमेशा लम्बेरेटा स्कूटर से चलते। आसमानी कलर की वो स्कूटर उनके जीवन के कई बसंत की गवाह रही। र्दफ्तर में संपादक के रूप में काफी सख्त मिजाज रखते। लापरवाही कभी बर्दाश्त नहीं करते। डांटते भी खूब। अनुशासन में सबको बांधकर रखते। यद्यपि कई बार कोई बड़ी गलती होती तो महेशजी के धमूके (मुक्के) खाने को मिलते। कई अवसरों पर न्यूज रूम के बोझिल माहौल को वे हास-परिहास और ठहाकों से भी दूर करते। इसके इतर उनका चेहरा एक अभिभावक के रूप में भी रहा। उदाहरण के रूप में भास्कर में ही मैं नौकरी करता हुआ पोस्ट ग्रेज्युट हुआ। परीक्षा के दिनों में महेशजी मुझसे कोई काम नहीं कराते लेकिन पूरे समय दफ्तर में बैठकर पढ़ना होता और परीक्षा देने के बाद उनके पास सीधे जाना पड़ता कि पेपर कैसा हुआ।

किसी भी खबर को लेकर उनका फोकस कंटेट पर रहता। विशेष अवसरों पर पहले पेज की वे खुद डमी बनाते। उस दिन पेज के सभी शीर्षक उनके होते। पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या वाले दिन उन्होंने पूरा अखबार अन्य खबरों से खाली करा दिया था। उनका मत था कि पाठक सिर्फ इंदिराजी से जुड़े पहलुओं के बारे में जानता चाहेगा। उस दिन उनकी लिखी विशेष संपादकीय काले सूरज का दिन ने लोगों की आंखों को नम कर दिया था। इस घटना के कुछ ही दिन बाद भोपाल में विश्व की सबसे बड़ी औद्योगिक त्रासदी यानी गैस कांड हुआ। इस घटना ने पूरे विश्व को स्तब्ध कर दिया। तब महेशजी द्वारा लाशों से उठा सवाल शीर्षक से लिखी विशेष संपादकीय को काफी सराहना मिली थी। इसी प्रकार अर्जुन सिंह के मुख्यमंत्री पद से हटने पर उन्होंने हे! अर्जुन हर मनुष्य अपनी कर्मों का ही फल यहीं भोगता होता है, शीर्षक से विशेष संपादकीय लिखी, जिसकी देश में काफी चर्चा हुई। सुंदरलाल पटवा के मुख्यमंत्रित्य काल में 27 हजार कर्मचारियों के तबादले होने पर उन्होंने तीखे शब्दों में अपनी नाराजगी जताते हुए विशेष संपादकीय श्रीमान कर्मचारी फुटबाल नहीं होते शीर्षक से लिखी। इसका असर ये हुआ कि थोक में जारी तबादला आदेश वापस हुए। इसी तरह की उनकी एक विशेष संपादकीय स्वागत है, लालकृष्ण आडवाणी की गिरफ्तारी का, भी खूब चर्चा में रही। ये भोपाल के पहले ऐसे संपादक रहे, जिन्हें राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के दल के साथ कई बार विदेश जाने का मौका मिला।

अब बात महेशजी के संपादकीय व्यवहार की। वे अपने सहयोगियों से कितना स्नेह रखते थे, इसका एक उदाहरण। नसरुल्लागंज के संवाददाता रेवाशंकर शर्मा ने सीहोर जिले से अवैध बस संचालन को लेकर एक खबर की। खबर के प्रकाशन से नाखुश हुए बस मालिक ने श्री शर्मा पर जानलेवा हमला कर दिया। इस घटना से महेशजी इतने व्यथित हुए कि उन्होंने तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री मोतीलाल चोरा के समक्ष अपनी नाराजगी जताई। वोराजी उनके तेवर को समझते हुए बोले- वे खुद शर्माजी को देखने अस्पताल जाएंगे। दोषियों को 24 घंटे के अंदर कानून के शिकंजे में कस लिया जाएगा। हुआ भी ऐसा ही। यही नहीं दफ्तर में कोई साथी बीमार होता तो महेशजी उसके स्वास्थ्य को लेकर चिंतित रहते। कुछ की ड्यूटी उस साथी की मदद के लिए लगा देते। दफ्तर में उनकी प्राथमिकता सहयोगियों को भाषा के संस्कार देने की हमेशा रही। भाषा को लेकर वे सबकी समय-समय पर सचेत करते। नवोदित पत्रकारों के लिए वे हमेशा प्रेरक रहे। इसकी वजह उनका लेखन और प्रोत्साहन करने वाला चरित्र। वे खुद प्रयोगधर्मी रहे तो लेखन में भी नए प्रयोग करने के पक्षधर रहे।

यद्यपि हुक्मरानों से रिश्ता और उनकी कृपा पाने के अभिलाषियों में पत्रकारों का एक वर्ग सक्रिय रहता। ये वर्ग अब भी विद्यमान है। लेकिन महेशजी को पूर्व मुख्यमंत्री श्री मोतीलाल चोरा, श्री सुंदर लाल पटवा, श्री दिग्विजय सिंह, श्री बाबूलाल गौर ने कई बार सरकारी बंगला देने की पेशकश की। लेकिन उन्होंने उसे अत्यंत विनम्रता

यश ही परमार्थ है. हमें एक काम ऐसा जरूर करना चाहिए, जिससे नाम अमर रहे।

से अस्वीकार कर दिया। उनका मानना था कि सरकार से एक बार मदद लेने के बाद कहीं-न-कहीं वह बोझ मुझे स्वतंत्र रूप से लिखने में बाधक बनेगा। जाने-अनजाने में ही सही उनको यह कृपा कचोटेगी। इस कारण पुराने शहर के शाहजहांनाबाद में स्थित रामनगर कॉलोनी में वे लंबे समय तक रहे। हांलाकि यहां उन्हें कई तरह की व्यवहारिक कठिनाई होती। लेकिन वे संतोष करते। महेशजी को महाभारत और रामायण के कई पौराणिक प्रसंग कंठस्थ है। खास तौर पर महाभारत कथा में कुंती पुत्र कर्ण उनके प्रिय पात्रों में रहा। कर्ण के व्यक्तित्य और कृतित्व का वर्णन करने का उनका अलहदा लहजा है। वो भी अनूठा। कार्ण पर उन्होंने पुस्तक भी लिखी है। पत्रकारिता में उत्कृष्ट अवदान के लिए उन्हें गणेश शंकर पत्रकारिता पुरस्कार 2012 से भी नवाजा गया। इसके अलावा उन्हें असंख्य पत्रकारिता सम्मान पुरस्कार भी मिले हैं।

इतिहास रच दिया। महेशजी ने मध्यप्रदेश से अपने रिश्ते का अहसास कराते गीत की रचना करके इतिहास रच दिया। बहुत कम लोगों को पता होगा कि मप्र की स्थापना के पांच दशक होने पर मध्यप्रदेश गान की परिकल्पना की गई। प्रदेश के कई गीतकारों से गीत लिखवाए गए। उन गीतों पर काफी मंथन हुआ। यह बात वर्ष 2008-09 की है। लेकिन आम राय नहीं बनी। ऐसे में महेशजी से आग्रह किया गया तो उन्होंने मध्यप्रदेश की प्रकृति, उसके नैसर्गिक चरित्र, कला, सौंदर्य से लेकर दर्शन, शौर्य, पराक्रम, इतिहास, सामाजिक सरोकार और वर्तमान को समाहित करते हुए गीत लिखा। इस गीत को आम राय से राज्य शासन का अधिकारिक मध्यप्रदेश गान माना गया। गीत का पहला मुखड़ा इस प्रकार से है - **'सुख का दाता सब का साथी शुभ का यह संदेश है, मां की गोद, पिता का आश्रय मेरा मध्यप्रदेश है। विंध्याचल सा भाल नर्मदा का जल जिसके पास है, यहां ज्ञान विज्ञान कला का लिखा गया इतिहास है...।'**

अंत में: आदरणीय महेशजी को जन्म दिन की बहुत-बहुत बधाई। वे सदैव स्वस्थ रहे। इस मंगल कामना के साथ उनका आशीर्वाद एक गुरु, अभिभावक और बड़े भाई के रूप में मुझे सदैव मिलता रहे।

लेखक : दैनिक भास्कर भोपाल में वरिष्ठ पत्रकार हैं।
alimbazmi786@gmail.com

2024 में मध्यप्रदेश को कला-संस्कृति में 4 वर्ल्ड रिकॉर्ड की उपलब्धि

मध्यप्रदेश को वर्ष 2024 में कला और संस्कृति के क्षेत्र में विशेष उपलब्धि हासिल हुई। साल की शुरुआत में फरवरी में खजुराहों में जहां कलाकारों ने एक साथ कथक की प्रस्तुति देकर विश्व रिकॉर्ड बनाया। वहीं उज्जैन में सावन सोमवार पर बाबा महाकाल के दरबार में 1500 लोगों ने एक साथ डमरू बजाकर विश्व रिकॉर्ड बनाया। और साल के अंत में तानसेन समारोह सहित गीता जयंती पर भी दो विश्व रिकॉर्ड बने। यह कला संस्कृति की बड़ी उपलब्धि है।

20 फरवरी : खजुराहो में 1484 कलाकारों ने डेढ़ घंटे किया कथक

खजुराहो में 50 वाँ स्वर्ण जयंती के अवसर पर संस्कृति विभाग द्वारा आयोजित कथक कुंभ गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड में दर्ज हो गया। कथक कुंभ में 1414 कलाकारों ने करीब डेढ़ घंटे तक कथक की प्रस्तुति दी थी। कलाकारों ने लगातार 15 मिनट एक सी मुद्राओं में नृत्य किया।

5 अगस्त : उज्जैन में 1500 लोगों ने एक साथ 10 मिनट बजाया डमरू

सावन के तीसरे सोमवार पर उज्जैन में महाकाल की सवारी के पहले महाकाल लोक के पास शक्ति पथ पर 1500 लोगों ने एक साथ 10 मिनट तक डमरू बजाया। उज्जैन ने सबसे अधिक लोगों को डमरू बजाने का गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड बनाया।

15 दिसम्बर: 546 कलाकारों का 9 वाद्ययंत्रों पर एक साथ राग वादन

ग्वालियर में 100 वें तानसेन संगीत समारोह में 546 कलाकारों ने 9 शास्त्रीय वाद्ययंत्रों पर एक साथ राग वादन कर रिकॉर्ड बनाया। इसमें, 347 पुरुष एवं 189 महिला कलाकार शामिल थे। प्रस्तुति के माध्यम से स्वर सम्राट तानसेन को स्वरांजलि अर्पित की गई।

11 दिसंबर : 7 हजार से अधिक लोगों ने किया 'कर्मयोग' का सामूहिक सस्वर पाठ

11 दिसम्बर को भोपाल में गीता जयंती पर 7 हजार से अधिक प्रतिभागियों ने सामूहिक गीता पाठ किया। इनमें 3721 आचार्य और बटुक शामिल थे। मोतीलाल नेहरू स्टेडियम में हुए गीता के तीसरे अध्याय 'कर्म योग' का सस्वर पाठ सुबह करीब साढ़े 11 बजे शुरू होकर 9 मिनट तक चला।

साभार : दैनिक भास्कर

चश्मदीद वह नहीं है, जो देखे; बल्कि वह है, जो कहे कि मैंने देखा।

बेंगलुरु में 'मध्य प्रदेश महोत्सव' में एक साथ दिखे कला, संस्कृति और आध्यात्म के कई रूप

हजारों पर्यटकों ने मध्यप्रदेश के गंतव्य स्थलों की ली जानकारी, मध्यप्रदेश के प्रसिद्ध जायकों का भी लिया स्वाद

संस्कृति, आध्यात्म और कला का अनोखा संगम साबित हुआ 'मध्य प्रदेश महोत्सव'

हजारों आगंतुकों की उपस्थिति में मध्य प्रदेश महोत्सव का आयोजन मध्य प्रदेश पर्यटन विभाग द्वारा बेंगलुरु के आर्ट ऑफ़ लिविंग के इंटरनेशनल सेंटर पर किया गया। इस मौके पर पर्यटन विभाग द्वारा लगाई गई भिन्न-भिन्न प्रदर्शनी, प्रदेश के लज़ीज़ व्यंजनों की स्टाल और प्रदेश की संस्कृति को दर्शाते हुए सांस्कृतिक कार्यक्रम से महोत्सव को और अधिक भव्य और जीवंत बना दिया। यह आयोजन मध्य प्रदेश की सांस्कृतिक धरोहर को उजागर करने एवं इसे वैश्विक मंच पर स्थापित करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल रही। 'मध्य प्रदेश महोत्सव' में कला, संस्कृति और आध्यात्म के कई रूप एक साथ दिखाई दिए।

बेंगलुरु के आर्ट ऑफ लिविंग अंतर्राष्ट्रीय सेंटर में मध्य प्रदेश पर्यटन विभाग द्वारा आयोजित किये गए चार दिवसीय 'मध्य प्रदेश महोत्सव' में प्रसिद्ध आध्यात्मिक गुरु श्री श्री रवि शंकर जी ने कार्यक्रम की शोभा बढ़ाई और पर्यटन एवं संस्कृति विभाग द्वारा लगाई गई प्रदर्शनी का भी अवलोकन किया एवं कई हज़ार लोगों को संबोधित करते हुए मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री द्वारा किये जा रहे पर्यटन संबंधित विकास कार्यो के लिए तारीफ़ भी की।

मध्य प्रदेश पर्यटन बोर्ड की अपर प्रबन्ध संचालक सुश्री बिदिशा मुखर्जी ने इस मौके पर कहा 'यह मंच निस्संदेह मध्य प्रदेश की समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर को प्रदर्शित करने का सबसे बेहतरीन अवसर रहा। यहाँ पर्यटन विभाग द्वारा भिन्न-भिन्न प्रदर्शनियाँ लगायी गई, जिसमें प्रचार-प्रसार, फ़िल्म, निवेश, ग्रामीण पर्यटन के साथ मृगनयनी एंपोरियम एवं अन्य क्राफ्ट भी प्रदर्शित किए गए। प्रदेश के छह रीजन के लज़ीज़ व्यंजनो की स्टाल भी लगायी गई, जिन्होंने हर दिन अलग-अलग व्यंजन परोसा।'

आध्यात्मिक गुरु श्री श्री रवि शंकर ने लोगो को संबोधित करते हुए कहा, 'जब मध्य प्रदेश चमकता है, तो इसकी सांस्कृतिक और आध्यात्मिक रोशनी हर जगह फैलती है।' उन्होंने मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव की सराहना करते हुए कहा कि उनके प्रयास मध्य प्रदेश को पर्यटन और सांस्कृतिक दृष्टि से नई ऊंचाइयों तक पहुंचा रहे हैं। उन्होंने मध्य प्रदेश की आध्यात्मिक धरोहर पर भी प्रकाश डाला, यह बताते हुए कि ओंकारेश्वर में आदि शंकराचार्य ने दीक्षा प्राप्त की और वहीं से देशभर में

आध्यात्मिक जागरण की नींव रखी गयी ।

यह चार दिनी मध्य प्रदेश महोत्सव में प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में तैयार की गई कलाकृतियों और चंदेरी की साड़ियों ने भी अपनी छाप छोड़ी। इसके साथ ही मध्य प्रदेश में निवेश और फ़िल्म निर्माण के अवसरों पर भी पर्यटकों ने जानकारी ली। इसके साथ गोंड और भील चित्रकला, ज़री-जरदोज़ी, और चंदेरी सिल्क जैसी मध्य प्रदेश की प्रसिद्ध हस्तशिल्प और वस्त्रों की प्रदर्शनी ने दर्शकों का ध्यान आकर्षित किया। महोत्सव में पारंपरिक व्यंजनों का भी लोगो द्वारा लुत्फ उठाया गया। जिसमे इंद्रहार, मावा बाटी, भुट्टे की कीस और रागी, बालूशाही जैसे लज़ीज़ व्यंजन उपलब्ध रहे।

चार दिनी महोत्सव में सांस्कृतिक संध्या भी आयोजित की गईं। जिसमें मैहर बैंड का ऐतिहासिक प्रदर्शन मुख्य आकर्षण रहा, साथ ही जबलपुर के कलाकारों द्वारा प्रस्तुत शिव स्तुति और भरतनाट्यम नृत्य नाटिका ने दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर दिया एवं सुप्रसिद्ध उदय भवालकर द्वारा सुरमई ध्रुपद संगीत सुनाया गया एवं जाने-माने किरण बामनेरे और आमिर खान द्वारा आकर्षक वायलिन-सरोद की जुगलबंदी प्रस्तुत की गई।

रपट : रिचा दुबे

■

नाक की हिफ़ाज़त सबसे ज़्यादा इसी देश में होती है...

प्रदर्शनी

ग्वालियर तानसेन शताब्दी समारोह में पहली बार
राहुल श्रीवास के द्वारा निर्मित वाद्य यंत्रों के प्रतिरूप की प्रदर्शनी आयोजित

तानसेन शताब्दी समारोह ग्वालियर

मध्यप्रदेश महोत्सव (आर्ट ऑफ लिविंग) बेंगलूरू

राहुल श्रीवास का मध्य प्रदेश पर्यटन बोर्ड की ओर से तानसेन समारोह के शताब्दी वर्ष में अपने जीवन का पहला सार्वजनिक शो था दिनांक 15 दिसम्बर 2024 से 19 दिसम्बर 2024 तक यह अपने आप में पहला और तानसेन की नगरी ग्वालियर में तानसेन समारोह के शताब्दी वर्ष में राहुल के द्वारा शुद्ध रूप से हस्तकला द्वारा बनाया हुआ सागोन लकड़ी वाद्य यंत्रों की प्रतिकृतियां जिन पर तार, रेशम, जरी, कागज, लुगदी, गोटा, कलर द्वारा निर्मित वाद्यों को बच्चों से लेकर युवा वरिष्ठ नागरिक तथा माताएं, बहनें सभी ने दिल से मन भर कर सिर्फ इसके द्वारा बनाए हुए वाद्य यंत्रों की कलाकृतियों की सिर्फ तारीफ ही नहीं राहुल की कला की सराहना करते हुए मन भर-भर के खूब आशीर्वाद दिया ग्वालियर और देश से आए हुए श्रोताओं ने राहुल की तारीफ की तानसेन समाधि के प्रांगण में ... । राहुल श्रीवास ने स्नातक बी.कॉम तक अपनी शिक्षा प्राप्त की है। 21 सितम्बर 1982 को जन्म भोपाल शहर में हुआ। इनके पिता भँवरलाल श्रीवास जो स्वयं 34 वर्षों तक कला तीर्थ भारत भवन भोपाल में सेवारत रहे और वर्तमान में देश की जानी-मानी कला, संस्कृति की पत्रिका कला समय के प्रधान संपादक हैं। बड़ा बेटा राहुल श्रीवास के वाद्यों को लोग अपने स्थायी संग्रह में रख रहे हैं। राहुल डीजे कलाकार है। आपने डीजे की ट्रेनिंग पुणे शहर से प्राप्त की है। आप जहांनुमा पैलेस, फाइव स्टार होटल में आपका डीजे सुनने के लिए लोग ललायित रहते हैं। राहुल ने वर्ष 2003 में 40 दिनों का चिल्ला करते-करते एक दिन अपने गुरु आशीष तेलंग के यहां 8 जून 2003 गुरुकुल में 24 घंटे बिना चाटी से हाथ हटाए चारों पहर तबला वादन का आपने रिकॉर्ड कायम किया है। मगर पुणे शहर के वरिष्ठ तबला गुरु सुरेश तलवरकर से निराश होकर आप डीजे में गए और अब डीजे के साथ स्वत: अंतर प्रेरणा और जुनून के कारण आज देश में एकमात्र वाद्ययंत्रों की प्रतिक्रिया को बनाने वाले प्रतिष्ठित कलाकारों में उसकी गिनती है। मध्य प्रदेश पर्यटन बोर्ड ने आपका अलग बारकोड तथा एक डॉक्यूमेंट्री भी बनाई है जो शीघ्र रिलीज होगी। राहुल श्रीवास अपनी जिद और जुनून का नाम है। राहुल के परिवार में उसके माता-पिता पत्नी और पुत्री अंतरा श्रीवास एवं पुत्र सार्थक श्रीवास हैं। राहुल को आप सभी विद्वानों स्नेहियों मित्रों, शुभचिंतकों से यही प्रार्थना है कि इसको ईश्वर, यश, समृद्धि, प्रगति दे और स्वस्थ जीवन के साथ दीर्घायु हो। इस आशा और अपेक्षाओं के साथ .... ।

लोकरंग भोपाल (म.प्र.)

तानसेन समारोह शताब्दी वर्ष में तानसेन समाधि प्रांगण ग्वालियर में एक तरफ मध्यप्रदेश शासन की वाद्ययंत्रों पर प्रदर्शनी। दूसरी ओर राहुल के द्वारा वाद्ययंत्रों की प्रतिकृतियां का जीवंत प्रदर्शन .... । राहुल वाद्ययंत्रों की प्रतिकृतियों के लगभग 18 प्रकार के वाद्ययंत्रों के प्रतिकृति बनाते हैं। आगे और भी संभावना है। राहुल के बेंगलूरू आर्ट ऑफ लिविंग में भी जनवरी 2025 में राज्य पर्यटन विकास बोर्ड से जाने का अक्सर मिला है। राहुल देश के अपने तरह का कलाकार है जो यह सारी प्रतिकृतियां अपने हाथों से निर्मित करते हैं। बैंगलोर में मध्यप्रदेश महोत्सव जो म.प्र. पर्यटन बोर्ड एवं आर्ट ऑफ लिविंग के संयुक्त तत्वाधान में दिनांक 9 से 12 जनवरी 2025 में भी राहुल श्रीवास को अपने वाद्ययंत्रों का स्टाल लगाने का अवसर प्रदान किया गया। इसी के साथ भोपाल में लोक रंग 2025 में भी राहुल श्रीवास के वाद्ययंत्रों को प्रदर्शन करने का दिनांक 26 जनवरी से 30 जनवरी 2025 तक अवसर दिया गया। दिनांक 7 फरवरी से 23 फरवरी 2025 तक सूरजकुंड फरीदाबाद हरियाणा में भी राहुल का वाद्ययंत्रों का शो म.प्र. टूरिज्म बोर्ड के सहयोग से होने की संभावना है।

रपट : भँवरलाल श्रीवास ■

न्याय को अंधा कहाँ गया है मै समझता हूँ न्याय अन्धा नही काना है वह एक ही तरफ देख पाता है ।

मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी का प्रतिष्ठित 'ईसुरी पुरस्कार' डॉ. सुमन चौरे को देने की घोषणा

मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी ने लोकभाषा का प्रतिष्ठित 'ईसुरी पुरस्कार' डॉ. सुमन चौरे को उनकी पुस्तक 'निमाड़ का सांस्कृतिक लोक' के लिए देने की घोषणा की है।

डॉ. सुमन चौरे लोक संस्कृति और लोक साहित्य के संरक्षण और संवर्धन की दिशा में निरन्तर सक्रिय हैं। उन्हें 'निमाड़ की लोक संस्कृति की चलती फिरती पाठशाला' और 'निमाड़ की लोक संस्कृति का जीवंत ज्ञानकोष' कहा जाता है। उनकी करीब 425 पेज की पुस्तक 'निमाड़ का सांस्कृतिक लोक' में लुप्त हो रही या लुप्त हो गई अनेकों परम्पराओं और लोकगीतों की व्याख्या है। जून 1948 में निमाड़ के गांव कालमुखी में जन्मी डॉ. चौरे ने निमाड़ एवं प्रतिवेशी क्षेत्रों मालवा बुंदेलखंड गुजरात और खानदेश (महाराष्ट्र) में घूम-घूमकर लोक गीतों, लोक कथाओं, लोक नाट्यों आदि का अध्ययन एवं शोध किया है। राष्ट्रकवि माखनलाल चतुर्वेदी के संपादक काल में उनके साप्ताहिक 'कर्मवीर' में डॉ. चौरे की रचनाएं प्रकाशित हुई। उनकी प्रथम रचना सन् 1963 में संस्थापित हिंदी साहित्य की प्रतिनिधि संस्था 'श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति' द्वारा प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका वीणा में प्रकाशित हुई थी। गीता प्रेस गोरखपुर के प्रतिष्ठित प्रकाशन 'कल्याण' के वार्षिकांकों जैसे श्रीराधामाधव अंक, बोध कथा अंक, साहित्य अमृत, अक्षरा, स्वदेश, दैनिक भास्कर आदि में लोक संस्कृति पर उनकी रचनाएं प्रकाशित होती हैं। मध्यप्रदेश शासन के संस्कृति विभाग द्वारा आयोजित लोक संस्कृति के प्रतिष्ठित उत्सवों में भागीदारी करती रही हैं। 1975 में 'निमाड़-मालवा लोकोत्सव' में लोक गीतों का गायन किया। आकाशवाणी व दूरदर्शन से लोक संस्कृति पर कार्यक्रमों का प्रसारण होता है।

मनोज श्रीवास्तव ने राज्य निर्वाचन आयुक्त का पदभार ग्रहण किया

आयुक्त राज्य निर्वाचन आयोग मनोज श्रीवास्तव ने 1 जनवरी को पदभार ग्रहण किया। श्रीवास्तव ने पदभार ग्रहण करने के बाद अधिकारियों की बैठक लेकर आयोग की कार्यप्रणाली के बारे में जानकारी ली। सचिव राज्य निर्वाचन आयोग अभिषेक सिंह ने आयोग द्वारा स्थानीय निकायों के चुनाव में किए जा रहे नवाचारों के बारे में विस्तार से जानकारी दी। इस दौरान आयोग के उप सचिव मनोज मालवीय सहित अन्य अधिकारी उपस्थित थे। उनके नियुक्ति आदेश 31 जनवरी 2024 को ही जारी हुए थे।

श्रीराम तिवारी ने मुख्यमंत्री के संस्कृति सलाहकार का प्रभार ग्रहण किया

वीर भारत न्यास से न्यासी सचिव महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ के निदेशक श्रीराम तिवारी ने मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव के संस्कृति सलाहकार का प्रभार ग्रहण कर लिया है। इस अवसर पर स्वराज संस्थान संचालनालय के उपसंचालक डॉ. संतोष कुमार वर्मा, धर्मपाल शोध पीठ के पूर्व निदेशक संजय यादव सहित कई अधिकारी और कर्मचारी की उपस्थिति में श्री तिवारी जी ने अपना पद भार ग्रहण किया।

मुंबई की संगीत कंपनी ने जारी की लक्ष्मीनारायण पयोधि की चुनिंदा गजलें

भोपाल। वरिष्ठ साहित्यकार लक्ष्मीनारायण पयोधि की चुनिंदा गजलें मुंबई की प्रतिष्ठित संगीत कंपनी रेड रिबन द्वारा जारी की जायेंगी। सुप्रसिद्ध संगीतकार राजू राव और प्रमिला राव द्वारा संगीतबद्ध इस गजल श्रृंखला की पहली गजल 'हिफाजत' शुक्रवार 13 दिसंबर को जारी हुई। लक्ष्मीनारायण पयोधि की पहचान वरिष्ठ साहित्यकार के रूपमें है। विशेषकर जनजातीय विषयों पर लिखी गई कवितायें बहुत पंसद की गई हैं। इसके पहले फिल्म ऑपरेशन मेयर में उनका गीत ख्वाहिशें रूह की काफी पसंद किया गया है। राजू राव एक तरह से उनकी गजलों की आवाज बन गये हैं।

मूर्खता के सिवाय कोई भी मान्यता शाश्वत नहीं है। मूर्खता अमर है। यह बार-बार मरकर फिर जीवित हो जाती है।

कला समय का देवी अहिल्याबाई होलकर विषेशांक पर विद्वानों की प्रतिक्रिया

आदरणीय श्रीवास साहब, सादर अभिवादन

अक्टूबर–नवंबर 2024 का कला समय का देवी अहिल्याबाई होलकर 300 वाँ जन्म जयन्ती वर्ष विशेषांक प्राप्त हुआ। आपके एवं अतिथि संपादक डॉ. कैलाशचन्द्र जी पाण्डेय साहब के सम्पादकत्व में कला समय का यह अंक अहिल्याबाई के अद्भुत व्यक्तित्व एवं कार्यों पर किये गए गहन संगोपांग अध्ययन पर केन्द्रित है।

डॉ. पाण्डेय जी के अहिल्याबाई का प्राचीनतम विवरण, अहिल्याबाई होलकर और राजपूताना, अहिल्याबाई कालीन अस्तल मंदिर पिपलौदा, लेख, श्री राम भाऊ लांडे का अहिल्यादेवी के विवाह की हकीकत, डॉ. प्रभाकर गद्रे के अहिल्याबाई होलकर की सन् 1789 ई. सनद आदि लेखों में अहिल्याबाई के जीवन की अप्रकाशित घटनाओं एवं कार्यों पर गहनय से अध्यन कर प्रकाश डाला गया है। इसके साथ ही डॉ. सहदेवसिंह चौहान, श्री जे.के. ओझा, डॉ. एस.के. भट्ट, श्री शंभुदयाल गुरु, श्रीकृष्ण 'जुगनू' आदि विद्वान इतिहासकार एवं लेखकों ने अपने आलेख में शिलालेखों, सनदों एवं पत्रों के आधार पर अहिल्याबाई के शासन–प्रबन्ध, स्थापत्य, निर्माण, अपने राज्य के रक्षार्थ किये गये प्रयासों की बड़ी प्रामाणिकता तथा शोध के द्वारा विवरण प्रस्तुत किया गया है। डॉ. सुमन चौरे ने भी निमाड़ी लोकगीतों के आधार पर महारानी के चरित्र और कार्यों का रोचक चित्रण किया है। अन्य विद्वान लेखकों ने भी महारानी के व्यक्तित्व और चरित्र के प्रत्येक आयाम की सप्रमाण छूने का प्रयास किया है।

'कला समय' का यह अंक निश्चय ही पठनीय एवं संग्रहणीय है। इस महत्वपूर्ण अंक के प्रकाशन के लिए सम्पादक द्वय को अनेक साधुवाद।

गौरशीकर दुबे, सी–55, सनसिटी कॉलोनी, रतलाम (म.प्र.)

नमस्कार।,

कला समय का देवी अहिल्या बाई पर केंद्रित अंक देखा, देवी अहिल्या बाई के 300 वाँ जयंती वर्ष पर प्रकाशित अंक एक दुर्लभ सामग्री का दस्तावेज है। पिछले 36 साल से लाइब्रेरी में कार्य करते और देवी अहिल्या बाई पर कई लेखकों की सामग्री देखने और पढ़ने का अवसर मिला, पर श्री कैलाशचंद जी पांडेय जी के अतिथि संपादन में प्रकाशित सामग्री बहुत ही गहन चिंतन वाली है। अक्सर अहिल्या माता के जन्म और मृत्यु को लेकर कई बातें कही जाती है पर पांडेय जी की टिपण्णी से ये भ्रांतिया भी दूर हो गई है।

सभी लेखकों के आलेख भी उच्च स्तर के हैं, सामग्री शोध पूर्ण है। आदरणीय पांडेय जी के मार्गदर्शन में यह अंक और काफी तथ्यात्मक और ऐतिहासिक धरोहर हो गया है। सभी को हार्दिक बधाई।

कमलेश सेन

पुस्तकालय अध्यक्ष, पूर्व नई दुनिया

वर्तमान में अभय प्रशाल, इंदौर, मध्य प्रदेश,अमरउजाला के लिए स्वतंत्र लेखन

■

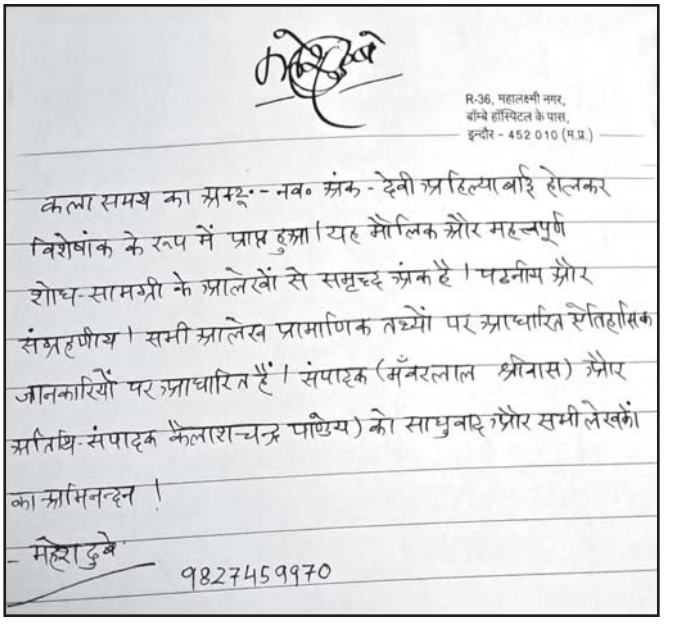
R-36, महालक्ष्मी नगर,
बॉम्बे हॉस्पिटल के पास,
इन्दौर - 452 010 (म.प्र.)

कला समय का अंक - नवं अंक - देवी अहिल्याबाई होलकर विशेषांक के रूप में प्राप्त हुआ। यह मौलिक और महत्वपूर्ण शोध-सामग्री के आलेखों से समृद्ध अंक है। पठनीय और संग्रहणीय। सभी आलेख प्रामाणिक तथ्यों पर आधारित ऐतिहासिक जानकारियों पर आधारित हैं। संपादक (मँनरलाल श्रीवास) और अतिथि-संपादक कैलाशचन्द्र पाण्डेय) को साधुवाद और सभी लेखकों का अभिनन्दन।

- मेहरा दुबे
9827459970

■

इस कौम की आधी ताकत लड़कियों की शादी करने में जा रही है

संस्कृति विभाग द्वारा राष्ट्रीय सम्मान अलंकरण समारोह सम्पन्न

राष्ट्रीय मैथिलीशरण गुप्त सम्मान डॉ. देवेन्द्र दीपक को तथा राष्ट्रीय शरद जोशी सम्मान कैलाशचन्द्र पंत को अलंकृत किया गया

वृद्धावस्था को देखते हुए महामहिम स्वयं मंच से नीचे उतरे और डा दीपक जी का सम्मान किया और सैंचूरी मारने के लिए शुभकामनाएं दी। सम्मान में प्रशस्ति पत्र, शाल श्रीफल के साथ पांच लाख की सम्मान निधि भेंट की। दीपक जी सांस्कृतिक उनमेष, सामाजिक समरसता और सामाजिक न्याय के प्रखर पक्षधर के रूप पहचाने जाते हैं। उपेक्षित और अलक्षित विषयों और पात्रों को अपनी रचनाओं का उपजीव्य बनाया। डॉ. दीपक ने देहदान का संकल्प किया है। साथ ही कैलाशचन्द्र पंत जी को राष्ट्रीय शरद जोशी सम्मान से सम्मानित किया गया।

डॉ. देवेन्द्र दीपक का सम्मान

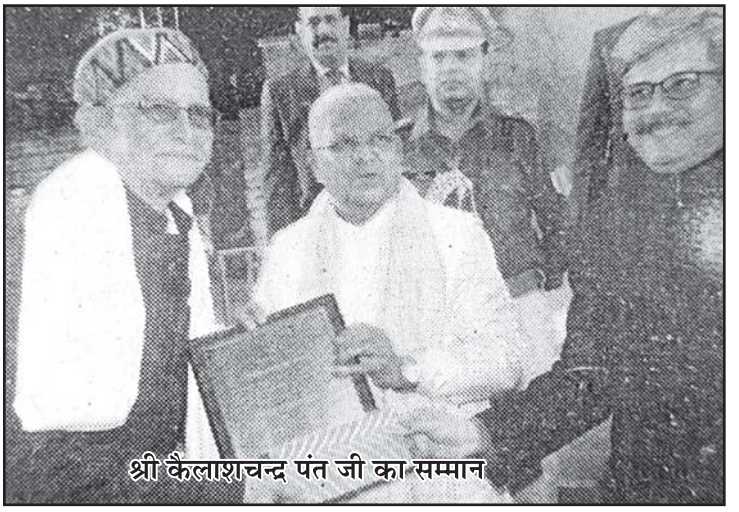

श्री कैलाशचन्द्र पंत जी का सम्मान

पत्रकारिता में 'साख' के ध्वजवाहक रामबहादुर राय को 'पद्मभूषण'

हिन्दी पत्रकारिता में ऐसे व्यक्तित्व कम होते गए हैं जिन्हें युवा पीढ़ी आदर्श के रूप में अपने सामने रख सके। तथापि, 'रोल माडल' का अकाल भी नहीं पड़ा है। जनपक्षधर पत्रकारिता के प्रखर हस्ताक्षर के रूप में श्री रामबहादुर राय हमारे सामने हैं। गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर राष्ट्रपति ने श्री राय को 'पद्मभूषण' अलंकरण से अलंकृत करने की घोषणा की है। वर्ष 2015 में उन्हें 'पद्मश्री' सम्मान दिया गया था। संप्रति वे इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के अध्यक्ष हैं।

जनसत्ता, नवभारत टाइम्स, प्रथम प्रवक्ता, यथावत आदि पत्र–पत्रिकाओं में श्री रामबहादुर राय ने पाँच दशक तक सदैव जन सरोकारों के लिए कलम चलाई। सहज–सरल भाषा, सुरुचिपूर्ण शैली और तथ्यों की प्रामाणिकता उनके नीर–क्षीर विवेक की परिचायक है। इसी से उनकी साख बनी। विश्वसनीयता उनकी पत्रकारिता का सबसे बड़ा अलंकरण है। तभी वे 'काली खबरों की कहानी' सामने ला सके।

संपादक के साथ–साथ उनका प्रबुद्ध लेखक रूप भी गहरे तक प्रभावित करता है। पूर्व प्रधानमंत्री द्वय श्री चंद्रशेखर और श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह की जीवनियों जिस अंदाज में उन्होंने लिपिबद्ध की हैं, वह हिन्दी में विरल प्रयोग है। आचार्य कृपलानी के महत्वपूर्ण अवदान को उन्होंने प्रामाणिकता के साथ प्रकाशित किया है। उन्हें विस्मृति में खोने से बचाया है। स्वाधीनता के अमृतकाल में संविधान पर बहस और पुनरीक्षण का ठोस आधार उनकी शोधपरक पुस्तक 'भारतीय संविधान अनकही कहानी' ने रचा है।

श्री रामबहादुर राय की लोकनायक जयप्रकाश नारायण के संपूर्ण क्रांति आंदोलन की संचालन समिति में सक्रिय भूमिका रही। वे सादा जीवन उच्च विचार के प्रतीक पुरुष हैं। समावेशी स्वभाव और मानवीय संवेदना से संपृक्त आचार–विचार–व्यवहार उन्हें सबका अपना बनाता है। उनके अलंकरण से पत्रकारिता सम्मानित हुई है।

–विजयदत्त श्रीधर

सहायक सरसंघचालक माननीय दत्तात्रेय होसबोले एवं पं. कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय

सहायक सरसंघचालक माननीय दत्तात्रेय होसबोले साहब अपने प्रवास के दौरान मंदसौर पधारे और आपने मुझे स्मरण किया।

दशपुर सम्राट यशोधर्मन की कीर्ति स्तंभ स्थल सौंधनी अवलोकन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ साथ ही पूज्य गुरुवर स्वर्गीय विष्णु श्रीधर वाकणकर पद्मश्री के साथ किए गए अपने सर्वेक्षणों की चर्चा करने का अवसर प्राप्त हुआ।

इस अवसर पर मैंने प्रात: स्मरणीया अहिल्याबाई होल्कर पर प्रकाशित 'कला समय' विशेषांक अंक की प्रति भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त किया।

मार्क ट्वेन ने लिखा है -यदि आप भूखे मरते कुत्ते को रोटी खिला दें, तो वह आपको नहीं काटेगा। कुत्ते में और आदमी में यही मूल अंतर है।

इंदौर में श्रीमती सुमित्रा महाजन द्वारा देवी अहिल्याबाई होल्कर 300वाँ जन्म जयंती वर्ष विशेषांक का लोकार्पण

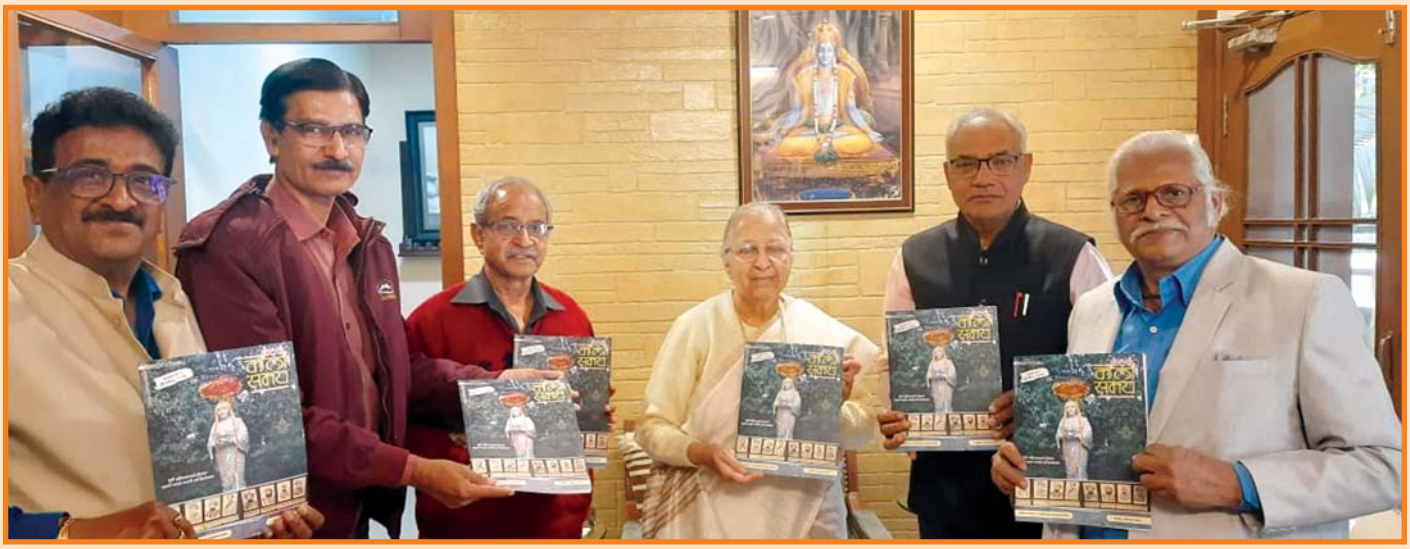

दिनांक 25 जनवरी 2025 को लोकसभा की पूर्व अध्यक्ष एवं वर्तमान में पुण्य श्लोका महारानी अहिल्या बाई होल्कर त्रिशताब्दी समारोह की संरक्षिका श्रीमती सुमित्रा महाजन के हाथों उनके निज निवास पर इस विशेषांक का लोकार्पण किया गया। साथ में उपस्थित अतिथि संपादक पं. कैलाश चन्द्र घनश्याम पाण्डेय, संपादक भँवरलाल श्रीवास, प्रवीन श्रीवास्तव, मनोज व्यास, सुशील जोशी इत्यादि।

गुरु भाई-बहनों द्वारा कला समय लोकार्पित

पी.एस. तोमर आईएएस (रिटायर्ड), संपादक भँवरलाल श्रीवास

श्री भरतलाल व्यास प्राचार्य (रिटायर्ड) द्वारा साथ में महेन्द्र व्यास, राकेश व्यास, मनोज व्यास, संपादक भँवरलाल श्रीवास

पी.एस. तोमर आईएएस (रिटायर्ड), पं. कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय

मुक्तेश्वर सिंह आईएएस (रिटायर्ड) को अपनी पुस्तक भेंट करते पं. कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय

माया/देवी गुप्ता

ओपन आर्ट गैलरी, भोपाल (म.प्र.)

ग्राम झागरिया, सहारा बायपास से रायसेन रोड गोल्डन सैक स्कायर गेट के अंदर / मो. 9479909299

गैलरी विशेषता : ❖ नये कलाकारों को आर्ट प्रदर्शन हेतु मंच प्रदान करना, ❖ ग्रामीण पर्यटन को बढ़ावा देना
❖ भारतीय सभ्यता, संस्कृति कला का प्रचार प्रसार ❖ मासिक साहित्यिक गोष्ठियाँ एवं कला शिविर

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्प्लेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - भँवरलाल श्रीवास